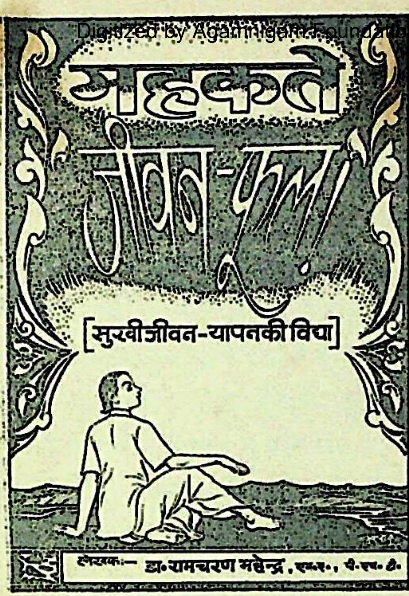
महकते जीवन-फूल

[सुखीजीवन-यापनकी विद्या]



लेखकः— डा० रामचरण महेन्द्र, एम०ए०, पी-एच० डी०


महकते
जीवन-फूल!
[सुखीजीवन-यापनकी विद्या]
लेखक:— डा॰ रामचरण महेन्द्र, एम॰ए॰, पी-एच॰डी॰

मुद्रक तथा प्रकाशक
मोतीलाल जालान
गीताप्रेस, गोरखपुर

संवत २०२४, प्रथम संस्करण १५,०००

मूल्य दो रुपये

पता—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

भूमिका

हम महकते फूलकी तरह जियें

हमारा जीवन सुगन्धित फूलोंकी तरह महकता रहे, अपनी सुवाससे दूसरोंके जीवनको निरन्तर महकाता रहे, उन्हें प्रेमकी पुचकार और साहसका प्रोत्साहन देकर आगे बढ़ाता रहे। मनुष्यको एक सीमित और अनजान अवधिका जीवन-रूपी अवसर मिला है, उसके जीवन-पुष्पमें कुछ दिनके लिये ही महक है; अतः उसे सबसे सुन्दर ढंगसे व्यतीत करना चाहिये। उलझन, अशान्ति और परेशानीमें जिंदगी बिताना मानवता नहीं है। हर व्यक्ति हर आदमीको अच्छेसे अच्छा जीवन व्यतीत करनेमें मदद देता हुआ स्वयं भी कलात्मक सौरभ-युक्त ढंगसे जिये, तभी मानव-जीवनका उद्देश्य सफल और ईश्वरकी सृष्टिका मन्तव्य पूर्ण होगा, अन्यथा नहीं।

मनुष्यका व्यक्तित्व समुद्रसे भी गम्भीर, निश्चल और प्रशान्त है। उसमें सूर्य-जैसी प्रतिभा, प्रखरता और तेजस्विता है। उसके बुद्धिबल, आत्मबल और कला-कौशलकी कोई थाह नहीं। वही सबसे अधिक विकसित जीव है। यदि उसकी सब शक्तियाँ किसी प्रकार एकाएक प्रकट हो जायँ, तो वह संसारमें उथल-पुथल मचा सकता है, चाहे तो समग्र संसारको सद्ज्ञानके प्रकाशसे जगमग-जगमग कर सकता है। सर्वाङ्गीण समृद्धि और विकासकी विपुल सम्भावनाएँ मनुष्यके शरीर, मन और आत्मामें विद्यमान हैं, पर वह उन्हें सतत पुरुषार्थ और प्रयत्नके बलपर ही प्राप्त करता है। हमें मनुष्य-जीवन इसलिये मिला है-

कि हम अपने व्यक्तित्वका पूर्ण विकास करें और अपनी महकसे इस संसाररूपी उद्यानको सुवासित कर दें।

जीवन एक संग्राम है, इसमें विजय केवल उन्हीं वीरोंको मिलती है, जो अपने पराक्रम और पौरुषकी उत्कृष्टता सिद्ध करते हैं। नदीको समुद्रतक पहुँचनेकी सफलता तब मिलती है, जब वह चट्टानोंसे टकराती हुई अपने प्रवाहको अग्रगामी बनाये रखनेकी क्षमता अक्षुण्ण रखती है। जिस पानीमें यह शक्ति नहीं होती वह तालाब या झीलकी तरह अवरुद्ध बना पड़ा रहता है। प्रगतिका स्वप्न साकार करनेका अवसर उसे कहाँ मिलता है?

मनुष्यको सफलतारूपी अमृत-फल तोड़नेके लिये कठिनाइयोंके ऊँचे वृक्षोंपर चढ़ना होता है। परेशानियों और भाँति-भाँतिकी मुसीबतोंके ऊँचे पर्वतोंपर चलना होता है। जो उनकी ऊँचाई देखकर हिम्मत हार जाते हैं, उन्हें खाली हाथ वापिस जाना पड़ता है; लेकिन जो पुरुषार्थी आदमी खतरोंको ललकारते, विरोध और कष्टोंको पाँवोंतले रौंदते हुए पैर आगे बढ़ाते हैं, उन्हें इसी धरतीपर बहुत कुछ मिलता है। विश्वके सफल लोगोंका स्वर्णिम इतिहास उनके बढ़े हुए साहसके आधारपर ही विकसित हुआ है।

ईश्वरकी यह इच्छा है कि हम वे तमाम गुण धारण करें, जो स्वयं उनमें हैं। हमें अपने अंदर ईश्वरत्वके गुणों (दैवी सम्पद्) को विकसित करना चाहिये, जिन्हें नैतिकता और मानवताके नामसे पुकारते हैं। धर्म एवं संस्कृतिका विशाल ढाँचा इसलिये बनाकर खड़ा किया गया है कि उनसे प्रभावित

मस्तिष्कमें संयमसे रहने और सद्व्यवहार करनेकी आस्था उत्पन्न हो। आस्तिकता और ईश्वरीय न्यायका मूल प्रयोजन यह है कि 'मनुष्य अपने ऊपर अदृश्य शासनका नियन्त्रण अनुभव करे और गुप्तरूपमें भी—शरीरसे ही नहीं, मनसे भी दुष्कर्म-दुर्विचार करनेका—दुष्प्रवृत्तियाँ अपनानेका साहस न करे।' आत्मनियन्त्रण ही सज्जनताका मूल है। यह आत्मनियन्त्रण और आत्मपरिष्कार इसलिये आवश्यक है कि मनुष्य सज्जनता सीखे और सब बन्धु-बान्धवों तथा बाहरवालों तकसे पूर्ण उदारता बरते। यही वह राजमार्ग है, जिससे हम सच्चे अर्थोंमें सामाजिक प्राणी बनते हैं। सामाजिकताके नियमोंका पालन ही व्यक्तिगत और सम्मिलित सुख-शान्तिको सुरक्षित रखनेका—प्रगतिशील बनाये रखनेका एकमात्र उपाय है। आत्मनियन्त्रण ही सज्जनताका मूल है।

मनुष्यनें जीवनमें सुख-सुविधा बढ़ानेके लिये ही समाजकी व्यवस्था की है; न कि इसलिये कि उसका जीवन भयानक कष्टोंसे भरपूर हो जाय। जब मनुष्यने पहले-पहल समाज बनाकर रहना प्रारम्भ किया, तब वह एक दूसरेसे सहयोग करनेको सदैव तत्पर रहता था। वह अधिकसे अधिक निःस्वार्थी और निःस्पृह ही रहा करता था। उसके हृदयमें एक दूसरेके लिये सहानुभूति और सह-अस्तित्वका भाव रहा करता था। इन्हीं आधारोंपर वह अधिकसे अधिक सुखी जीवन व्यतीत करता था। यह उस समयकी बात है जब वह आज-जैसा सभ्य और सुशिक्षित न था।

तब क्या क़ारण है कि आजका मानव सामाजिक विचारोंमें

इतना आगे बढ़ा होनेपर भी भयभीत और दयनीय जीवन बिता रहा है? वह ऐसा क्यों हो गया है कि उसमें मानव-धर्मकी ही कमी दिखायी देने लगी है? एक ही समाजके लोग एक दूसरेका शोषण और उत्पीड़न करनेमें क्यों लगे हुए हैं?

इसका कारण है—'आजके मनुष्यका स्वार्थपूर्ण संचय।' आधुनिक आदमी संसारका सब कुछ केवल अपने लिये ही बटोरकर रख लेना चाहता है। समाजमें यदि सबके लिये सुख-सुविधा और समृद्धिकी सुखद परिस्थितियाँ लानी हैं, तो सभ्य कहलानेका दम्भ भरनेवाले आजके मनुष्यको अपनी यह क्षुद्र स्वार्थ-लिप्सा छोड़नी होगी। इस लिप्साके त्यागसे ही पूर्ण और सबका सुख सम्भव है। स्वार्थपरतासे ही विश्वपर संकट आ गया है।

मनुष्य अपने भाग्यका निर्माण स्वयं करता है

भगवान्‌ने बड़ी कारीगरीसे मनुष्यके शरीर, मस्तिष्क और आत्माको गढ़ा है। एक-एक अवयव, नस और नाड़ीको बड़ी सावधानीसे लगाया है। उसने उसके हर अङ्गमें अनन्त शक्तियाँ छिपाकर रख दी हैं। बस, इन्हें जानने और धैर्यपूर्वक विकास करनेका काम हमारे ऊपर है। हमारे विचारोंमें जीवनको समुन्नत और गौरवशाली बनानेकी प्रचुर सामग्री भरी पड़ी है। साहस, शौर्य, उद्यम, परिश्रम, उद्योग, धैर्य और संघर्षकी अद्भुत शक्तियाँ हम अपने सृजनात्मक विचारोंसे उत्पन्न करते हैं और इनका प्रयोग जीवनके क्रियात्मक क्षेत्रमें करके लाभ उठाते हैं। इन गुप्त बौद्धिक और आत्मिक शक्तियोंकी ओर ध्यान न दें, तो दीन-दुर्बल और दुखी ही बने रहेंगे।

धरतीके भोग और पुरुषोंके लिये बने हैं, पर इसके लिये मनुष्यकी कर्मठता भी तो जागे ? पौरुष न जागा तो हाथ कुछ न लगेगा।

वेद भगवान्‌का कथन है—

कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः।
गोजिद् भूयासमश्वजिद् धनंजयो हिरण्यजित्॥
(अथर्व० ७। ५०। ८)

'मनुष्य ! तू अपने दाहिने हाथसे पुरुषार्थ कर, बायेंमें सफलता निश्चित है। गोधन, अश्वधन, स्वर्ण आदि सब सम्पदाओंको तू अपने खुदके परिश्रमसे प्राप्त कर।'

सच बात है, दृढ़ प्रयत्न और सतत उद्योग करते रहनेवाले पुरुष-सिंहोंने ही इस संसारमें विलक्षण क्रान्तियाँ की हैं। परिस्थितियाँ उन्हें किसी प्रकार भी नहीं दबा पायीं।

कठिनाइयाँ आपके पुरुषार्थको जाँचती हैं

पुरुषार्थी मनुष्यको कठिनाइयोंसे घबरानेके स्थानपर उनका स्वागत करना चाहिये। उन्हें जीवनरूपी पाठशालाका आदरणीय अध्याय मानना चाहिये। संसारके सब उन्नतिशील मनुष्य कठिनाइयोंकी शिक्षासे ही शिक्षित हुए हैं। उन्हींके द्वारा उनका मस्तिष्क विकसित होकर ज्ञान-विज्ञानकी इस सीमातक पहुँच सका है। यदि जीवनमें कठिनाइयाँ न हों, आपत्तियाँ न आवें, मुसीबतें न पड़ें, आदमीको जी-तोड़ मेहनत न करनी पड़े तो मनुष्यका जीवन नितान्त निष्क्रिय तथा निरुत्साहपूर्ण बन जाय।

भला निरुत्साहित, निष्क्रिय एवं नीरस जीवन जीनेमें क्या आकर्षण रहता है ?

संसारमें जो कुछ चहल-पहल, हलचल और कोलाहल दिखायी दे रहा है, जो गति और प्रगति है, जो जीवन है, वह सब कठिनाइयोंसे बचने, उन्हें दूर हटाने और उनसे लड़नेके ही कारण है।

आप अपने जीवनकी कठिनाइयोंको जीवन-विकासका एक अनिवार्य उपाय मानकर उनका स्वागत करें—उनकी चुनौती स्वीकार करें और हर प्रकारकी आपत्तिको सैकड़ों कष्ट सहकर भी दूर करें। यही आपका पुरुषार्थ है, यही सफलता तथा उन्नतिका एकमात्र उपाय है। कठिनाइयाँ आपकी प्रतिद्वन्द्वी नहीं, मित्र भी हैं; वे आपको विकासके मार्गपर आगे बढ़ानेमें कारण होती हैं। आपत्तिके एक थपेड़ेसे बड़े-बड़े बिगड़े हुए लोग सुधर जाते हैं। कठिनाइयोंकी पाठशालामें शिक्षित और गुजरे हुए मनुष्यके अनुभव बड़े ही असूल्य एवं उपयोगी होते हैं।

जिंदगीको उल्लासपूर्ण ढंगसे जियें

आप बीजकी तरह उगें और बेलकी तरह निरन्तर बढ़ते और ऊँचे उठते ही रहें। याद रखिये, मनुष्य-जीवन उल्लास और उत्साहसे जीनेके लिये है।

यों जिंदगी तो सभी जीते हैं, किंतु क्या कोई कह सकता है कि वह वास्तवमें ठीक ढंगसे जीता है? जीनेसे हमारा मतलब उल्लासपूर्ण जीवनसे है।

एक जिंदगी, एक उत्साहवर्द्धक आशापूर्ण जीवन, एक प्राणपूर्ण जीवन। वह जिंदगी जियें जो न केवल अपने लिये ही

प्यारी हो, बल्कि और सबके लिये भी दुलारी हो, बेशकीमती हो, हर प्रकार आदर्श और प्रेरक हो।

किंतु वह कौन-सी कला है कि इस प्रकारकी उल्लासपूर्ण जिंदगी जी सके? वह कला एक बहुत ही साधारण-सी कला है। उसके लिये न किसी तपकी जरूरत है और न योग-साधना आदिकी। जीवनकी सामान्य गतिमें ही उल्लासपूर्ण जिंदगीकी कला स्वयं सिद्ध हो जायगी।

और वह कला है, दूसरोंके लिये जीना, गरीबों और निर्बलोंके लिये जीना, मानव-मात्रके हित और मानवताकी समृद्धिके लिये जीना, संसारके लिये जीना। जब हम दूसरोंके लिये जियेंगे, तो हमारी जिंदगी दूसरोंकी हो जायगी और सब उसको प्यार करने लगेंगे, जिसमें आत्मसंतोषके सारे द्वार खुल जायँगे।

सफल जीवनका यह मतलब है कि इसे योजना या किसी निश्चित कायदेके साथ जियो। जितना काम अपने लिये करो, उससे अधिक काम दूसरोंके लिये करो। जिंदगीको फजूलके अनर्थकारी कार्योंसे मत भरो। जिंदगीपर जितनी गहराईसे सोचा जायगा, यह उतनी ही उलझती जायगी। सोचना तो यह चाहिये कि हमने अमुक कार्य क्यों किया? कहो कम, करो ज्यादा। यही सबसे बड़ी सफलताका उपाय है।

नयापुरा, कोटा
(राजस्थान)

—डॉ० रामचरण महेन्द्र
एम्० ए०, पी-एच्० डी०

'वाह !'

—कुछ राहपर चलते हैं, तो उनकी डगमग चालसे धरती बोझ अनुभव करती है ।

कुछ अपनी राह बढ़ते हैं तो पाँवोंकी गतिमें लक्ष्यतक पहुँचनेकी भूकम्पी प्रेरणा होनेके कारण राह उन्हें आवाज लगा उठती है, 'ओ बटोही ! तुम्हारी प्रतीक्षामें मैं पलक-पाँवड़े बिछाये हूँ ।'

प्रोफेसर रामचरण महेन्द्र ऐसे ही बटोही हैं । वे साहित्य-की डगरपर बढ़े, तो सफलता उनके पीछे-पीछे आवाज लगाती दौड़ी; क्योंकि उनका साहित्य-पिटारा आकाश-कुसुमका वास अथवा कल्पना-विलासका लास नहीं है । उनमें जीवनको परखनेकी अचूक दृष्टि है । यों, उनका साहित्य, जीवनके स्पन्दनसे ओतप्रोत, जिसे जो भी पढ़े, तो पढ़कर 'बुक शैल्फ'में न रख दे—जितना पढ़े, उसे गुननेके लिये ललचाये ।

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित उनकी 'स्वर्ण-पथ', 'आनन्दमय जीवन', 'अमृतके घूँट', 'आशाकी नयी किरणें', 'जीवनमें नया प्रकाश' आदि पुस्तकोंके बाद उनकी 'महकते जीवन-फूल' पुस्तक पढ़िये । यह जिंदगीकी खुशबूसे सर्वत्र महक रही है ।

यों अभिनन्दनीय है प्रोफेसर महेन्द्रकी कलम, जिसने जीवनके ऐसे उजले चित्र अङ्कित किये हैं, जिसे देखें तो बरबस होठ फरक उठें—'वाह !'

—'नया जीवन' मासिकसे—प्रकाशक

श्रीहरिः

विषय-सूची

श्रीहरिः

महकते जीवन-फूल

आध्यात्मिक दृष्टिकोण धारण करनेसे सुख, शान्ति और समृद्धि

एक महात्मा राजाके एक मनोरम उद्यानमें आनन्दमुद्रामें बैठे वातावरण, प्रकृति तथा पुष्पोंका आनन्द ले रहे थे। राजकीय उद्यान बड़े व्ययसे सजाया गया था। हरित लतिकाएँ और नाना रंग-बिरंगे विहँसते पुष्प, मादक सुगंध, हरी-भरी घास, शीतल-मंद समीर तथा समीप ही प्रवाहित जलकी सुषमा महात्माजीको आनन्दविभोर कर रही थी। वे तन-मन विस्मृतकर बेसुध प्रकृतिकी रूपमाधुरीका पान कर रहे थे।

राजाको उनकी यह निश्चिन्तता अखरी। उनके उद्यानमें कोई साधारण व्यक्ति क्यों ऐसे आ बैठे? वे कुछ क्रुद्ध होकर महात्माके समीप आये और बोले—

'जानते हो, यह किसका उद्यान है?'

महात्मा वैसे ही निश्चिन्त बैठे रहे। उनके मुखपर शान्ति और आनन्द अब भी पूर्ववत् खेल रहे थे। उन्होंने उत्तर दिया—

'यह उद्यान मेरा है। मैं ही इसका आनन्द ले रहा हूँ।' यों कहकर वे और भी फैलकर बैठ गये और शान्त एवं मनोरम प्रकृतिको निहारते रहे।

राजा—'क्या तुम नहीं जानते हो कि यह राजकीय उद्यान है? मैं राजा हूँ, इस प्रदेशका स्वामी। यह मेरा उद्यान है। इसपर मेरा अधिकार है। इसके पुष्प, बेल, पौधे, वृक्ष तथा अन्य सुन्दर वस्तुएँ सब मेरी हैं। मेरे आनन्दकी वृद्धिके लिये राज्यकी ओरसे इनपर असाधारण व्यय किया गया है। इसमें एक-एक वृक्ष बहुमूल्य है। दूर-दूरसे उन्हें मँगवाया गया है। उन्हें लगाने और पुष्पित करनेमें राज्यका अमित व्यय हुआ है। इतने सबपर तुम-जैसा गेरुआ वस्त्र पहिने अधनंगे शरीर और दो पसलियोंवाला निर्धन, निराश्रित व्यक्ति कहता है कि यह उद्यान मेरा है। जो व्यक्ति अपने पेट और शरीरकी मामूली-सी आवश्यकताएँ पूर्ण नहीं कर सकता, वह भला, क्या इस उद्यानका मालिक हो सकता है?'

महात्मा शान्तभावसे राजाकी मदभरी गर्वोक्ति सुनते रहे। फिर मधुर मुसकान बिखेरते हुए बोले—

'राजन्! इस उद्यानकी हरी-भरी लतिकाओं, पुष्पों, वृक्षों तथा अन्य सामग्रीका जितना आनन्द मैं ले रहा हूँ, उतना आप अपनी तमाम राजसी सुविधाओंके बावजूद भी नहीं ले रहे हैं। इसपर इतना व्यय करने, अनेक नौकरोंद्वारा इसकी देख-भाल, संरक्षण आदि करानेके बाद भी मेरे-जितना आनन्द न ले पाना इस बातका द्योतक है कि यह उद्यान वस्तुतः आपका नहीं है। यहाँ प्रकृतिका सुन्दर स्वरूप खुला पड़ा है। जिसकी इन्द्रियोंमें उसका सुख भोग करनेकी शक्ति है, जिसकी संवेदना प्रकृतिके रसपानके लिये सूक्ष्म है, जो तन्मयतापूर्वक अपना प्रकृतिसे तादात्म्य कर सकता है, वही उसका मालिक है। सुन्दरता और आनन्द हृदयके विषय हैं। केवल सहृदय व्यक्ति ही इनका रसास्वादन कर सकते हैं। अन्य व्यक्ति इनपर चाहे कितना ही धन व्यय करें, इनके मालिक नहीं हो सकते। सुन्दर और आनन्ददायक वस्तुएँ वास्तवमें उन्हीं सहृदय संवेदनशील व्यक्तियोंकी सम्पत्ति हैं, जो उनसे सुख और आह्लाद प्राप्त करते हैं। मैं इस उद्यानके सौन्दर्यका रसपान कर रहा हूँ। अतः यह मेरा ही है।'

यह सुनकर राजा सोचमें पड़ गया। महात्माकी उक्तिमें गहरी सत्यता छिपी थी। यह सत्य था कि उसने उद्यानकी सजावट और संरक्षणमें अनगिनत धन व्यय किया था। वह पौधोंकी देख-भाल तथा संग्रहमें उदारतापूर्वक व्यय करता था। परंतु प्रकृतिकी उस

चित्रशालाका आनन्द लेनेके लिये उसके पास उन्मुक्त हृदय नहीं था। वह उद्यानमें टहलते हुए भी राज्यकी नाना चिन्ताओंमें डूबा रहता था। उसका मन अनेक गुत्थियोंमें उलझा रहता था। प्रकृतिके उस सुन्दर वातावरणमें भी उसे राजनीतिकी उखाड़-पछाड़ अशान्त रखती थी। उद्यानमें टहलना उसके लिये वैसा ही था, जैसे दरबारमें बैठकर राज्यकी समस्याएँ सुलझाना। दरबारमें नाना व्यक्ति इसके समक्ष प्रस्तुत होते, बागमें ये सब उसके मानस-नेत्रोंसे दिखायी देते रहते। उस सुन्दर उद्यानका होना, न होना राजाके लिये बराबर था।

वास्तवमें उक्त दृष्टान्तमें आनन्दका एक महान् रहस्य निहित है। आनन्द और सुन्दरताकी अनुभूतियाँ हमारे हृदयकी वस्तुएँ हैं। एक गुलाबका पुष्प या रंगीन बादल, उगता हुआ बालरवि या संगीत-की मञ्जुल ध्वनि, मनोहर चित्र, जिसे हम सुन्दर समझते हैं, सम्भव है दूसरे व्यक्तिकी दृष्टिको उसमें कुछ भी सौन्दर्य प्रतीत न हो, उसे देखकर वह आनन्दकी उपलब्धि न कर सके। पर यदि आपके पास सौन्दर्यके पारखी नेत्र, मधुर ध्वनिका रस लेनेवाले कान, सहानुभूति और प्रेमसे सराबोर हृदय है तो निश्चय जानिये, दूसरोंकी वस्तुओंमें उनकी अपेक्षा आपको अधिक आनन्द प्राप्त होगा।

आनन्द और सौन्दर्य व्यक्तिगत भावनाएँ हैं। प्रत्येक व्यक्तिकी संवेदना-शक्ति और आनन्द प्राप्त करनेकी सूक्ष्मता पृथक्-पृथक् है। किसी सुन्दर वस्तुको समीप रखनेका तात्पर्य यह नहीं है कि वह व्यक्ति उससे उसी अनुपातमें आनन्द और प्रेरणा भी प्राप्त कर रहा है, जितना सहृदय कर सकता है।

इसके विपरीत एक संवेदनशील व्यक्ति केवल अपने दर्शनकी सूक्ष्मता, अनुभूतिकी गहराई और उदार दृष्टिकोणकी शक्तिसे दूसरों-की अनेक वस्तुओंका आनन्द ले सकता है। जो व्यक्ति बाग लगाते हैं, आप उनके बागमें जाकर प्रकृतिका आनन्द ले सकते हैं। धनी-मानी सज्जनोंके मकानोंमें बने हुए चित्रोंकी कलाको परखकर आप कलाके भव्य प्रदेशमें प्रवेश कर सकते हैं। उनके घरमें बजनेवाले वाद्य-संगीतका आनन्द ले सकते हैं। दूसरोंकी पुस्तकें लेकर पढ़ सकते हैं और आनन्द लाभ कर सकते हैं। दूसरोंके हर्षमें हर्षित और दुःखमें सम्मिलित होकर अपनी आत्माकी परिधिका विस्तार कर सकते हैं। दूसरोंके बाल-बच्चे आपके बाल-बच्चे हैं! प्रत्येक व्यक्ति आपसे सम्बन्धित आपका मित्र एवं हितैषी है।

वास्तवमें आनन्द और सौन्दर्य वस्तुओंमें नहीं है, देखनेवालेके मनमें है। हमारे आनन्द और सौन्दर्यका मापदण्ड हमारे मनकी ऊँचाई और चौड़ाईपर निर्भर है। जिसकी रुचि जितनी परिष्कृत है, हृदय जितना संवेदनशील और उदार है, वह उतना ही आनन्द और सौन्दर्यका पान करता है। मनुष्यका दृष्टिकोण ही आनन्द देनेवाला है। संसार जिस भौतिक आनन्दके लिये अशान्त है, उसमें आनन्द लेशमात्र भी नहीं है। वास्तविक आनन्द तो हमारे अंदर हमारी आत्मामें है।

यह सोचकर मत विक्षुब्ध हूजिये कि आप बड़े-बड़े उद्यानों, महलों अथवा विशाल अट्टालिकाओंके मालिक नहीं हैं। कल्पना कीजिये कि यदि ये वस्तुएँ आपकी होतीं भी, तो भी आप इन्हें

कहीं उठाकर नहीं ले जा सकते थे। उनका मालिक होनेपर भी वे आपसे दूर-दूर ही रहतीं। केवल मनके अंदर एक स्वार्थमयी भावना यह रहती कि हम इन वस्तुओंके स्वामी हैं, दूसरोंका इनपर अधिकार नहीं है। आप कल्पनाद्वारा इन सब वस्तुओंको अपना मानकर उस ममतामयी भावनासे मुक्त रह सकते हैं, जो इन वस्तुओंके मालिकोंके हृदयको संकुचित कर देती है।

प्रत्येक सांसारिक वस्तुको अपना ही मानकर आनन्द लीजिये। परमेश्वरने सब कुछ आपके लिये ही, आपकी आत्माको सुख-शान्तिमें निमग्न करनेके लिये, आपकी सहायताके लिये विरचित किया है। हरे-भरे उद्यान, असीम उल्लाससे कलकल वहती हुई सरिताओंके तट, वृक्षोंकी शीतल छाया, पुष्प, स्निग्ध सुखद समीर, सार्वजनिक स्थान, मठ-मन्दिर—सब आपके हैं। आप जिस मन्दिरमें पूजन, चिन्तन, भजन इत्यादिके लिये प्रविष्ट होते हैं, उसे अपना ही मानकर चलिये। यदि आप ही उसके मालिक होते तो कैसे उसे स्वच्छ-सुन्दर रखते, कितनी देख-भाल करते, सावधानियाँ रखते—यह आप अब भी कर सकते हैं। आप सार्वजनिक धर्मशाला अथवा पुस्तकालयमें जाते हैं। प्रत्येक धर्मशालाके जिस कमरेमें आप ठहरते हैं, उसे अपना ही समझकर स्वच्छ रखिये। पुस्तकालयकी पुस्तक अथवा समाचार-पत्रको इस सावधानीसे पढ़िये मानो आपकी ही हों। जैसे आप अपनी वस्तुको सावधानीसे काममें लेते हैं, वैसा ही आत्मभाव इनमें रखिये।

आप जितना ही इन सार्वजनिक वस्तुओंसे तादात्म्य करेंगे,

उतना ही आनन्द प्राप्त होगा। आत्मभावका दायरा विस्तृत हो जानेसे अनेक जड वस्तुओं, पशु-पक्षियों, पुष्प-वृक्षों, उद्यानों तथा सार्वजनिक स्थानोंमें अपनत्वकी सरसता प्राप्त होगी। प्रत्येक वस्तु आपकी ही है, परमेश्वरने आपके लिये ही निर्मित की है, आप उसका आनन्द प्राप्त कर सकते हैं—यह भाव मनमें रखिये। एक पग और आगे रखिये और सोचिये कि इस असत् जगत्के आनन्दोंसे भी ऊँचा, अधिक परिष्कृत पूर्ण एक और आनन्द-स्रोत है। वह अनन्त आनन्द और सुख-सागररूप आपकी आत्माका आनन्द है। उस आत्मिक जगत्में प्रवेश करनेसे परम शान्ति और सुखका अनुभव होता है। यह वह दिव्य आनन्द है, जहाँ मृत्युकी कुटिल छाया-तक प्रविष्ट नहीं हो सकती। इस क्षेत्रके आनन्दोंमें रमण करनेसे हम मृत्युतकसे अभय हो जाते हैं और उस अनन्त जीवन और अनन्त शक्तिमय ईश्वरतत्त्वमें तन्मय हो जाते हैं। इस निर्विकार अवस्थाको प्राप्त कर लेनेपर हमें प्रतिकूल प्रसङ्ग और प्रतिकूल परिस्थितियाँ अशान्त नहीं कर सकतीं।

मत समझिये कि आप दीन-हीन हैं या अनेक वस्तुओंके स्वामी नहीं हैं। अभाव-जैसी कोई वस्तु आपकी चिन्ताका विषय नहीं बननी चाहिये। ईश्वरकी इस परम समृद्ध विपुला सृष्टिमें अभाव नहीं है। सर्वत्र आपके लिये समृद्धि है। अनेक प्रकारकी वस्तुएँ भविष्यमें आपके लिये भरी पड़ी हैं। आज नहीं तो कल, ये समृद्धियाँ आपको प्राप्त होनेवाली हैं। विपुलताकी अभावपर, पुण्यकी पापपर, सत्यकी झूठपर अवश्य विजय होगी। संकुचितता सृष्टिमें नहीं, स्वयं आपकी

मानसिक दृष्टिमें हैं। उसके स्थानपर अपनी आत्माके विपुल विस्तारपर चिन्तन करना चाहिये।

आपकी आत्मामें अभाव-जैसी कोई वस्तु नहीं है। उसमें सर्वत्र विस्तार है। जो तत्त्व परमेश्वरसे आपको प्राप्त हुआ है, इस समग्र सृष्टिमें जिसका प्रकाश दृष्टिगोचर हो रहा है, वह आपके अंदर रहनेवाला आत्मतत्त्व ही है। मनुष्यको अपने महान् तेज एवं सामर्थ्यका तबतक ज्ञान नहीं होता, जबतक उसे आत्मभावकी चेतना अथवा आत्मतत्त्वका बोध न हो जाय। जीवनमें आध्यात्मिक दृष्टिकोण ग्रहण कर लेनेके उपरान्त मनुष्यके जीवनमें एक महान् परिवर्तन होता है। सर्वत्र उसे अपनी दिव्य आत्माके अंश दिखायी देने लगते हैं। प्रत्येक व्यक्ति, पशु, पक्षी, कीट, पतंग, जड पदार्थोंतकमें वह अपनत्वकी झलक देखता है। संकुचितता छूट जाती है और उदारता उसके मनमें प्रविष्ट हो जाती है। आध्यात्मिक दृष्टिकोण अपनानेसे उसे ऐसा प्रतीत होता है मानो वह अन्धकारसे दिव्य प्रकाशमें आ गया हो, अथवा स्वप्नावस्थासे जागृतिके राज्यमें आ गया हो। जिन क्षुद्र अभावोंपर सांसारिक व्यक्ति नित्यप्रति दुःख-क्लेश भोगते हैं, वे आत्मवादी सिद्धको वस्तुतः अत्यन्त तुच्छ, क्षुद्र तथा सारहीन प्रतीत होते हैं। कारण, वह अपनी सत्-चित्-आनन्दमयी आत्माके विकासके कारण विक्षेपरहित, शान्त तथा उद्वेगसे मुक्त रहता है और अपने ईश्वरत्वके वातावरणमें निवास करता है।

आध्यात्मिक दृष्टिकोणको सिद्ध करने और सनातन सुख प्राप्त करानेवाला एक संक्षिप्त साधन है—वह है अपनी आत्माको पहचान-

कर विश्वमें उसकी छाया देखना। हममें वे सब दैवी सिद्धियाँ हैं, जो ईश्वरमें हैं। सांसारिकता, तृष्णा और तुच्छ स्वार्थको तिलाञ्जलि देकर अपनी आत्माकी दिव्य शक्तियोंकी अभिवृद्धि करनेका प्रत्येक व्यक्तिको पूर्ण अधिकार है। मैं वास्तवमें आत्मा हूँ, अविनाशी हूँ। मेरी इन्द्रियाँ मेरे मनके अधीन रहती हैं। मैं निर्भय होकर संसारमें विचरण करता हूँ। चाहे कैसा भी बाह्य संघर्ष हो, विपदाएँ या विरोध हों, प्रतिकूल प्रसङ्ग हों, मेरी आत्माको उनसे कोई हानि होनेवाली नहीं है। मैंने अपने मनकी बागडोर अपने मनके हाथमें दे दी है। स्वार्थ, संकुचितता, निर्धनता, अभाव—मेरे आत्म-राज्यमें विद्रोह नहीं खड़ा कर सकते। मेरा मन दृढ़ आत्मसंकल्पयुक्त हो गया है।'—इस प्रकारके विचार मनमें रखनेसे हमें अनुभव होने लगता है कि परमात्माने अपने पुत्रोंको किसी भी वस्तुसे वञ्चित नहीं किया है, जो वास्तवमें उनके लिये उपयोगी हो।

आप अनन्त सामर्थ्योंसे भरे पड़े हैं। ज्यों-ज्यों अन्तरात्मामें स्थित सामर्थ्योंको प्रकट करेंगे, आत्मभावका अभ्यास करेंगे, अपने-आप पैदा की हुई संकुचित मनःस्थितिसे मुक्त होते जायँगे, त्यों-त्यों विकारमय जीवन दूर होता जायगा और इन्द्रियाँ उच्च प्रकारके आनन्दोंका पान करने लगेंगी। विश्वास कीजिये—सब अभाव, पाप, दुःख, क्लेश, भय और सांसारिक चिन्ताएँ स्वयं आपकी ही पैदा की हुई हैं। आपकी आत्मामें ये बन्धन नहीं हैं। इन्हें छोड़कर पृथक् हो जाइये और उस आत्मप्रदेशमें प्रविष्ट हूजिये, जहाँ पूर्ण सुख, परम आनन्द और परम शान्ति मिलती है।

आपके प्रेमकी शक्ति, परोपकारकी शक्ति, सहानुभूति, दया, करुणाकी नाना शक्तियाँ, भगवत्प्रेमकी अनेक दिव्य शक्तियाँ आपके अन्तर्मनमें सुप्त पड़ी हैं। आपने अज्ञानवश उनका विकास नहीं किया है। अखण्ड विश्वास और सतत अभ्यासद्वारा उन्हें जाग्रत् भर करनेकी आवश्यकता है। ध्यान तथा मननसे इनको दृढ़ किया जा सकता है। परम प्रभुका ध्यान, उसीमें एकाग्रता, जपद्वारा पुनः-पुनः स्मरण करके हम अपनी आत्माकी शक्तियाँ बढ़ा सकते हैं।

कितने ही व्यक्ति अज्ञानवश यह समझ बैठे हैं कि हम सुख-शान्ति या दिव्यता नहीं प्राप्त कर सकते। प्रतिभा, सिद्धियाँ और शक्तियाँ ईश्वरदत्त प्रसाद हैं। क्या आप भी यही सोचते हैं? यदि ऐसा है तो यह भ्रम मनसे आज ही निकाल दीजिये। प्रकृतिने आपको भी यथेष्ट साधन और सामर्थ्य प्रदान किये हैं। ज्यों-ज्यों विशुद्ध आत्मिक भाव तथा आध्यात्मिक दृष्टिकोण बढ़ता जायगा, त्यों-त्यों ज्ञानरूपी दीपकका प्रकाश, दिव्य सामर्थ्य और मनोबल भी बढ़ते जाते हैं। भौतिक क्षणिक सुख और विकारजनित मोह-तिमिर नष्ट हो जाता है। मनकी वृत्तियोंका भयंकर उत्पात, निरन्तर चापल्य, दारुण प्रहार—ये सब शान्त हो जाते हैं। बाह्य जगत्‌के मिथ्या प्रपञ्चों, थोथे प्रतिबन्धोंसे मुक्त होकर मनुष्य अलभ्य दैवी सामर्थ्य प्राप्त करता है।

आप निज आत्मामें प्रवेश कीजिये। वही आपका वास्तविक सत्-चित्-आनन्द, परम विशुद्ध स्वरूप है। वह ऐसा प्रदेश है जहाँ पूर्ण सुख, परम आनन्द एवं परम शान्ति प्राप्त होती है। भ्रान्तियों

तथा अज्ञान-जन्य निश्चयोंसे मुक्ति दिलानेवाला आत्मतत्त्व ही है। उसीमें वृत्तियोंको अन्तर्मुख करनेपर शान्ति प्राप्त होती है।

आत्मदृष्टिकी प्राप्तिपर रोग, दुःख, शोक, अभाव, जय, पराजय, मान, अपमान, तृष्णा, क्षुधा, हर्ष, शोक हमें परीशान नहीं कर सकते। हमारी आत्माको ये सब बन्धनमें नहीं बाँध सकते। आत्माको जान लेनेपर जाननेके लिये और कुछ भी शेष नहीं रह जाता।

जो सनातन सुख है, जो समग्र विश्वमें प्रतिच्छाया रूपसे वर्तमान है, जो अपनी उन्मुक्ततासे सर्वत्र प्रशान्त प्रकाश विकीर्ण करता है, जो अन्धकारके गहन कूपसे निकालकर हमें अद्वितीय परम आत्माका दर्शन कराता है, वह मनःस्थिति प्राप्त कर लेना ही आध्यात्मिक दृष्टिकोण है। यही परम शाश्वत एवं अटल सत्य है। आत्मामें प्रवेश करनेसे ज्ञानचक्षु खुलते और समस्त बन्धन और अभाव दूर हो जाते हैं।

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च॥

(कठोपनिषद्)

'तू आत्माको रथका स्वामी जान, शरीरको रथ जान और बुद्धिको सारथि जान और मनको लगाम जानकर व्यवहार कर।'

एक ही देव सब भूतोंमें छिपा हुआ है, सबमें व्यापक है, सब भूतोंका अन्तरात्मा है, कर्मोंका अधिष्ठाता है, सब भूतोंका वास-स्थान है, साक्षी है, चेतन है, अकेला है और निर्गुण है।

आजका तनावपूर्ण जीवन और मानसिक रोग

एक साधारण-सी हैसियतके क्लर्क महोदय तने हुए, कुछ उद्विग्न-से मेरे पास आये और उन्होंने पाँच सौ रुपये उधार माँगे। मैंने आश्चर्यसे पूछा, 'क्या किसी कन्याके विवाह इत्यादिके लिये प्रबन्ध कर रहे हैं या पुत्रको उच्च शिक्षाके लिये कहीं बाहर भेज रहे हैं? रुपयेको क्या कीजियेगा?'

वे उच्च स्वरमें कुछ आँखें तरेरते हुए बोले, 'अजी, क्या बताऊँ, पिछले तीन महीनेसे बड़ा उद्विग्न जीवन व्यतीत कर रहा हूँ। मनपर बड़ा भारी बोझ है। सदा तनाव बना रहता है।'

'आखिर बात क्या है?' मैंने समवेदनाभरे स्वरमें पूछा।

'बात भी छोटी-सी है और फिर बढ़कर तिलका ताड़ हो गयी है। मेरे घरके सामनेवाला शराबी पड़ोसी तनिक-सी बातपर मुझसे लड़ बैठा। पहले आवेशमें जोर-जोरसे बोला, फिर हाथा-पाईकी नौबत आ गयी। मार-पीट हो गयी। उसने मुझपर फौज-दारीका मुकदमा दायर कर दिया है, पर उसका पक्ष कमजोर है। मैंने प्रसिद्ध वकील किया है और अभी जीत रहा हूँ। भला, उस छोटे-से आदमीसे मैं कैसे नीचा देख सकता हूँ? मेरी भी इज्जतका सवाल है। अब थोड़ा-सा पैसा तो खर्च होगा, देखना, कैसा नीचा दिखाता हूँ। बस, आप पाँच सौ रुपयेका इंतजाम कर दीजिये। रुपया तो आता-जाता रहता है, पर एक बार उस दुष्टको हराना जरूर है।' यह कहते-कहते वे आवेशमें आ गये। उनकी भौंहें तन गयीं और नेत्र कुछ लाल हो गये।

स्पष्ट था कि वे बदला लेनेके लिये तने बैठे थे। तीन महीने होनेपर भी उनकी उत्तेजना और आवेश शान्त नहीं हुए थे। मन तनावसे भरा हुआ था। उनका दिमाग थका-माँदा-सा मालूम हो रहा था। यह तनावपूर्ण अवस्था ही मानसिक अस्वस्थताकी सूचक है।

× × ×

हालकी ही बात है, एक व्यक्तिको इतना भयानक क्रोधका दौरा उठा कि उसने अपनी पत्नीकी नाक काट डाली और इस गुस्से-का कारण साधारण ही था। उसकी पत्नी जब-तब अपनी माँके घर जानेकी जिद किया करती थी। पति महोदय क्रोधसे सदा तने रहते

थे। यह तनाव दिमागमें बढ़ता रहा, पनपता रहा; आखिर बढ़कर उसका भयानक दुष्परिणाम निकला। पतिको सजा मिली होगी और पत्नी हमेशाके लिये कुरूप हो गयी!

× × ×

मेरे एक मित्र हैं। हिंदीके उच्चकोटिके कवि हैं। प्रोफेसर हैं। उनकी लेखनीमें जादू है। उनकी एक समस्या है कि रात्रिमें उन्हें नींद नहीं आती। चारपाईपर पड़े करवटें बदलते रहते हैं। कई बार नींद लानेवाली दवाइयोंका प्रयोग करके सोते हैं, लेकिन डाक्टर कहता है कि इन बेहोशी लानेवाली दवाइयोंमें खतरा है। बार-बार निद्रा लानेवाली ओषधियाँ नहीं लेनी चाहिये। अब बिना उस दवाईके दो-दो दिन नहीं सो पाते हैं। अनिद्रा रोगसे परीशान हैं। उन्होंने एक बार मुझे अपने मानसिक अस्वास्थ्यकी सूचना देते हुए लिखा था, 'मेरे शिक्षक प्रो० बोरगाँवकर ३० वर्ष इसीसे बीमार रहे और अन्तमें आन्तरिक तनावपूर्ण मानसिक अवस्थाके कारण मरे।' मैंने नींद न आनेके अनेकों रोगियोंको देखा है, जो थोड़ी-सी नींदके लिये सब कुछ बलिदान करनेको तैयार रहते हैं। दिल्लीमें एक अठारह सालकी युवती एक सालतक न सोयी। एक ६० वर्षकी वृद्धा पुत्रशोकमें उद्विग्न होकर १२ वर्षतक पूरी न सोयी। यह अनिद्रा रोग बहुत दिनोंतक तनावपूर्ण जिंदगी जीने और व्यर्थकी चिन्ता और गुप्त भयको मनमें स्थायीरूपसे बसा लेनेका दुष्परिणाम है।

राँचीका एक समाचार है—

'पता चला है कि राँची जिलाके लोहरदगा थानाके अन्तर्गत

दूरगाँव नामक ग्राममें एक उराँव युवकने अपने पिताकी हत्या लाठीसे मारकर कर दी । पिताने अपने युवक पुत्रको गाली दी थी । इसपर वह बुरा मान गया और इतना उत्तेजित हुआ कि पिताकी हत्या कर दी ।'

इतने छोटे कारणपर ऐसा महापाप-काण्ड कर डालना गुप्त मनमें जमे हुए तनावके कारण ही हुआ ।

× × ×

एक युवक विद्यार्थी सिनेमाके संसारसे आकर्षित होकर बम्बई भाग निकला । वहाँ अध-पगला-सा फिरता रहा । कई सिनेमा बनानेवाली कम्पनियोंकी खाक छानता रहा । उसके गुप्त मनमें फिल्मी कलाकार बननेकी अदम्य और उत्कट इच्छा थी । दुर्भाग्यसे आजकल जो सस्ती फिल्में बनती हैं, उनमें काम-क्रीड़ा, उच्छृङ्खलता एवं अनैतिक कृत्योंकी भरमार रहती है । इन्हें देख-देखकर युवक स्वप्नके संसारमें विचरण किया करते हैं । वासनाद्वारा उत्पन्न तनावसे भरे रहते हैं । इस विद्यार्थीको जब कुछ न मिला, तो आत्महत्या कर ली । जेबमें जो कागज मिला, उसमें लिखा था—'मैं सिनेमाका हीरो बनना चाहता था । ऐसी कुरूप दुनियामें मैं जीना नहीं चाहता, जिसमें मेरी कलाको समझनेवाला कोई न हो ।' मानसिक तनावसे अकाल मृत्यु हो गयी !

× × ×

एक नववधूने सासके व्यङ्ग्य बाणोंसे तंग आकर आत्महत्या की

है। उसने जो अन्तिम पत्र लिखा था, उसमें यह स्पष्ट किया गया था कि वह घुटन और तिरस्कारसे तंग आ गयी है और इस प्रकार अपने दुःखमय जीवनका अन्त कर रही है। स्त्रियोंमें तनाव बहुत अधिक रहता है, जिसके कारण वे मानसिक नरकमें रहती हैं!

× × ×

हालकी ही बात है कि एक पेन्शन लेने आये हुए वृद्ध बैंकमें ही गिरकर मर गये। एक अध्यापक कक्षामें कुर्सीपर बैठकर पढ़ाते-पढ़ाते ही चल बसे। अध्यापकों तथा विद्यार्थियोंको उनके शवका दाह-संस्कार करना पड़ा।

ऐसे व्यक्ति हरदम मनमें कुछ-न-कुछ तनाव या चिन्ताकी स्थिति बनाये रहते हैं। काल्पनिक भय तथा मानसिक बीमारियोंसे परीशान रहा करते हैं। परिवारकी छोटी-बड़ी अनेक चिन्ताएँ उन्हें सदैव घेरे रहती हैं। यही जीर्ण चिन्ताएँ बढ़कर मानसिक रोग बनते हैं और अन्तमें उनकी मृत्युके कारण बनते हैं।

तनावके कारण क्या हैं

प्रश्न उठता है, मानसिक तनाव क्यों उत्पन्न होता है?

आजकल लोग तनिक-सी बातपर क्रुद्ध हो जाते हैं। बुरा मानने और ईर्ष्या-वैर करनेकी दुष्प्रवृत्ति इतनी उग्र हो उठी है कि अहंपर तनिक-सी चोट लगते ही नाराज हो उठते हैं। उनकी पाशविक वृत्तियाँ उच्छृङ्खल हो उठती हैं। दूसरोंसे अनबन होनेपर

चिन्ता और फिर उससे मानसिक तनाव पैदा होता है। उनकी स्थिति नर-शरीरवाले एक पिशाच-जैसी हो जाती है।

पशुओंका स्वभाव है, बिना बात नाराज या असंतुष्ट हो बैठना, सींग या लातोंसे मारना या फिर दाँतोंसे काट लेना।

साँपको चाहे भूलमें ही या अनजानमें किसीने छेड़ दिया हो, पर वह कुत्सित स्वभाववश अपने-आपको थोड़ा-सा आघात लगनेमात्र-से ही इतना क्रुद्ध होकर तन जायगा कि सामनेवालेके प्राण ही लेकर छोड़ेगा।

कहते हैं कि सिंह, बाघ, तेंदुआ आदि हिंस्र पशु केवल इतनी-सी बातपर नाराज हो जाते हैं कि हमसे किसीने आँख ही कैसे मिलायी! नीची आँखें करके भले ही कोई निकल जाय, पर दूसरेके द्वारा उनका सामना किया जाना वे अपना अपमान समझते हैं। लोग बताते हैं कि भूत, प्रेत, पिशाच और राक्षस भी ऐसे ही असहिष्णु होते हैं। अपने विरुद्ध जरा-सी बात सुनते ही आवेशमें भर जाते हैं।

सर्प, बाघ और भूत-पिशाच मनुष्ययोनिमें तो नहीं माने जाते, पर मनुष्योंकी आकृतिमें भी बहुत-से पाये जाते हैं। जिन्होंने अपनी हिंस्र प्रवृत्तियों, अपने क्रोध, उत्तेजना, उन्माद और आवेशको वशमें करना नहीं सीखा है, वे हिंस्र पशु ही तो हैं।

आजका कानून फौरन बदला लेनेमें बाधा डालता है। इस-लिये दूसरोंके प्रति क्रोध, उत्तेजना और आवेश हमारे गुप्त मनमें जमे रह जाते हैं। आज मुकद्दमेबाजी तेजीसे चल रही है और

वकील लोग अनाप-शनाप कमा रहे हैं। इसका कारण यह है कि लोग मुकद्दमे लड़-लड़ाकर मनके तनावको किसी प्रकार निकालना चाहते हैं।

उसने मुझे अपशब्द कहा, उसने मेरी मान-हानि की, उसने मुझे पराजित किया और उसने मेरा धन हरण किया—ऐसे विचार जब गुप्त मनमें जमा हो जाते हैं, तब मन तनावकी स्थितिसे भर जाता है। मनुष्य किसी-न-किसी तरह बदला लेनेकी योजनाएँ बनाता रहता है। वैर बढ़ता ही जाता है। वैरसे वैर कभी शान्त नहीं होता। प्रेम, दया, करुणा, ममता, स्नेह, सहानुभूति आदि कोमल प्रवृत्तियोंके द्वारा ही वैर-भाव शान्त होता है और तनाव कम होता है।

कहा भी है—

अक्रोशदवधीन्मां स ह्यजयदहरच्च मे।
ये च तन्नोपनह्यन्ति वैरं तेषूपशाम्यति॥

अर्थात् उसने मुझे गाली दी, मेरा अपमान किया, मुझे पीटा, उसने मुझे पराजित किया और उसने मेरे धनका हरण किया—जो व्यक्ति ऐसे तनावपूर्ण विचारोंको मनमें स्थान नहीं देते, उनमें वैर शान्त हो जाता है। तनावपूर्ण स्थिति कम हो जाती है।

न हि वैरेण वैराणि शाम्यन्तीह कदाचन।
अवैरेण हि शाम्यन्ति एष धर्मः सनातनः॥

याद रखिये, वैरभाव रखनेसे वैर कभी शान्त नहीं हो सकता। अवैर अर्थात् प्रेममय क्षमाशील भाव रखनेसे ही वैरभाव (सब प्रकारका तनाव) शान्त होता है। यह सनातन धर्म है।

व्यर्थके झगड़ों और उत्तेजनासे कोई समस्या सुलझती नहीं, वरं लड़ाई-झगड़े बढ़ते ही जाते हैं। मुकद्दमेबाजीसे कुछ हाथ नहीं आता, दीर्घकालीन वैर चलता रहता है। मुकदमेमें विरोधी पक्ष भी अपना पक्ष न्यायपूर्ण ही बतलाता है। अतः वे जीत या हारकर भी अपने पीछे संताप, पश्चात्ताप, दुःखद बेबसीकी एक लम्बी शृङ्खला छोड़ देते हैं।

तनावपूर्ण स्थिति भयंकर है। उससे बचनेके लिये मानसिक उद्वेगोंको गुप्त मनमें स्थान न दिया जाय। उद्वेगोंसे सावधान रहें। आवेश और उत्तेजना, घबराहट और हड़बड़ी, क्रोध और असंतुलनके क्षणोंमें अपनेको काबूमें रक्खा जाय और धैर्य तथा शान्तिसे काम लिया जाय।

यदि आप मानसिक संतुलन बनाये रहें, तो कोई भी प्रतिकूल परिस्थिति ऐसी नहीं है कि उसका हल न निकल सके। आप केवल अपने मानसिक संतुलनको सुरक्षित रक्खें। अपनी सूझ-बूझ, बुद्धि और दूरदर्शितासे समस्याका हल निकालें।

हम कैसे सुखी रह सकेंगे ?

हमारे वेदोंमें मनकी तनावपूर्ण स्थितिको हटानेके अचूक उपाय दिये गये हैं, देखिये—

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या॥

(अथर्ववेद ३। ३०। १)

अर्थात् हम पारस्परिक वैर-भावको त्यागकर सहृदय, मनस्वी

तथा उत्तम स्वभाववाले हों; एक दूसरेको सदैव प्यारकी दृष्टिसे देखें। तभी हम सुखी रह सकेंगे।

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट
संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः।
अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत
सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोमि॥
(अथर्ववेद ३। ३०। ५)

अर्थात् जीवनको संशोधित करते हुए, ज्ञानमें वृद्धि करते हुए, परस्पर एक दूसरेकी सेवा-सहायता करते हुए, सदा-सर्वदा मीठी वाणीका उच्चारण करते हुए हम सब लोग मित्रतापूर्ण व्यवहार करें। सबके मन समान हों। (प्रेम, करुणा, दया, सहानुभूति, आनन्दकी दैवी स्थितियोंसे भरे रहें।)

अनमित्रं नो अधरादनमित्रं न उत्तरात्।
इन्द्रानमित्रं नः पश्चादनमित्रं पुरस्कृधि॥
(अथर्ववेद ६। ४०। ३)

अर्थात् हे देव! मेरे नीचे-ऊपर तथा आगे-पीछे ऐसे ही पुरुषको प्रस्तुत करो, जो शत्रुभावसे रहित एवं मैत्रीभावनासे परिपूर्ण हो।

आपकी यही आकाङ्क्षा सदा रहनी चाहिये—

यद् वदामि मधुमत् तद् वदामि यदीक्षे तद् वनन्ति मा।
त्विषीमानस्मि जूतिमानवान्यान् हन्मि दोधतः॥
(अथर्ववेद १२। १। ५८)

अर्थात् मैं सदैव अपने मुखसे मीठे वचन बोलूँ। (मनमें दैवी गुण धारण करता रहूँ) सभी मुझसे प्यार करें। मैं दिव्य

प्रकाशको अपने हृदयमें धारण करूँ। जो बुरे तत्त्व मेरे समीप आयें, उनसे मैं सदा सुरक्षित रहूँ।

> बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः
> सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः।
> अभिवीरो अभिषत्वा सहोजि-
> ज्जैत्रमिन्द्र रथमा तिष्ठ गोविदन्॥
> (अथर्ववेद १९।१३।५)

बन्धुओ! जीवनमें पूर्ण सफलता और मानसिक सुख प्राप्त करना चाहते हो तो अपनी दैवी शक्तियों (दैवी सम्पदा) को पहचानो और आसुरी दुष्प्रवृत्तियोंसे बचो। जीवनमें अनेकों विघ्न-बाधाएँ तो सदा आती ही रहेंगी। उनसे कभी मुक्ति नहीं होगी, पर उनसे संघर्ष करनेके लिये आपको अपने उज्ज्वल भविष्य और दैवी स्वरूपमें विश्वास होना चाहिये।

परमात्माके भजन, कीर्तन, धार्मिक ग्रन्थोंके अध्ययन, श्रवण इत्यादिसे मानसिक तनाव दूर होता है। छोटे बच्चोंसे खेलनेमें मन प्रसन्न रहता है। संगीतका बड़ा ही स्वास्थ्यदायक प्रभाव होता है। आप धार्मिक संगीत सुनें और थोड़ा-थोड़ा स्वयं गाया करें। धार्मिक गायन, भजन, तुलसीकृत रामायण, भक्तप्रवर सूर और मीराँबाईके भजन तन्मयतापूर्ण स्वरमें गानेसे मनका तनाव दूर होता है। यथासम्भव मनमें किसीके प्रति वैरभाव, गुप्त भय अथवा चिन्ता न रखें। प्रतिदिन भगवान्‌का पूजन किया करें।

उद्विग्नतासे अकाल-मृत्यु

एक रिपोर्टसे पता चला है कि अमेरिकामें पिछले वर्षोंकी अपेक्षा रक्तचाप, हृदयके रोगों, आत्महत्याओं और मानसिक व्याधियोंमें भारी वृद्धि हुई है। हाई ब्लड-प्रेशरसे आठ लाख अट्ठासी हजार, मानसिक रोगोंसे नौ लाख, कैन्सरसे लगभग तीन लाख व्यक्तियोंकी मृत्यु हुई है। यह संख्या पिछले वर्षोंकी अपेक्षा दूनी है। ये सब लोग उद्विग्न जीवनसे इस भयानक मृत्युको प्राप्त हुए हैं।

इस प्रकारकी असंख्य मृत्युएँ प्रत्येक देशमें हर वर्ष होती रहती हैं, जिनकी ओर कोई ध्यान नहीं देता और बहुत-सी तो पत्रोंमें छपतीतक नहीं हैं। अकाल-मृत्युको प्राप्त होनेवाले लोगोंमें अधिकांश लोग ऐसे हैं जो नशा, व्यभिचार, व्यापारकी छोटी-बड़ी चिन्ताएँ, अनुचित प्रेम-सम्बन्धों, व्यर्थकी निराशाओं और मानसिक उत्तेजनाके

कारण अपनी जीवनीशक्तिको खो बैठनेसे बीमार हुए हैं। उनका मानसिक संतुलन ऐसा बिगड़ा कि वे फिर कभी अच्छे न हो सके।

उद्विग्न जीवन क्या है ?

आपको कोई मानसिक कष्ट, परीशानी या क्रोध आया और आपकी इच्छा-पूर्ति न हुई, तो आप मन-ही-मन जले-भुने-से रहते हैं। क्रोधकी स्थितिमें मनमें एक तनावका अनुभव करते हैं और अंदरसे उखड़े-उखड़े परीशान बेचैन-से रहते हैं, बार-बार चिन्तित होते हैं, किसीपर गुस्सा उतारनेको मन चाहता है। इन लक्षणोंसे मालूम होता है कि आप मनमें उद्विग्न हैं। यह मानसिक असंतुलन अकाल-मृत्यु या हृदयरोगका कारण बन सकता है।

मनकी अशान्ति हमारे स्वास्थ्यके लिये सर्वथा अहितकर है। मनुष्यका हर मनोविकार सीमासे बाहर होकर उद्विग्नता और मानसिक रोग उत्पन्न कर सकता है।

उद्विग्न रहनेवालेको रातमें नींद नहीं आती। वह सारी रात बिस्तरपर करवटें बदलता रहता है। कभी किसीके द्वारा किये गये अपमानकी बात सोचता है, कभी समाजमें होनेवाली अपनी बुराई, कटु आलोचना या विरोधसे भयभीत होता है। झूठी निन्दा-से डरते रहता है। अपनी तनिक-सी निन्दा सुनते ही वह विक्षुब्ध हो उठता है और उसे सहन नहीं कर पाता।

प्रायः घरेलू कलह और पारिवारिक झगड़े उद्विग्नताके कारण

होते हैं। औरतोंमें तनिक-तनिक-सी बातोंपर कहा-सुनी, कटुता और टीका-टिप्पणी होती रहती है। वे तनिक-तनिक-सी परीशानियोंको तिलका ताड़ बना देती हैं और घरभरको सिरपर चढ़ा लेती हैं। यह तू-तू मैं-मैं कोमल वृत्तिके आदमियोंको परीशान किये रहती है। बच्चोंकी आवारागर्दी, कन्याके विवाहोंकी चिन्ता पति-पत्नीमें मतभेद, हाथकी तंगी, नशा, बढ़ते हुए मूल्य और अफसरोंद्वारा किया गया अपमान या अत्याचार आदि सैकड़ों कारणोंसे उद्विग्नता या मानसिक बेचैनी पैदा हो सकती है। घुटन और तिरस्कारका फल उद्विग्नता है।

स्नायुमण्डलका खिंचाव

इस सम्बन्धमें अमेरिकाके सबसे बड़े मनोवैज्ञानिक विलियम जेम्सकी राय बहुमूल्य है—

'वर्तमान और भविष्यकी निरर्थक और काल्पनिक चिन्ताओं, गुप्त छिपे हुए भय और नाड़ियोंके अनावश्यक खिंचावसे मनुष्यकी कार्यक्षमता निश्चित रूपसे घटती है और उसकी तरक्कीकी राहमें रोड़े अटकाती है। अकाल-मृत्युका या हृदयगतिके रुकनेका मुख्य कारण स्नायुमण्डलका तनाव है।'

बहुत अधिक कठिनाइयों तथा झंझटोंमें फँसा हुआ व्यक्ति स्नायविक तनावसे ग्रसित रहता है। हर समय मानसिक तनाव बनाये रखनेसे स्नायविक विकार उत्पन्न हो जाते हैं और चेहरा भावहीन हो जाता है। अमेरिकन लोगोंके भावहीन होनेका यह एक कारण है। यदि आप सदा चिन्तित रहते हैं या कोई गुप्त

भय छिपा हुआ है, भविष्यके विषयमें आशंकित हैं तो जान लीजिये आपके मनमें खिंचाव है। आपकी मांसपेशियाँ और नाड़ियाँ हर समय तनी रहेंगी।

मान लीजिये, आप साधारणतः कुर्सीपर बैठे हुए एक बारमें १६ बार साँस लेनेके स्थानपर १८-१९ बार साँस लेते हैं और हर साँस निकलनेके पहले ही साँस लेना प्रारम्भ कर देते हैं, तो आपके स्नायुमण्डलपर व्यर्थ ही तनाव पड़ता है। आप हर समय हाँफते रहेंगे; आपका मन भविष्यकी चिन्ताओंसे परीशान रहेगा।

दूसरी ओर यदि आपके ललाटपर चिन्ताकी सिकुड़नें नहीं रहतीं, आप शान्तिपूर्वक धीरे-धीरे पूरी साँस लेते हैं, आपकी सब मांसपेशियाँ ढीली रहती हैं, तो ये चिन्ताएँ आपके मनमें प्रवेश ही नहीं कर पायेंगी।

आजके मानवकी आन्तरिक विक्षुब्ध स्थिति

आजके सभ्य और सुशिक्षित कहलानेवाले मानवका मन बुरी तरह विक्षुब्ध है। वह हर समय तनावकी मनःस्थितिमें रहता है। मन-ही-मन आर्थिक या सामाजिक परीशानियोंमें डूबा रहता है। वह पर्वत-जैसी इन विषमताओंसे हारकर स्नायविक दुर्बलता अथवा हीनत्वकी कल्पित भावनासे दुखी रहता है। ये परीशानियाँ प्रायः कल्पित और कृत्रिम होती हैं।

स्नायविक दुर्बलताका एक कारण आजके मनुष्यका गिरा हुआ स्वास्थ्य भी है। उसे पौष्टिक अन्न, घी, दूध या तरावटकी शुद्ध

वस्तुएँ नहीं मिलती हैं। वह मस्तिष्कमें खुश्की उत्पन्न करनेवाले शराब, चाय, कहवा, बीड़ी-सिगरेट या और मादक द्रव्योंके बलपर शरीरकी मशीन खींचता है। इन कृत्रिम उत्तेजक तत्त्वोंसे कुछ दिन शरीररूपी मशीन चल तो जाती है, पर अन्ततः वह टूट-फूट जाती है और अकाल-मृत्यु होती है। इसलिये स्नायविक रोगोंकी शारीरिक चिकित्सा होनी चाहिये। स्वास्थ्यके लिये प्राकृतिक भोजन और प्राकृतिक उपचार ही काममें लाने चाहिये।

मनुष्यके अच्छे स्वास्थ्यका बीजारोपण माताके गर्भमें ही हो जाता है। जबतक माता-पिता अपने शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्यका पूरा ध्यान नहीं रखते, तबतक आनेवाली पीढ़ी मानसिक रोगोंसे नहीं बच सकती।

आजकल एक दूसरेकी कटु आलोचना, परच्छिद्रान्वेषण, खराबियाँ निकालना, शिकायतें, ईर्ष्याका प्रदर्शन बहुत अधिक हो रहा है। राजनीतिमें तो त्रुटियाँ निकालनेकी गंदी आदतें विशेष देखी जाती हैं, किंतु इनसे कदापि विक्षुब्ध नहीं होना चाहिये।

संकटके समय मानसिक संतुलन बनाये रहें

किसी भी आपत्तिके अवसरपर आपको चाहिये कि सबसे पहले उस दूषित प्रभावसे अपने मस्तिष्ककी शान्तिकी रक्षा करें। मनको ठंडा रक्खें और ठंडे दिलसे छुटकारेका कोई उपाय सोचकर कार्यान्वित करें। उद्विग्नतासे बचे रहें।

यदि आपका मस्तिष्क प्रभावित हो गया, तो समझ लेना

चाहिये कि आपके सारे अस्त्र-शस्त्र छिन गये, टक्कर लेनेके सारे साधन समाप्त हो गये।

मस्तिष्ककी बचानेका सबसे सरल उपाय है तटस्थता। पर तटस्थतासे क्या मतलब है?

अपनेपर आयी आपत्तिसे अपनेको अलग कर उसका इस प्रकार अध्ययन कीजिये, जैसे उस आपत्तिसे आपका कोई सम्बन्ध ही नहीं है; मानो वह आयी ही नहीं है; यदि आयी है तो आप उसके दर्शकमात्र हैं।

विरोध और आलोचनाके समय चट्टानकी तरह अडिग रहें

आप सत्पथपर चलते हुए दूसरोंकी व्यर्थकी टीका-टिप्पणीसे कदापि परीशान न रहें। विरोध बड़े-से-बड़े महापुरुषोंका हुआ है और उन्होंने अपनी मनःस्थितिको ठंडा और शान्त बनाकर उसका सफलतापूर्वक सामना किया है।

एक बार महर्षि दयानन्दजी सरस्वतीका कुछ लोगोंने जान-बूझकर बड़ा गंदा विरोध किया। पूनाकी घटना है। गधेपर उनका बुत बनाकर उसे जूतोंकी माला पहिनाकर जलूसके रूपमें सरे बाजार निकाला गया। बुतका मुँह काला कर दिया गया। इसकी सूचना जब स्वामीजीको दी गयी तो उन्होंने कहा—

'नकली दयानन्दकी ऐसी हालत होती है। वह नकली दयानन्द है तो उसकी ऐसी दुर्गति होनी ही चाहिये। मैं असली दयानन्द आपके सामने शान्त स्थिर बैठा हूँ। इस आलोचनासे मुझपर किञ्चित् भी प्रभाव पड़नेवाला नहीं है।'

बस, वे विरोधकी बात सुनकर भी उसी प्रकार शान्त और स्थिर बने रहे। तनिक भी उद्विग्न न हुए। परीशानीकी किञ्चित् भी झलक उनके मस्तकपर नहीं थी।

इसी प्रकार कर्णवास (यू. पी.) का एक उत्तेजक पण्डित स्वामीजीको रोज गाली सुनाया करता था, पर वे सुनी-अनसुनी कर दिया करते थे। संयोगसे एक दिन वह बीमार पड़ गया और गाली न देने आया। इसपर स्वामीजीने उस पण्डितके लिये फल-फूल भेजे। इस सद्भावपर वह बड़ा लज्जित हुआ और उसकी गाली देनेकी आदत छूट गयी।

एक व्यक्ति महात्मा बुद्धको प्रतिदिन कटु वचन, तिरस्कार और गालियाँ सुनाया करता था। चार दिन बराबर वह उन्हें गाली दे-देकर परीशान करता रहा, पर महात्मा तो सदैव शान्त स्थिर रहते हैं, विक्षुब्ध नहीं होते। महात्मा बुद्धकी मानसिक शान्तिपर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ।

वह बोला, 'आपपर मेरे कटु वचनोंका कोई असर नहीं है।'

महात्मा बुद्धने उत्तर दिया, 'जो किसीकी भेंट स्वीकार न करे, तो वह भेंट किसके पास रहती है?'

उसने कहा, 'वह तो देनेवालेके ही पास रहती है।'

बुद्ध बोले, 'तुमने मुझे गालियाँ दीं, जिन्हें मैंने स्वीकार नहीं किया। इसलिये वे सब कटु वचन, तिरस्कार और गालियाँ स्वयं तुम्हारे पास ही रहीं।'

वह निरुत्तर हो गया। वास्तवमें यही शान्त और मनकी पूर्ण स्थिर अवस्था है जिसका अभ्यास करनेसे चित्तकी उद्विग्नता नष्ट होती है।

उद्विग्नतासे बचनेका नया उपाय

इंगलैंडके एक मानसिक-रोगविशेषज्ञ डा० हैनरी रोलिनका अनुभव है कि मानसिक परीशानियों, तनाव और उद्विग्नताको दूर करनेमें संगीत, भजन, कीर्तन तथा काव्यके पाठसे बहुत सहायता मिलती है। डा० हैनरी रोलिनके पास मानसिक रोगोंका एक बहुत बड़ा अस्पताल है।

उन्होंने बताया है कि लगभग दस वर्ष पहले जब मानसिक रोगियोंको संगीत-उपचारमें लाया गया था, तो कोई विशेष लाभ नहीं हुआ था। बादमें ऐसे कुछ रोगियोंको, जो संगीत जानते थे, गानेके लिये प्रेरित किया गया और अन्य ऐसे रोगियोंको उसमें शामिल होनेका प्रोत्साहन दिया गया, जो संगीत नहीं जानते थे।

इन लोगोंको छोटे-छोटे दलोंमें ऐसे कमरोंमें एकत्रित किया गया, जहाँ प्यानो, वायलिन, बैंजों तथा अन्य वाद्य-यंत्र थे। जब संगीत शुरू किया गया और रोगियोंको भी उसमें शामिल होनेके लिये प्रेरित किया गया तो लाभ-ही-लाभ हुआ। यह प्रयोग काफी सफल रहा है।

डा० हैनरीका कहना है कि संगीतद्वारा चिकित्साके लिये यह जरूरी है कि रोगियोंको अलग-अलग दलोंमें रक्खा जाय।

मानसिक परीशानीसे पीड़ित व्यक्ति इस आश्वासनकी खोजमें रहता है कि उसकी दूसरोंको आवश्यकता है । उसको गानेके लिये प्रेरित करना एक आश्वासन सिद्ध हुआ है । बहुत-से मानसिक रोगियोंको इस परीक्षणसे लाभ हुआ है ।

संगीत सुनने और गानेसे मनका तनाव दूर होता है और ईर्ष्या, वैर, क्रोध तथा चिन्ताओंको बह जानेके लिये एक स्वस्थ-प्रसादमयी धारा मिल जाती है ।

सब प्रकारके तनाव और विक्षोभका प्रारम्भ मनसे होता है । आपके जीवनमें सर्वत्र मनकी ही प्रधानता है । आपकी सब प्रवृत्तियाँ मनोमय होती हैं । यदि मनुष्य शान्त और संतुलित मनसे आचरण करता है, तो सुख और सफलता उसका ऐसे अनुसरण करते हैं, जैसे छाया मनुष्यका अनुसरण करती है । याद रखिये—

अक्रोशद्वधीन्मां स ह्यजयद्हरच्च मे ।
ये च तन्नोपनह्यन्ति वैरं तेषूपशाम्यति ॥

अर्थात् उसने मुझे अपशब्द कहा, उसने मुझे पीटा, उसने मुझे पराजित किया, उसने मेरे धनका हरण किया—जो व्यक्ति ऐसे विचारोंको मनमें नहीं गाँठते, उनका वैर-भाव दूर हो जाता है । मनका उद्वेग दूर हो जाता है ।

न हि वैरेण वैराणि शाम्यन्तीह कदाचन ।
अवैरेण हि शाम्यन्ति एष धर्मः सनातनः ॥

याद रखिये, मनमें वैर रखनेसे वह शान्त नहीं होता । अवैर

(प्रेम, वात्सल्य, दया, करुणा, उत्फुल्लता) से मन शान्त होता है। यह सनातनधर्म है।

आध्यात्मिक उपायोंसे मनको शान्ति मिलती है और संतुलन ठीक रहता है। जब डाक्टरी चिकित्सा कुछ कार्य नहीं करती, तब आध्यात्मिक दवाई मनको स्वस्थ कर देती है। आध्यात्मिक उपायोंद्वारा मनुष्यके मनकी व्याधियाँ दूर की जा सकती हैं। दुःख, व्याधि, क्लेश और निराशाओंसे मुक्ति प्राप्त की जा सकती है।

जहाँ मनुष्यके ज्ञान-विज्ञानकी चिकित्सा-पद्धति हारती है, वहाँ ईश्वरीय शक्तिकी सहायतासे अद्भुत लाभ उठाये जा सकते हैं। आप चाहे कैसे ही दुखी क्यों न हों, मनमें उद्वेग भरा हो, निराश हो रहे हों, आध्यात्मिक तरीकोंका भी जरा प्रयोग करके देखें। आप उनसे हर दिशामें लाभ उठा सकते हैं।

एक आध्यात्मिक उपाय

प्रार्थना वह आध्यात्मिक उपाय है जिससे मनुष्य प्रत्यक्ष ईश्वरसे निकट सम्बन्ध जोड़ता है और सीधी ईश्वरीय सहायता प्राप्त करता है। जो आर्त भावसे भगवान्‌को पुकारते हैं, वे निश्चय ही सहायता पाते हैं। आस्तिक भाव ही मनुष्यको उत्साहित करनेवाला है।

आन्तरिक विक्षोभ और बाह्य संकट तभी आते हैं, जब मनुष्य आनन्दकन्द परम शान्तस्वरूप ईश्वरसे दूर रहता है। ईश्वर अनन्त सुखका स्रोत है। निर्मल शीतल जलके झरनेके पास रहनेवाला प्यासा क्यों रहेगा ?

जो ईश्वरसे जितना दूर होगा, उसे उतनी ही आन्तरिक अशान्ति विक्षुब्ध करेगी और उसे बाह्य जीवनमें दुःख-दारिद्र्य, कष्ट-कलह और शोक-संताप सता रहे होंगे। सच्ची प्रार्थनाके द्वारा मनुष्य परमात्माकी इस सत्तासे प्रत्यक्ष सम्बन्ध जोड़कर आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त करता है।

युद्ध-कालकी एक घटना है

एक सैनिकके मुँहपर गोली लगी और वह पीड़ासे बुरी तरह तड़फने लगा। डाक्टरने गोली निकालनेके लिये उसे आपरेशन-की सलाह दी। लोगोंका अनुमान था कि वह आपरेशनमें मर जायगा।

लेकिन उस सैनिकको ईश्वरकी शक्तिमें परम विश्वास था। वह प्रार्थनाद्वारा उसी विशाल शक्ति-स्रोतसे शक्ति खींचने लगा। पूरी निष्ठासे उसने प्रभुसे प्रार्थना की—

'हे शक्तिस्रोत! मुझे इतनी शक्ति दीजिये कि इस विकट आपरेशनके कष्टको सफलतापूर्वक सहन कर सकूँ। मुझमें अपना कष्टनिवारक आत्मबल भर दीजिये। मैं अपने आपको आपके हाथोंमें सौंप रहा हूँ।'

उसने अनुभव किया कि गुप्त आत्मिक शक्ति उसे कष्टके लिये मजबूत कर रही है। उसके शरीरमें शक्तिका संचार हो रहा है। परमात्माकी शक्ति उसे सम्हाले हुए है। उस शक्तिमें विश्वास लिये वह धीरे-धीरे सो गया।

प्रातः उठा तो उसमें नयी शक्ति थी। लोग समझते थे कि वह मर चुका होगा, पर वह प्रसन्नतापूर्वक बोला, 'डाक्टर! मैं आपरेशनके लिये तैयार हूँ।'

सभी उसके साहसपर चकित थे। उसके आत्मविश्वासके कारण वास्तवमें वह आपरेशन पूर्ण सफल रहा और वह सिपाही जीवित रहा। उसने बताया कि यह सब ईश्वरीय गुप्त सहायताका अद्भुत प्रभाव था। सच्ची श्रद्धापूर्ण प्रार्थनाके द्वारा उसके समस्त शारीरिक दुःख दूर हुए थे और वह मौतके कराल दुःखसे बचा था।

आप ईश्वरमें विश्वास रक्खें। आस्तिकताका मतलब है, यह सोचना कि मैं एक ही श्रेष्ठ तत्त्वसे ओत-प्रोत हूँ। वह श्रेष्ठ तत्त्व हर वस्तुमें विद्यमान है।

सच्ची ईश्वर-प्रार्थना, भजन, पूजन, कीर्तन, भक्तिसे हमारे शोक-संताप, अभाव और कष्ट कटते हैं। आस्तिक मनुष्यको न तो आन्तरिक विक्षोभोंका कष्ट उठाना पड़ता है और न बाह्य जीवन-में कष्ट सहने पड़ते हैं। वह हर परिस्थितिको हँसी-खेल समझता हुआ अपने सद्‌गुणों और सद्भावोंके सहारे अपना जीवन आनन्दमय बनाये रहता है और जीवनमें प्रतिक्षण ईश्वरीय सुखकी अनुभूति करता रहता है।

मानसिक तनावसे मुक्त रहनेका अभ्यास डालें

ऐसा प्रयत्न करें कि मनमें किसी प्रकारका तनाव या घबराहट न रहे। संसारके सब कार्य प्रभुकृपासे स्वयं ही पूर्ण हो जाते हैं। आप व्यर्थ ही उनके विषयमें परीशान रहते हैं और मनको विक्षोभ-

की स्थितिमें रखकर अस्वस्थ रहते हैं। आपकी समस्याएँ भी एक-एक कर स्वयं हल होती जा रही हैं। आप अपना कर्तव्यभर कर दिया करें और फलके लिये ईश्वरपर विश्वास रक्खें।

मानसिक तनावसे परीशान व्यक्ति धीरे-धीरे अकाल-मृत्युकी ओर अग्रसर होता है। ऐसा अभ्यास डालें कि आपकी आवश्यकताएँ कम-से-कम रहें। जिस आवश्यकताकी पूर्ति नहीं होती, वह अपूर्ण अवस्थामें मानसिक तनाव पैदा करती है। थोड़ी आवश्यकताओंवाला व्यक्ति आसानीसे शान्त मनःस्थितिका आनन्द ले सकता है। जिनको भोग-विलास, आरामतलबी, जिह्वाका स्वाद या इन्द्रियलोलुपता, नशेबाजीकी गंदी आदतें पड़ गयी हैं, वे कृत्रिम आवश्यकताओंके पूर्ण न होनेसे मानसिक तनावसे परीशान रहते हैं। आप ऐसे न रहें। हमारे शास्त्रोंमें कहा है—

वि यात विश्वमत्रिणम्। (ऋग्वेद १। ८६। १०)

चटोरे लोग बेमौत मरते हैं। जीभपर काबू रक्खो। स्वादके लिये नहीं, स्वास्थ्यके लिये खाओ।

व्यर्थके अपथ्य खाद्य-पदार्थोंको खानेसे उत्तेजना होती है और मानसिक तनावसे परीशानी होती है।

सुखी रहना है, शान्त और स्थिर रहना है तो उन विचारोंको त्याग दीजिये जो आत्माको कष्ट देते हैं।

अनीति, अधर्म, चिन्ताके कुविचार तो सर्वथा त्यागने योग्य ही हैं।

हरी आँखोंवाले इस दैत्यसे बचिये !

एक कुबड़ी बुढ़ियाको देखकर नारदमुनि कृपालु हुए । बोले—'बुढ़िया ! मेरे पास आ, मैं योगबलसे तेरा कूबड़ दूर कर दूँगा ।'

बुढ़ियाने हाथ जोड़कर कहा—'नारदबाबा ! कृपालु ही हुए हो, तो मेरा कूबड़ तो ज्यों-का-त्यों रहने दो, पर मेरे पड़ोसियोंकी कमरमें भी कूबड़ कर दो ।'

आश्चर्यचकित हो नारदमुनिने पूछा—'बुढ़िया ! दूसरोंके कूबड़से तुझे क्या लाभ होगा भला ?'

बुढ़ियाने कहा—'मैं उन्हें कमर झुकाकर चलते देखकर सुख पाऊँगी ।'

यह है ईर्षा कि बुढ़िया अपने सुखको भूलकर दूसरोंके दुःखमें दिलचस्पी लेती है । इसका अर्थ है कि संसारमें ईर्षाका भाव प्रबल हो, तो वह सुखका स्वर्ग नहीं, दुःखका रौरव ही हो जाय ।

ईर्षा क्या है ?

ईर्षा एक कुत्सित भाव है, जो दूसरेके गुण, सुख, उन्नति और विकासको देखकर मनमें पीड़ा और जलन उपजाता है। यह एक आन्तरिक आग है, जो दूसरेकी बढ़ती देखकर भीतर-ही-भीतर हमें जलाता है।

यह भाव कुत्सित क्यों है ? इसलिये कि यह अपना सुख नहीं चाहता, अपनी उन्नतिके लिये प्रेरित नहीं करता बल्कि दूसरे-का दुःख चाहता है, दूसरेको गिरानेकी प्रेरणा देता है।

ईर्षा एक संकर मनोविकार है, जो आलस्य, अभिमान और नैराश्यके संयोगसे उपजता-बढ़ता है। अपने आपको दूसरेसे ऊँचा माननेकी भावना अर्थात् मनुष्यका 'अहं' पुष्ट करता है।

ईर्षा मनुष्यकी हीनत्व-भावनासे संयुक्त है। अपनी हीनत्व-भावना-ग्रन्थिके कारण हम किसी उद्देश्य या फलके लिये पूरा प्रयत्न तो कर नहीं पाते, उसकी उत्तेजित इच्छा करते रहते हैं। हम पहले सोचते हैं—काश, हमारे पास अमुक चीज होती ! फिर सोचते हैं—हाय, वह चीज उसके पास तो है, हमारे पास नहीं ! तब सोचते हैं—वह वस्तु यदि हमारे पास नहीं है, तो उसके पास भी न रहे।

स्पर्धा ईर्षाकी स्वस्थ अवस्था है। स्पर्धामें किसी सुख, ऐश्वर्य, गुण या मानसे किसी व्यक्तिविशेषको सम्पन्न देख अपनी त्रुटिपर दुःख होता है, फिर प्राप्तिकी एक प्रकारकी उद्वेगपूर्ण इच्छा उत्पन्न

होती है । स्पर्धा वह वेगपूर्ण इच्छा या उत्तेजना है, जो दूसरेसे अपने आपको बढ़ानेमें हमें प्रेरणा देती है । स्पर्धा बुरी भावना नहीं । इसमें हमें अपनी कमजोरियोंपर दुःख होता है । हम आगे बढ़कर अपनी निर्बलताको दूर करना चाहते हैं ।

स्पर्धामें दुःखका विषय होता है—'मैंने उन्नति क्यों नहीं की ?' और ईर्षामें दुःखका विषय होता है—'उसने उन्नति क्यों की ?' स्पर्धा संसारमें गुणी, प्रतिष्ठित और सुखी लोगोंकी संख्यामें कुछ बढ़ती करना चाहती है और ईर्षा कमी ।

स्पर्धा व्यक्तिविशेषसे होती है । ईर्षा उन सबसे होती है, जिनके विषयमें यह धारणा हो कि लोगोंकी दृष्टि उनपर अवश्य पड़ेगी या पड़ती है । ईर्षामें क्रोधका भाव किसी-न-किसी प्रकार मिश्रित रहता है । ईर्षालुके लिये कहा भी जाता है कि अमुक व्यक्ति ईर्षासे जल रहा है । साहित्यमें ईर्षाको संचारीरूपमें समय-समय-पर व्यक्त किया जाता है, पर क्रोध बिल्कुल जड-भाव है । जिसके प्रति हम क्रोध करते हैं, उसके मानसिक उद्देश्यपर ध्यान नहीं देते । निर्धन ईर्षावाला केवल अपनेको नीचा समझे जानेसे बचनेके लिये आकुल रहता है, पर धनी व्यक्ति दूसरेको नीचा देखना चाहता है ।

ईर्षा दूसरेको असम्पन्न—हीन देखनेकी इच्छाके अपूर्ण रहनेसे उत्पन्न होती है । यह अभिमानको जन्म देती है, अहंकारकी अभिवृद्धि करती है और कुढ़नका ताना-बाना बुनती रहती है ।

अहंकारसे आहत होकर हम दूसरेकी भलाई नहीं देख सकते और अभिमानमें फँसकर हमें अपनी कमजोरियाँ नहीं दीखतीं। अभिमानका कारण अपने विषयमें बहुत ऊँची मान्यता बना लेना है। ईर्षा उसीकी सहगामिनी है—जो कुछ हूँ, मैं हूँ, जो कुछ मिले, मुझे ही मिले।

ईर्षाद्वारा हम मन-ही-मन दूसरेकी उन्नति देखकर मानसिक दुःखका अनुभव किया करते हैं। अमुक मनुष्य ऊँचा उठता जा रहा है। हम यों ही पड़े हैं, उन्नति नहीं कर पा रहे हैं। फिर वह भी क्यों इस प्रकार उन्नति करे। उसका कुछ बुरा होना चाहिये। उसपर कोई दुःख, रोग, शोक, कठिनाई अवश्य पड़नी चाहिये। उसकी बुराई हमें करनी चाहिये। यह करनेसे उसे अमुक प्रकारसे चोट लगेगी। इस प्रकारकी विचारधारासे ईर्षा निरन्तर मनको क्षति पहुँचाती है। अशुभ विचार करनेसे सत्प्रवृत्तियोंका, हमारी प्राणशक्तिका धीरे-धीरे ह्रास होने लगता है।

ईर्षासे उन्मत्त हो मनुष्य धर्म, नीति तथा विवेकका मार्ग त्याग देता है। उन्मत्तावस्था-सी उसकी साधारण अवस्था हो जाती है और दूसरे लोगोंकी साधारण अवस्था उसे अपवादके सदृश प्रतीत होती है। मस्तिष्कमें ईर्षाके विकारसे नाना प्रकारकी विकृत मानसिक अवस्थाओंकी उत्पत्ति होती है। भय, घबराहट, भ्रम—ये सब दोष ईर्षा और उससे उत्पन्न विवेक-बुद्धिके अपकर्षसे उत्पन्न होते हैं।

प्रत्येक क्रियासे प्रतिक्रियाओंकी उत्पत्ति होती है। ईर्षाकी

क्रियासे मनके बाह्य वातावरणमें जो प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न होती हैं, वे विषैली होती हैं । मनुष्यकी अपवित्र भावनाएँ उसके इर्द-गिर्दके वातावरणको दूषित कर देती हैं । वातावरण विषैला होनेसे सबका अपकार होता है । ईर्षाकी जो भावनाएँ हम दूसरोंके विषयमें निर्धारित करते हैं, सम्भव है दूसरे भी प्रतिक्रियास्वरूप वैसी ही धारणाएँ हमारे लिये मनमें लायें ।

जो लोग यह समझते हैं कि वे ईर्षाकी कुत्सित भावनाको मनमें छिपाकर रख सकते हैं और यह मानते हैं कि दूसरा व्यक्ति उसे जान न सकेगा, वे बड़ी भूल करते हैं । प्रथम तो यह भावना छिप हो नहीं सकती, किसी-न-किसी रूपमें प्रकट हो ही जाती है, दूसरे दुराचार और उसे छिपानेकी भावना मनोविज्ञान-की दृष्टिसे अनेक मानसिक रोगोंकी जननी है । कितने ही लोगोंमें विक्षिप्त-जैसे व्यवहारोंका कारण ईर्षाजन्य मानसिक ग्रन्थि होती है । ईर्षा मनके भीतर-ही-भीतर अनेक प्रकारके अप्रिय कार्य करती रहती है । मनुष्यका जीवन केवल उन्हीं अनुभवों, विचारों, मनोभावनाओं, संकल्पोंका परिणाम नहीं जो स्मृतिके पटलपर हैं, प्रत्युत गुप्त मन-में छिपे हुए अनेक गुप्त संस्कार और अनुभव जो हमें खुले तौरपर स्मरण भी नहीं हैं, वे भी हमारे व्यक्तित्वको प्रभावित करते हैं । हमारे गुप्त मनमें रही हुई गुप्त ईर्षा हमारे जीवनमें निरन्तर क्रियाशील होती रहती है । ईर्षा, क्रोध, कामभाव, द्वेष, चिन्ता, भय और दुर्व्यवहारका प्रत्येक अनुभव अपना कुछ संस्कार हमारे

अन्तर्मनपर अवश्य छोड़ जाता है। ये संस्कार और अनुभव सदैव सक्रिय और पनपनेवाले कीटाणु हैं। इन्हींके ऊपर नवजीवनके निर्माणका कार्य चला करता है।

ईर्षाके विकार अन्तर्मनमें पैठ जानेपर आसानीसे नहीं जाते। उससे स्वार्थ और अहंकारके तीव्र होनेपर सुप्त और जाग्रत् भावनाओंमें संघर्ष और द्वन्द्व होने लगता है। निद्रा-नाश, घबराहट, प्रतिशोध लेनेकी भावना, हानि पहुँचानेके अवसरकी प्रतीक्षा, विमनष्कता इत्यादि मानसिक व्यथाएँ ईर्षापूर्ण मानसिक स्थितिकी द्योतक हैं। यदि यह विकार बहुत तेज हुआ तो मनपर एक अव्यक्त चिन्ता हर समय बनी रहती है। जल, अन्न, व्यायाम, विश्रामका ध्यान नहीं रहता। शयनके समय, घातप्रतिघातका संघर्ष और अव्यक्तकी अद्भुत वासनाएँ आकर विश्राम नहीं लेने देतीं। अतः मनुष्यकी पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ बिगड़ जाती हैं। रुधिरकी गतिमें रुकावट होने लगती है। शारीरिक व्याधियाँ भी फूट पड़ती हैं। सम्पूर्ण शरीरमें व्यवधान उपस्थित होनेसे मस्तिष्कका पोषण उचित रीतिसे नहीं हो पाता।

ईर्षा और क्रोधको मनमें स्थान देना अनेक मानसिक क्लेशों तथा रोगोंको मोल लेना है। इसलिये सदा सावधान रहिये और ईर्षासे बचिये। इस दुष्ट भावको 'हरी आँखोंवाला' दैत्य ठीक ही कहा गया है।

मनके ये राक्षस भी मृत्युका कारण बन सकते हैं !

अपेहि मनसस्पतेऽपक्राम परश्चर ।

(अथर्ववेद २० । ९६ । २३)

अर्थात् मानसिक कमजोरियोंको दूर कीजिये । मनकी दुर्बलता घातक है !

इतना हँसा कि मर गया !

जोधपुर, २३ अक्टूबर ६५ का एक समाचार है—यहाँसे प्राप्त एक सूचनाके अनुसार एक जनसंघी कार्यकर्त्ता चुनाव जीतनेकी खुशीसे इतना अधिक प्रसन्न हुआ कि उसे जानसे हाथ धोना पड़ा ।

बताया जाता है कि अपने दलके चुनाव जीतनेपर वह इतना ज्यादा खुश हुआ कि बस नाच उठा ! उसके रोम-रोमसे प्रसन्नता फूटी पड़ रही थी, अणु-अणुसे आनन्द-उल्लास छूट रहा था, उसका अङ्ग-प्रत्यङ्ग नाच रहा था । बढ़ते-बढ़ते उसकी खुशी अपनी चरम सीमापर पहुँच गयी । जैसे कोई बड़ी तेज रफ्तारसे सरपट भागने-वाली मोटरको ब्रेक लगाकर रोक न पाये, वैसे ही वह अपनी खुशीकी तीव्र गतिको चेक नहीं कर पाया । बस, हँसता ही गया । हँसता—खिलखिलाता रहा । यह खिलखिलाहट क्रमशः बढ़कर एक ऐसी स्टेजपर पहुँची कि एकाएक दिलका दौरा पड़ गया । देखते-देखते वह वहीं गिर पड़ा और उसके प्राण-पखेरू उड़ गये ।

उसके शरीरमें कुछ नहीं बिगड़ा था; वह वैसा-का-वैसा ही मजबूत दीख रहा था, पर उसकी हँसीने ही उसके मस्तिष्कका

संतुलन नष्ट कर दिया था, जिसके मानसिक आघातसे वह प्राण खो बैठा था।

इसी प्रकारका एक और समाचार पत्रोंमें इस प्रकार छपा है—

मनीला, २२ नवम्बर १९६५। बयालीस वर्षीय बेन्तुरा कारवेलिस फिलिपाइन्सके चुनावोंमें एक शर्त जीत जानेपर इसी प्रकार सीमासे बाहर हँसनेके कारण मर गया। बात यह हुई कि वह अपने परिवारको खूब आह्लादपूर्ण स्वर और प्रसन्न मुखमुद्रामें हँस-हँसकर बता रहा था कि किस प्रकार उसने दस बोरे चावलकी एक शर्त जीती थी। तभी उसके सीनेमें दर्द महसूस हुआ। अंदर-से कुछ खिंचाव, कुछ तनाव-सा प्रतीत हुआ और तुरंत मानसिक आघातसे उसकी मृत्यु हो गयी!

एक तीसरा समाचार सुनिये—

शिवहर (मुजफ्फरपुर), २ जुलाई १९६५ की घटना है। इस गाँवकी एक बारातकी महफिलमें नृत्य और संगीतका समाँ बँधा हुआ था। चारों ओर आनन्दका स्रोत प्रवाहित हो रहा था। मस्तीका आलम था। सभी हँस-खेल रहे थे। वह किसी बातपर हँसने लगा और हँसते-हँसते मर गया।

बताया जाता है कि वह व्यक्ति शामियानेके एक बाँसके सहारे खड़ा होकर मस्तीसे नाच देख रहा था। इतना तन्मय था कि जैसे सब कुछ भूल गया हो। एकाएक नाचके एक मजारसे उसे कुछ ऐसी हँसी छूटी कि वह उसे रोक नहीं पाया। वह हँसी धीरे-धीरे बढ़ती गयी! उत्तरोत्तर सहनशक्तिका अतिक्रमण कर

गयी। जहाँतक वह सहन कर सकता था उस सीमासे बाहर निकल गयी। वह इतना हँसा कि वह वहीं गिर गया तथा तत्क्षण मर गया। इस दुःखद घटनासे रंगमें भंग हो गया। लोग इतने चकित और विस्मित हुए कि समझ नहीं पा रहे थे कि हँसीसे भी कोई व्यक्ति मर सकता है!

मनकी कोई भी प्रवृत्ति जब सीमासे अधिक बढ़ जाती है और हमारा मन उसपर नियन्त्रण नहीं कर पाता, तो वही मृत्युका कारण बन सकती है।

अब क्या होगा?

बुलन्दशहर, ३ जुलाई १९६५ का एक समाचार है—

'अब क्या होगा? अब क्या होगा?'—यह था एक दुर्बल-हृदय किसानका वाक्य, जिसने उसके हृदयकी गतिको बंद कर दिया और मृत्युके द्वारतक पहुँचा दिया।

पूरी घटना इस प्रकार है कि वहाँसे छः मील दूर ग्राम सिखैड़ाके एक किसान मलखानसिंहकी भयंकर वर्षा एवं बाढ़में सब फसल नष्ट हो गयी और उस दुर्बलहृदयको यह मानसिक आघात लगा कि 'हाय! अब क्या होगा? कैसे रक्षा होगी? कौन सहायता करेगा? किस प्रकार भोजन-वस्त्र मिलेंगे?' उसके मनमें ऐसा गुप्त भय बैठा कि उसके अंदरके पुर्जे इस आघातको न सम्हाल पाये। इस डरावनी चिन्ताने जैसे उसके भविष्यको ही अन्धकारमय बना दिया। वह हिम्मत और धैर्य खो बैठा। सर्वत्र उसे निराशा ही दिखायी दी। नतीजा यह हुआ कि वह अपने अन्तर्द्वन्द्वोंको काबूमें न

कर सका और एकाएक हृदयगतिके बंद होनेपर इस संसारसे चल बसा !

ऐसे व्यक्तियोंको दृष्टिमें रखकर ही हमारे यहाँ वेदमें कहा गया है—

अपवक्ता हृदयाविधश्चित् । (ऋग्वेद १ । २४ । ८)

अर्थात् समझदार व्यक्तिको चाहिये कि वह उन विचारोंको तुरंत त्याग दे जो आत्माको कष्ट दें ! मनुष्यको चाहिये कि संकट, खतरा, हानि, मृत्युका शोक सबल हृदयसे सहन करे । पूर्ण धैर्य रक्खे और संतुलन बनाये रक्खे ।

अत्यधिक क्रोध करनेका यह घातक नतीजा

मोदीनगर—१ जून १९६५ का एक समाचार है । यहाँसे ४ मील दूर ग्राम भोजपुरसे समीप स्थित एक भट्ठेपर ठेकेदार एवं ईंटें पाथनेवाले मजदूर पथेरोंमें मजदूरीके लेन-देनमें कुछ झगड़ा हो गया । एक ओर गरमीका मौसम, दूसरी ओर क्रोधके भयंकर आवेशके कारण पथेरा मूर्छित हो गया और तत्काल ही घटनास्थल-पर उसकी मृत्यु हो गयी । पुलिसने मामला दर्जकर शव परीक्षणके हेतु भेज दिया । अत्यधिक क्रोध करने और उसपर काबू न करने-का यह भयानक दुष्परिणाम निकला था !

दूसरा समाचार इस प्रकार है—

कानपुर, ५ जुलाई १९६५ । शिवली पुलिस-क्षेत्रके ग्राम निगोह-निवासी एक व्यक्तिको अपनी छः महीनेकी कन्याकी हत्या करनेके आरोपमें गिरफ्तार किया गया है । बताया जाता है कि नन्हीं बच्चीके लगातार रोनेके कारण क्रुद्ध होकर उक्त क्रोधी

आदमीने उसे उठाकर जोरसे पटक दिया, जिसके परिणामस्वरूप वह वहीं मर गयी।

इसपर घबराकर वह व्यक्ति स्वयं भी आत्महत्या करनेके लिये कुएँमें कूदने दौड़ा, किंतु लोगोंने उसे पकड़कर पुलिसके हवाले कर दिया।

विवादमें मृत्यु

कानपुरका एक समाचार है। 'कुम्भस्नानसे लाभ होता है या नहीं ?' इस विवादके पीछे उन्नाव जिलेमें बीघापुर स्टेशनपर भयंकर विवाद छिड़ गया। दोनों पक्षवाले क्रोधमें उग्र होते गये। क्रोधके आवेशमें उत्तेजना फैली और उत्तेजनामें मारपीट हो गयी। एक व्यक्ति मर गया तथा दूसरा घायल हो गया।

इस प्रकारके समाचारोंसे स्पष्ट है कि मनुष्यके मनोविकार बढ़कर नियन्त्रणसे बाहर हो जाते हैं और फिर वे महान् उत्पात और संकटका कारण बनते हैं।

गजब हो गया!

लिस्बन ३१ जुलाई १९६५। पुर्तगीज समाचारसमिति लूसी टानियाने भारतस्थित पुर्तगाली बस्ती गोआसे दो व्यक्तियोंके भयभीत होकर लारीसे कूद पड़ने तथा इनमेंसे एककी मृत्यु हो जानेका समाचार दिया है।

घटना इस प्रकार हुई बताते हैं—दो व्यक्तियोंकी उनकी प्रार्थनापर एक लारीमें बिठा लिया गया। जब इन लोगोंने अपने पास ही रक्खे एक ताबूतका ढक्कन धीरे-धीरे उठते देखा, तो ये

भयभीत होकर उसे देखते रहे; लेकिन जब ताबूतके अंदरसे उनींदे स्वरमें आवाज आयी, 'क्या वर्षा बंद हो गयी है ?' तो ये बहुत ज्यादा डर गये और डरके मारे लारीसे कूद पड़े। इनमें एक व्यक्ति मर गया और दूसरा सख्त घायल हो गया। बादमें माळूम हुआ कि इनका यह सब भय निराधार था। वह आवाज, जिसके कारण ये लोग बहुत डर गये थे, उस आदमीकी थी जो ताबूतके साथ पोंडा नामक नगरको जा रहा था। यह व्यक्ति भारी वर्षासे अपनेको बचानेके लिये ताबूतके अंदर घुस गया था और वहीं सो गया था।

बाड़मेरका एक समाचार है—एक व्यक्ति पहली बार मुर्देके दाह-संस्कारमें गया। मरे हुए व्यक्तिको पहली बार देखकर उसे इतना डर लगा कि वह कई रात सोते-सोते जगा; डरावने स्वप्न देखता रहा। उसे डरका वहम हो गया। अन्तमें यह डर ही उसकी आत्महत्याका कारण बना।

केवल भयके कारण !

जौन नामक एक व्यक्ति कई बार असफलताके कारण जीवनसे निराश हो गया। उसके जीवनमें एकके बाद दूसरा—कई बड़े मानसिक आघात लगे थे। वह चिन्ता और उद्विग्नतासे अस्त-व्यस्त होकर नाना शंकाओंसे भर गया। उसका मन उधेड़-बुनमें लगा था। उसने मन-ही-मन सोचा—

'अब जीवनमें शेष ही क्या रह गया है ? सारे दिन निराशा-ही-निराशा ! मैं बेबसीका जीवन जीकर क्या करूँगा ? मैं इस दुनियामें अब रहना नहीं चाहता। परमात्मा मुझे दुनियासे बुलाये,

या न बुलाये, मैं आज ही कैमिस्टके यहाँसे जहर लाकर इस कष्टमय चिन्ताका अन्त कर दूँगा । मुझे आत्महत्या ही सब सांसारिक संकटोंसे बचनेका उपाय सूझता है ।'

ऐसा सोचते-सोचते वह मुहर्रमी सूरत बनाये ग़मगीन मुद्रासे एक दवावालेके यहाँ विषकी शीशी खरीदने गया ।

मनुष्यका चेहरा उसकी आन्तरिक मनःस्थितिको स्पष्ट कर लेता है । गुप्त भावनाएँ छिपाये नहीं छिपतीं । चतुर व्यक्ति मुखमुद्रासे मनकी बात जान लेते हैं । फिर दूकानदार तो दिनभर ग्राहकोंके चेहरे पढ़ते रहते हैं । इस कैमिस्टको शक हो गया कि 'हो न हो, दालमें कुछ काला है । यह व्यक्ति विष खाकर जीवनका अन्त कर देना चाहता है ।'

'मुझे खटमल मारनेवाले विषकी शीशी खरीदनी है'—उसने कैमिस्टसे कहा ।

'क्या कीजियेगा ? आप तो कभी विषैली दवाई खरीदते नहीं हैं ?' कैमिस्ट बोला ।

'अजी क्या बताऊँ ! खटमल सारी रात परीशान करते हैं । तंग आ गया हूँ उनसे । इस विषसे उन्हें समाप्त कर दूँगा । चैनकी नींद सोऊँगा ।'

'देखिये बन्धु, यह शीशी विषसे भरी है । सम्हालकर प्रयोगमें लाइयेगा । इधर-उधर रखनेसे किसी बच्चेके हाथ पड़ जाय, तो मृत्युतक हो सकती है ।'

ऐसा कहकर कैमिस्ट अंदर गया और जहरवाली शीशीमें रंगीन हानिरहित दवाई भरकर उसने जौनको दे दी।

कैमिस्टका अनुमान अक्षरशः सत्य निकला। जौन कायर था। उसकी आत्महत्याकी योजना पक्की थी। वह जिंदगीसे पलायन कर रहा था।

उसने अपनी पत्नीके नाम अन्तिम पत्र लिखा और उस विषैली दवाको गलेके नीचे उतार लिया। मौतके स्वप्न देखने लगा—अब मरा⋯अब मरा।

फिर स्वयं कह भी दिया कि मैंने जहर पी लिया है और कुछ देर बाद मैं मर रहा हूँ।

फिर क्या था, चारों ओर शोर मच गया।

'जौनने विष खा लिया है! जौन आत्महत्या कर रहा है!! दौड़ो इसे किसी तरह बचाओ। डाक्टर बुलाओ। इसे वमन कराओ! जौनको बचाओ!' रोगीकी हालत बिगड़ती चली जा रही थी।

मानसिक असंतुलन और उद्विग्नताके कारण उसके हाथ-पाँव शिथिल हो रहे थे। उसका हृदय बुरी तरह धड़क रहा था। अब मरा! अब मरा!!

सब लोग उसकी निढाल होती, क्षण-क्षण बिगड़ती दशापर दुःख प्रकट कर रहे थे।

जौनको फौरन एक कुशल चिकित्सकके पास अस्पताल पहुँचाया गया और उसकी चिकित्सा तुरंत प्रारम्भ हो गयी!

डाक्टरने बड़ी सावधानीसे उसकी नब्ज देखी, हृदयकी परीक्षा की; मल-मूत्र, वमन इत्यादि सबका रासायनिक विश्लेषण किया। सब लोग उसकी मृत्युके समाचारकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

पर आश्चर्य ! वह न मरा। यों ही मृत्युशय्यापर पड़ा-पड़ा आखिरी साँसें गिनता रहा। उसकी जान ही नहीं निकलती थी।

डाक्टरने उस शीशीमें लगे हुए रंगीन तरल पदार्थकी परीक्षा की और अन्तमें रहस्यका उद्घाटन करते हुए बतलाया—

'जो दवाई जौनने पी थी, वह कोई भी विष नहीं था। कोई हानिरहित दवाई थी। उसके शरीरमें कोई विकार नहीं है।'

कैमिस्टको बुलाया गया, तो उसने भी इसी बातकी पुष्टि की। उसने अपना दृष्टिकोण स्पष्ट करते हुए कहा कि 'मैंने तो जौनकी जान बचानेके लिये हानिरहित दवाई दी थी, वह विष नहीं था।'

बादमें रोगीको यह बात खूब समझायी गयी, पर वह मानता ही न था। वह अब भी मानसिक असंतुलनका शिकार था। मृत्युका भय उसे चिन्तित किये हुए था।

वह बार-बार यही कहता था, 'मैंने विष पी लिया है। अब मैं नहीं बचूँगा।'

भय तथा मृत्युकी चिन्ता उसके गुप्त मनमें जड़ पकड़ गयी थी। वह उसे खा रही थी। इस विषैली भावनाने उसके मस्तिष्कको शिथिल कर दिया था। यही भय उसकी नस-नसमें फैल गया था। मृत्युका भय उसके गुप्त मनमेंसे निकलता ही न था। अपनी कुकल्पना और उद्विग्नतासे वह मृत्युका इन्तजार कर रहा था।

फल यह हुआ कि वह महीनों शक-ही-शकमें अस्पतालमें पड़ा रहा। रोगीको अच्छा होनेमें बहुत समय लगा।

बिना जहर लिये, केवल मिथ्या भय और मानसिक असंतुलनने यह सब उपद्रव किया था।

डाक्टरोंका कहना था कि सिर्फ जहर पीनेके भयने उसे जीते-जी मौतके समीप पहुँचा दिया था। इस प्रकारकी चिन्ताओं और संदेहोंसे न जाने कितने व्यक्ति मानसिक दृष्टिसे बीमार हैं।

इस उदाहरणसे यह स्पष्ट होता है कि हमारे मस्तिष्कमें जमे हुए भय, चिन्ता, उद्वेग, अंधविश्वास, मानसिक दबाव हमारे दैनिक स्वास्थ्यपर बड़ा असर डालते हैं।

यही बात डाक्टर विलियम एडलरने इन शब्दोंमें प्रकट की है—

'मानसिक भाव-प्रक्रियाएँ मनुष्यकी शारीरिक क्रियाओंको बड़ा प्रभावित करती हैं। अगर मन बीमार है, तो शरीर निश्चय ही बीमार होकर रहेगा। यदि रोगीके मनमें भय, आशंका और मृत्युकी चिन्ता हो, तो उसे स्वस्थ करनेमें डाक्टरको बड़ी कठिनाईका सामना करना पड़ता है।

सच मानिये, एक नहीं असंख्य व्यक्ति शरीरसे पूर्ण स्वस्थ दीखनेपर भी मनमें गुप्त संदेह, वहम, चिन्ताएँ, तनाव, आकस्मिक मनोवेग लिये मानसिक बीमारी भोग रहे हैं।

मानसिक कमजोरीसे मृत्यु

लन्दनका एक समाचार है—एबरडीन विश्वविद्यालयके एक कालेजका चपरासी केवल लड़कोंके गालीगलौज और क्रोधमें चीखनेकी

आवाजोंसे ही अपने प्राण खो बैठा था । बात यह थी कि वह चपरासी छात्रोंके दुर्व्यवहारकी सच्ची-झूठी शिकायतें अधिकारियोंको किया करता था । चुगली खानेकी इस मानसिक कमजोरीकी वजहसे वह लड़कोंकी आँखोंमें खटकने लगा था ।

दुष्प्रवृत्तियोंका शमन करें, ठंडे और शान्त रहें

मनुष्यको चाहिये कि इस प्रकारके नाना उद्वेगों और उत्तेजनाओंसे वह सदा खूब सावधान रहे । जब कभी इन मानसिक शत्रुओंका आक्रमण हो, तब मनको ठंडा करे, शान्त—संतुलित रहे और धैर्यपूर्वक परिस्थितिपर काबू करे ।

हमारे मनके भीतर राक्षस (कुप्रवृत्तियाँ, वासनाएँ और विकार) तथा देवता (सत्-प्रवृत्तियाँ, शील, सद्गुण) सोये पड़े हैं । यदि राक्षस जग उठें, तो आत्मसंयमद्वारा उनपर काबू करना चाहिये ।

पिपेश नाकं स्तृभिर्दमूनाः ।

(ऋग्वेद १ । ६८ । १०)

अर्थात् याद रखिये, संयमी मनुष्य स्वर्गको भी जीत लेते हैं । सुख-शान्तिमय रहनेका उपाय अपनी कुप्रवृत्तियोंको संयममें रखना है ।

अपवक्ता हृदयाविधश्चित् ।

(ऋग्वेद १ । २४ । ८)

अर्थात् उन कुवासनाओं और मानसिक पापोंको त्याग दीजिये, जो आत्माको कष्ट दें । काम, क्रोध, भय, चिन्ता इत्यादिके कुविचार सदैव त्यागने योग्य हैं ।

आपके गुप्त मनमें जो व्यर्थकी चिन्ताएँ इकट्ठी हो गयी हैं, वे मनमें तनाव और दुःखकी स्थिति उत्पन्न करती हैं । ये कुविचार

मानसिक असंतुलन पैदा करते हैं। मानसिक बीमारियाँ फूटकर निकलती हैं। मनमें व्यर्थके कटु अनुभवोंको स्थान न दीजिये। मनमें जमी हुई वासना ही सब दुष्कर्म कराती है।

मानसिक संतुलन बनाये रहें

याद रखिये, मानसिक असंतुलन आपके ऊपर भयानक संकट ला सकता है। चिन्ता, भय, क्रोध और उद्विग्नता मनुष्यके सर्वोपरि शत्रु हैं। सर्वत्र मनको ठंडा रखिये और संकटके समय धैर्य तथा सहनशीलताका परिचय दीजिये।

मनको शान्त करनेमें धर्म आपकी सहायता कर सकता है। जीवनमें आस्तिक दृष्टिकोण रखनेसे सहायकके रूपमें हमें परमात्माकी शक्ति मिल जाती है जो सदा मानसिक संतुलन बनाये रखती है।

मर्त्या हवाअग्ने देवा आसुः।

(शत० ब्रा० ११ । १ । २ । १२)

मनुष्य शुभकार्य करके शुभ चिन्तनद्वारा ही देव बनते हैं। शुभ चिन्तन, शान्त-संतुलित मन और अच्छे कर्मोंद्वारा शरीरसे भूसुर-पद प्राप्त कीजिये।

आर्या व्रता विसृजन्तो अधि क्षमि।

(ऋग्वेद १० । ६५ । ११)

धर्म—कर्तव्योंका पालन करनेवाले ही देव हैं। वे प्रत्यक्ष देवता हैं जो संकटमें, विपत्तिमें, बड़ी-से-बड़ी प्रतिकूलता और मुसीबतमें शान्त-संतुलित बने रहते हैं।

किसी विषम स्थितिसे परेशान न हों !

एक मनुष्य मरता है, तो मनमें डर लगता है, शरीर काँप उठता है, मौतका दुःखद समाचार नहीं सुना जाता। श्मशानमें एक मृतकका दाह-संस्कार करके लौटते हैं, तो कई दिनोंतक चित्त व्याकुल रहता है।

एक-दो, दस-बीस, हजार दो हजार व्यक्ति नहीं, बीस हजार व्यक्ति यदि प्रतिवर्ष आत्महत्याएँ करने लगें, तो स्थिति संगीन होनी चाहिये।

ऐसी विषम स्थिति दुनियामें है।

अमेरिकाके प्रसिद्ध समाचारपत्र 'न्यूयार्क टाइम्स'ने अभी गत दिनोंकी एक 'सर्वे रिपोर्ट' प्रकाशित की है, जिसमें बताया गया है कि प्रतिवर्ष बीस हजार अमेरिकन आत्महत्याएँ करते हैं। इस सर्वे रिपोर्टसे अमेरिकामें चिन्ताकी लहर दौड़ गयी है।

रिपोर्टमें बताया गया है कि मृत्युके बहुत-से ऐसे मामले हैं, जिन्हें आत्महत्या नहीं माना जा सकता, जब कि वे आत्महत्याके सिवा कुछ नहीं होते।

रिपोर्टके अनुसार अमेरिकामें आत्महत्या मृत्युके प्रथम दस कारणोंमेंसे एक है और युवकोंके लिये प्रथम पाँच कारणोंमें एक।

कारणोंपर एक दृष्टि

किस महीनेमें सबसे अधिक लोग मरते हैं ?

अमेरिकन सर्वे विभागने पता चलाया है कि सर्वाधिक आत्महत्याएँ दिसम्बरमें और वह भी क्रिसमसके दिनोंमें होती हैं।

यह बड़े आश्चर्यकी बात लगती है ? क्रिसमस तो अंग्रेज लोगोंका खुशीका त्यौहार है। भला खुशीके महीनेमें ये मौतें क्यों ?

कारण सुन लीजिये—

उस महीनेमें अमेरिकन लोग वर्षभरके अपने कार्योंका सिंहावलोकन करते हैं। वर्षभरमें क्या-क्या किया ? कितनी सफलता और कितनी असफलता मिली ? कितनी सुविधाएँ या आर्थिक कठिनाइयाँ रहीं ? व्यापारमें कितना हानि-लाभ रहा ? यह सब लेखा-जोखा माल्रूम करते हैं। वे लोग भौतिकवादी हैं। 'खाओ, पिओ, मौज उड़ाओ, पता नहीं कब मर जायँ'—यह उद्देश्य रखकर वे जीवन जीते हैं। अधिकांश अपने भौतिकवादी उद्देश्योंमें निष्फल और निराश हो जाते हैं। कितनोंके दिखावटी मित्र, यहाँतक कि पत्नियाँ उन्हें अकेला छोड़ जाती हैं। वे ऐसे व्यक्तियोंके पास मँडराने लगते हैं, जिनके पास भौतिक जीवनकी सुख-सुविधाएँ हैं। अधिकांश अमेरिकन इसी निराशा और एकाकीपनसे त्रस्त होकर आत्महत्याएँ किया करते हैं।

कुछ और कारण इस प्रकार हैं—

१—अपने अस्तित्वमें अविश्वास

आत्महत्याके मानसिक रोगी जीवनको क्षणिक, उद्देश्यशून्य, व्यर्थ मानते हैं। वे समझते हैं कि सांसारिक परिस्थितियाँ उन्हें आसानीसे पस्त कर मिट्टीमें मिला सकती हैं। स्वयं उनका कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। मनुष्य भाग्यके हाथोंमें खिलौना है। यह अविश्वास उनमें कायरता पैदा करता है।

२—उत्साह-भङ्ग

इन व्यक्तियोंका तनिक-सी विरोधी स्थितिसे जीवनका उत्साह टूट जाता है। पहले तो वे प्रयत्न ही ढीला-ढाला करते हैं, फिर धैर्य धारण नहीं करते। व्यर्थके कारणोंको अपनी असफलतासे जोड़ लेते हैं, जब कि कोशिशकी कमी ही उनकी असफलताका मुख्य कारण होती है।

३—घरेलू परेशानियाँ

स्त्रियोंमें परस्पर झगड़े, सास-बहूके झगड़े, पिता-पुत्रमें मतभेद, नशाखोरी, कामलोलुपता, मनोविकारोंसे सहज ही विचलित हो जाना, स्नायविक तथा मानसिक विकार, बच्चोंके ठीक तरह विवाह न कर पाना, पुत्रकी नौकरी न लगना, अधिक बाल-बच्चे और समाजकी रूढ़ियाँ आत्महत्याओंके कारण हैं।

४—आर्थिक कठिनाइयाँ

आजके बढ़े हुए खर्चे, बाहरी टीपटाप, फैशन-परस्ती, झूठा दिखावा करनेके लिये इतनी आयकी जरूरत होती है, जो पूरी नहीं हो पाती। झूठी आवश्यकताओंकी पूर्ति न होनेकी वजहसे परेशानियाँ बढ़ती हैं और जिंदगी भार-स्वरूप लगती है।

५—युद्धोन्माद

आज पाश्चात्त्य देशोंके निवासियोंको युद्धका पागलपन सवार है। वे शान्तिके बजाय मारपीट और संघर्षसे समस्याएँ सुलझानेका प्रयत्न करते हैं। नतीजा यह है कि वे तनावकी स्थितिमें रहते हैं।

६—जातीय भेद-भाव

गोरी और काली जातियोंमें ऊँच-नीचका भेद-भाव, बड़े-

छोटे, अमीर-गरीबके भेद मनको ईर्ष्या-द्वेषसे परिपूर्ण रखते हैं।

७—मानसिक तनाव

मनमें तनाव रखना, तुच्छ विषयोंको लेकर व्यर्थ ही सोचते रहनां, मस्तिष्कका संघर्ष और अन्तर्द्वन्द्वसे भरे रहना जीवनको अत्यन्त अशान्त और अस्थिर बना देता है।

८—शराबखोरी और नशीली दवाओंकी लत

अपनी परेशानियों और चिन्ताओंको भुलानेके लिये लोग नशीली दवाओंका बहुत प्रयोग करने लगे हैं। इससे दिमागमें गरमी बैठ जाती है और मनुष्य उत्तेजनामें कुछ-का-कुछ कर बैठते हैं।

९—सबसे प्रधान कारण है—

ईश्वर तथा परलोकपर अविश्वास, जीवनमें केवल भौतिक सुख-सुविधाकी चाह और अपनी प्रत्येक परिस्थितिमें नित्य असंतोष।

आप शक्ति-केन्द्र हैं

उपर्युक्त कोई भी कारण आपके मनमें उत्पन्न हो, तो तुरंत सावधान हो जाना चाहिये। कौन जाने कब बढ़कर यह विषैली स्थिति आत्महत्याका रूप धारण कर ले।

प्रातः शान्तिसे बैठकर निम्न विचारपर बार-बार सोचिये और उसे गुप्त मनमें बैठाइये—

'अहमिन्द्रो न परा जिग्ये।' (ऋग्वेद १०। ४८। ५)

अर्थात् मैं शक्तिकेन्द्र हूँ। जीवनमें कहीं भी मेरी पराजय नहीं हो सकती।

'मैं थोड़ी-सी परेशानियोंसे कभी घबराने या पथसे विचलित

होनेवाला नहीं हूँ । मैं विकट प्रसंगोंसे कभी भी परास्त नहीं होता हूँ । विपत्तियाँ आकर उसी प्रकार चली जाती हैं, जैसे तूफ़ान । मैं तूफ़ानोंमें अविचलित रहनेवाला अडिग, स्थिर चट्टान हूँ । विकट प्रसंग या विपत्तिसे मेरा कुछ भी विगड़नेवाला नहीं है । ये मेरी परीक्षा लेने आती हैं, पर मैं इनसे कभी परास्त नहीं होता हूँ ।

'मेरा आत्मविश्वास महान् है । वह कभी भी साधारण अभावोंसे तथा छोटी-मोटी विपत्तियोंसे अस्त-व्यस्त होनेवाला नहीं है । मैं मङ्गलमय ईश्वरकी शक्तिमें अखण्ड विश्वास रखता हूँ । ईश्वरकी शक्ति सदा मेरे साथ है । वह कवचकी तरह सदा मेरी सहायता करती है । मैं अपनी परेशानियोंसे घबराता नहीं, एक-एककर उन्हें हल करनेकी युक्ति सोचता हूँ । समस्याओंका विवेकपूर्ण हल निकालता हूँ ।

'मेरा जीवन सुरक्षित है । मुझमें ईश्वरकी महान् शक्ति प्रकट हो रही है । मैं वीरात्माकी तरह समस्त विपत्तियोंका सामना करूँगा ।'

प्रतिदिन इसी संकल्पकी बार-बार सिंह-गर्जना किया कीजिये । प्रातः तथा सायंकाल सोते समय इन अमृतमय विचारोंसे आपका आत्मविश्वास दृढ़ होता जायगा । आत्मविश्वासको सदा बढ़ाते रहिये । आपका आत्मविश्वास आपको सब प्रकारकी विपत्ति, भय तथा शोकसे बचानेवाला है । बुद्धिमान्को चाहिये कि वह अपनी योग्यताओं, विशेष गुणों, ऐश्वर्य और साहसपर ही सदा चिन्तन करे ।

आकाशमें जैसे काले बादल अधिक देरतक नहीं टिक सकते, उसी प्रकार जीवनकी परेशानियाँ भी क्षणिक हैं। जिस व्यक्तिको मङ्गलमय ईश्वरमें विश्वास है, उसका जीवन नाना प्रकारके क्लेश, अविद्या, राग-द्वेष तथा चिन्ताओंसे सुरक्षित रहेगा।

कष्ट किसे नहीं है? रोगी कौन नहीं है? परेशानीने किसे तंग नहीं कर रक्खा है? मृत्यु, रोग, शोक किसके यहाँ नहीं हुआ? यदि आप देखें, तो ऐसी परेशानियाँ हर किसीको हैं।

किंतु साहसी कभी इन मुसीबतोंकी परवा नहीं करते। वे मनमें धैर्य और उन्नतिके लिये सत्-प्रयत्न सदैव चालू रखते हैं।

उज्ज्वल भविष्यकी ओर दृष्टि लगाये रखना और उसे लानेके लिये लगातार कोशिशें करना विकट प्रसंगोंको दूर करनेका उपाय है।

जब कोई डरपोकपन, कायरता, पराजयका अवाञ्छनीय विचार आपके मनमें आये, तो उसके विपरीत साहस, हिम्मत, वीरता और संघर्षमें विजयी होनेका विचार लाकर प्रतिकूल मन:स्थितिको हटाना चाहिये।

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः॥
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥
(ऋग्वेद १।८९।८,६)

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

हे देवगण! हम कानोंसे कल्याणकारी वचन सुनें।

हम नेत्रोंसे सदा कल्याणका ही दर्शन करें।

हमारा शरीर और उसके अवयव सुदृढ़ और पुष्ट हों, जिससे हम भगवान्‌का कार्य सम्पन्न करते रहें।

देवगण ! इन्द्र, जिनका सुयश सर्वत्र फैला है, हमारा कल्याण करें। अरिष्टनिवारक तार्क्ष्य और बृहस्पति हमारा कल्याण करें। हम शान्त रहें। हमारे चारों ओर शान्ति रहे। हम शान्तिपूर्वक अपनी समस्याओंको हल करनेमें स्वस्थचित्तसे लगें।

जीवनका अन्ततक आनन्द लें

यह जीवन बहुमूल्य है। संघर्ष और निरन्तर उन्नतिके लिये बना है। डरपोक और कायरताके विचार आपको किसी प्रकार शोभा नहीं देते हैं। कहा है—

उत्क्रामातः पुरुष माव पत्थः । (अथर्ववेद ८ । १ । ४)

अर्थात् सदा ऊँचे उठनेकी बात कीजिये। नीचे गिरनेकी बात न कभी सोचिये, न गिरिये।

मित्रो ! जीवनरूपी इस संघर्षमें निराशा और पराजयकी नहीं, सदा-सर्वदा आशा और सफलताकी भावना किया कीजिये। अबकी बार हम अवश्य विजयी होने जा रहे हैं। भविष्यमें हमारी शत-प्रतिशत सफलता निश्चित है—यही अमृत भाव मनमें रखिये।

उद्यानं ते पुरुष नावयानम् । (अथर्ववेद ८ । १ । ६)

अर्थात् बन्धुओ ! सदैव उन्नति कीजिये। अवनति भूलकर भी मत होने दीजिये। गिरानेवाले नहीं, जिंदगीको उत्तरोत्तर उठानेवाले पुष्ट विचारों और सत्कार्योंको अपनाइये।

मात्र तिष्ठः पराङ्मनाः । (अथर्ववेद ८ । १ । ९)

अर्थात् जीवनके किसी भी क्षेत्रमें शिथिलता और अनुत्साह ठीक नहीं । याद रखिये, अकर्मण्यता और निराशा एक प्रकारकी नास्तिकता है ।

वीरयध्वं प्र तरता । (अथर्ववेद १२ । २ । २६)

अर्थात् इस संसार-सागरमें उद्योगी ही पार होते हैं । पुरुषार्थविहीन व्यक्तियोंकी नाव बीचमें ही डूबती है ।

जीवनके लिये सोचिये । जबतक जीवित हैं, स्वस्थ और पूर्ण आनन्दकी ही कल्पनाएँ मनमें रखिये—

अमृतं विवासत । (ऋग्वेद)

उत्साही और आशावादीका ही साथ कीजिये । उन कायरोंको दूर रखिये जो आपको डरपोक बनाते हैं और भविष्यको निराशाजनक बनाते हैं ।

धर्ममें पूर्ण आस्था रखिये । आपके आजके इस जीवनके पुण्य दूसरा जीवन भी सुधारनेवाले हैं । ईश्वर सदा आपके साथ हैं ।

शुचिं पावकं ध्रुवम् । (ऋग्वेद)

अर्थात् उनकी प्रशंसा कीजिये जो धर्मपर दृढ़ हैं । आप भी उन-जैसा साहस प्राप्त करें, दीर्घजीवी और स्वस्थ रहें, आत्मगौरव प्राप्त करें ।

व्यर्थ घबराया न कीजिये

आपको रेलगाड़ीसे जाना है। गाड़ीमें अभी एक घंटा देर है, पर आपके मनमें यह धुकधुकी कैसी ? चिन्ता और घबराहट आपको अस्तव्यस्त किये हुए है। आपको एक घंटासे पहलेसे ही गाड़ी छूट जानेका गुप्त भय है। आप तबतक इस चिन्ता और भयसे मुक्ति नहीं पाते, जबतक रेलके डिब्बेमें पैर नहीं रख लेते, आपके दिमागमें हरप्रकारकी चिन्ताएँ घर बनाये रहती हैं, जैसे टिकट खरीदनेकी चिन्ता, जेब कट जाने या माल चुराये जानेका भय, रेलमें स्थान न पानेका डर, गाड़ीके समयसे पहले आ जानेका भय, अपनी ही घड़ीके पीछे हो जानेका भय, कुली न मिलनेकी शंका, अगले कनेक्शनपर गाड़ी छूट जानेकी चिन्ता आदि।

इसी प्रकारकी न जाने कितनी चिन्ताएँ आपको अस्तव्यस्त कर देती हैं। आप जल्दी-जल्दी चलते हैं, दो-चार वस्तुएँ मार्गमें ही भूल जाते हैं, रुपये गिरा देते हैं या किसीको कुछ आवश्यक

सूचना देना भूल जाते हैं। जब स्टेशन पहुँचते हैं तो मालूम होता है कि अभी गाड़ी आनेमें देर है। फिर घबराहट शुरू! क्या हमें अच्छी सीट मिलेगी? क्या यह सारा सामान डिब्बेमें चढ़ जायगा? क्या सामानका बोझ टिकटोंपर ले जा सकनेके भारसे अधिक तो नहीं है? आपका छोटा बच्चा जिसका टिकट आपने उसे छोटा समझकर नहीं खरीदा है, चेकरद्वारा पकड़ तो नहीं लिया जायगा।

गाड़ी आती है और आप आश्चर्यसे देखते हैं कि आपकी सब चिन्ताएँ फिजूल थीं। सारी घबराहट व्यर्थ! आप मिथ्या काल्पनिक भयमें डूबे हुए व्यर्थ ही मनको अस्तव्यस्त कर रहे थे।

आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि कुछ ऐसे भी व्यक्ति होते हैं, जिन्हें गाड़ी पकड़नेकी कभी चिन्ता नहीं होती। जिस गाड़ीमें जायँगे, उसके बारेमें सूचनाएँ प्राप्त कर लेते हैं, परंतु जब उस गाड़ीको पकड़नेका समय समीप आता है, तो ऐसे शान्त और चिन्तामुक्त बैठे रहते हैं, जैसे उन्हें स्टेशनपर जाना ही नहीं है। ऐसा लगता है कि यदि वे नींदमें भी हों, तब भी गाड़ी पकड़ लेंगे। ऐसे व्यक्तियोंका मानसिक संतुलन इतना मजबूत होता है कि उनकी दिनचर्या तथा विविध कामोंमें किसी प्रकारकी गड़बड़ी नहीं होती, यह एक दृष्टान्तमात्र है।

घबराहटके अनेक स्थान हैं। परीक्षार्थियोंके लिये परीक्षा-भवनमें अनेक विद्यार्थी आधा पर्चा तो गुप्त भयके कारण भूल जाते हैं। जैसे ही इम्तहानके भवनमें दाखिल हुए कि मनमें धुकधुक शुरू हो जाती है। जो याद किया है, उसका आधा हिस्सा भूल

जाते हैं। घबराहटमें जो जानते हैं उसे भी गल्त लिखते हैं। डाक्टरके लिये घबराहट खतरनाक है। यदि आपरेशन करते समय रोगीकी गिरती हुई अवस्था देखकर कहीं वह घबरा उठे, तो रोगीकी मृत्यु ही निश्चित है। रेलगाड़ी, मोटरगाड़ी या मोटर साइकिल, रिक्शा आदिके चालक यदि कहीं घबरा उठें, तो न जाने कितनोंके टक्करें लग जाया करें। वक्ता जब बोलने या अभिनेता जब अभिनय करनेको खड़ा होता है, घबरा उठे तो बुरी तरह फेल होता है।

जीवनके हर क्षेत्रमें घबराहट हानिकारक और घातक है। घबराना भी एक प्रकारकी मानसिक कमजोरी है। अतः मनुष्यको इसके स्वरूपको अच्छी तरह समझ लेना चाहिये और बचनेका प्रयत्न करना चाहिये।

जगत् तथा समाजमें भयानक परिस्थितियाँ आती हैं। उनपर नहीं, बल्कि घबराहटकी जड़ मनुष्यके गुप्त मनमें मौजूद रहती है। अस्थिरता, असंतोष, रोग, चञ्चलता इत्यादि बाह्य जगत्पर निर्भर न होकर अस्वास्थ्यकर वातावरणपर निर्भर है!

एक व्यक्ति एक भयानक स्थिति देखकर घबरा उठता है, जब कि दूसरा अपने मनके संतुलन और सामर्थ्यके कारण वीरतासे उसका सामना करता है। पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकोंके सिद्धान्तोंके अनुसार मनुष्यकी जितनी बाहरी क्रियाएँ हैं, उनकी जड़ें मनुष्यके गुप्त मनमें रहती हैं। यह गुप्त मन सक्रिय, सतेज, सशक्त और बड़ी प्रबल सामर्थ्यवाला है। अंदरसे यह ब्रह्म मन तथा शरीरको चलाया करता है। यदि गुप्त मनमें (प्रायः बचपनमें) कोई भय

बैठ जाय तो उसके फलस्वरूप बुरी सूचनाएँ और बुरे विचार, डर उत्पन्न होते रहते हैं। भयका गुप्त घातक प्रभाव शरीरपर पड़ता है। हममें हानिकारक परिवर्तन उत्पन्न हो जाते हैं। हम खतरनाक फलोंकी कुकल्पनाएँ किया करते हैं। दूसरे जो व्यक्ति घबराते हैं, उन्हें देखकर छूतके रोगकी तरह हमें भी घबराहट उत्पन्न होती है। घबराहट गुप्त मनमें बनी हुई जटिल भयकी मानसिक ग्रन्थिकी दूषित प्रतिक्रिया है। इस आदतकी जड़ मनुष्यके प्रारम्भिक जीवन, घर-की परिस्थितियाँ और भावात्मक अनुभवोंमें पायी जाती है।

विचार करके देखिये कि घबराहटकी डरपोक आदत आपको कैसे पड़ी? बाल्यावस्थामें आपको कौन-कौनसे भय दिखाये गये? किस-किसने तंग किया, डराया, धमकाया या परेशान किया? शिक्षकोंने कितनी बार डाँटा-डपटा और बुरा-भला कहा। सौतेली माँने कैसा कुव्यवहार किया। किन-किन कार्योंमें आपको असफलता मिली।

यदि आप किसी मनोविश्लेषण करनेवाले विद्वान्से अपना मनोविश्लेषण करावें, तो वह आपको आपके मनमें बनी हुई जटिल कटु और निराशावादी भावना-ग्रन्थिका कारण बतलायेगा। जिस बच्चेको आप बार-बार बुरा कहते हैं, ताड़ते-धमकाते या निरुत्साहित करते हैं, उसकी समस्त उत्पादक शक्तियाँ पंगु हो जाती हैं। वह बचपनसे ही सुस्त और निराशावादी बन जाता है। उसको लज्जा और हीनत्वकी भावना बुरी तरह आ घेरती है। वह तनिक-सी बातमें लजा जाता है तथा दूसरोंके समक्ष अपनी

सच्ची बात भी कहते हिचकता है। बुरे व्यवहारसे उसका आत्म-विश्वास नष्ट हो जाता है। यहींसे उसकी घबरानेकी आदत निकलती है। विषम और प्रतिकूल परिस्थितियोंसे युद्ध करनेकी शक्ति उसमें नहीं रह जाती।

अतः माता, पिता, अभिभावक और अध्यापकका कर्त्तव्य है कि अनुचित डाँट-फटकार बच्चोंपर कभी न करें। उनकी गलतियों और भूलोंको प्यारसे ही सुझावें। ऐसी ताडना न दें कि बच्चेकी महत्वाकांक्षा ही नष्ट हो जाय और वह सदाके लिये निकम्मा ही हो जाय। विषम परिस्थितियोंसे लड़नेकी आदत उसमें न रहे।

इसके विपरीत बच्चेमें नेतृत्वके गुणोंको प्रोत्साहित करना चाहिये। उसके आत्म-विश्वासको पुष्ट करनेवाले पुराने वृत्तान्त, उसकी छोटी-छोटी विजयके रहस्य, उसकी शानदार सफलताओं, विषम परिस्थितियोंमें भी हिम्मतके कार्योंकी भरपूर सराहना तथा दिल खोलकर मुक्तकण्ठसे प्रशंसा करनी चाहिये।

प्रसिद्ध मनोविज्ञानके शास्त्री श्रीलालजीरामजी शुक्लने तो लिखा है कि 'छोटे बच्चेको किसी कामके लिये लज्जित कर देना उसमें घबरानेकी मनोवृत्ति पैदा कर देना है। ऐसा बालक जन्मभर दूसरोंके द्वारा लज्जित किये जानेसे डरता है। अतएव उसमें नया काम करनेकी अथवा नये लोगोंसे मिलनेकी हिम्मत ही नहीं होती। हम देखते हैं कि कभी-कभी बड़े लोग बालककी किसी बात-पर हँस देते हैं। कक्षामें यदि कोई प्रश्न पूछे तो बालककी उपेक्षा कर देते हैं। इस प्रकार बालक लजा जाता है। फिर उसमें दूसरों-

के सामने मुँह खोलनेकी हिम्मत नहीं रहती। कभी-कभी बालक अपनी किसी भूलके लिये सब लोगोंके सामने लज्जित हो जाता है। इसके अनुभव भी बड़े अप्रिय होते हैं। वह कटु अनुभवको भूलनेकी चेष्टा करता है और इन्हें भूल भी जाता है। परंतु ऐसे अनुभव उसे सदाके लिये निर्बल कर देते हैं। परीक्षाके समय वह ऐसा घबरा जाता है कि प्रश्नोंका उत्तर ही नहीं लिख पाता। यह उसके मनकी घबराहटका ही दुष्परिणाम है। इससे स्पष्ट है कि हमें बच्चेको अधिक डाँट-फटकार और विपरीत संकेत कभी नहीं देने चाहिये। उसकी भूलोंकी लंबी-चौड़ी आलोचना नहीं करनी चाहिये। कटु अनुभवोंको बार-बार उसके सामने पेश नहीं करना चाहिये।

अपने मनका विश्लेषण कर अपनी घबराहटका वास्तविक कारण जानिये। बार-बार पुरानी स्मृतियोंका स्मरण कीजिये। अपनी घबराहटका कारण माल्रम होनेपर विवेकबुद्धिसे उसे दूर किया जा सकता है।

आप गम्भीर दृष्टिसे इन कारणोंको देखेंगे तो पायेंगे कि वास्तवमें ये आपकी कल्पित भावनाएँ ही थीं, इनमें सचाई बहुत कम है। जिन कारणोंको व्यर्थ सोच-सोचकर आप घबरा जाते हैं, वे वास्तवमें होनेवाले नहीं हैं। आप इतने बड़े हो गये, पर वे आपके जीवनमें कभी नहीं घटे हैं।

वर्तमान विवेकपूर्ण विचार, गुप्त मनको दिये जानेवाले स्वस्थ संकेत या सजेशन और आत्मविश्वासपूर्ण आचरण—ये तीन ऐसे अमोघ उपाय हैं, जो हमारी घबराहटकी आदतको दूर कर सकते हैं।

इन तीनोंसे मनुष्यका आत्मविश्वास बढ़ाया जा सकता है। ज्यों-ज्यों आत्मविश्वास बढ़ता है, घबराहटकी आदत छूटती है।

आप इसलिये घबरा जाते हैं, क्योंकि कार्यकी तैयारी पूरे सामर्थ्य और पूरी ताकतसे नहीं करते हैं। संसार बड़ी तैयारी और गहराई चाहता है। अधूरे मनसे किया हुआ काम असफल होकर आपके आत्मविश्वासको तोड़ डालता है। घबराहट होने लगती है। जो भी कार्य हाथमें लें, उसे शुरू करनेसे पूर्व पूरी तरह जो कुछ भी हो सकती हो, मानसिक और बौद्धिक तैयारी कर डालिये। पूरी तैयारी घबराहटको कभी उत्पन्न न होने देगी। जो व्यक्ति हर अच्छी-बुरी परिस्थितिके लिये तैयार है, उसे क्यों घबराहट होगी ? चोर लोग घबराते हैं, बचते हैं, डरते हैं, लज्जित होते हैं। आप जब अच्छी तैयारी कर लेते हैं, तो तमाम कमजोरी समाप्त हो जाती है। जो भी कार्य आप हाथमें लें, उसकी पूरी-पूरी तैयारी कर लिया करें। आपकी घबराहटकी विरोधी भावना 'शान्त भावना' है। जो शान्त अविचलित मनःस्थितिको धारण कर लेता है, वह घबराहटका अन्त कर डालता है। हमें शान्त और स्थिर मनःस्थितिमें विकास-की मानसिक आदत डालनी चाहिये। हर कार्य करते समय मनमें शान्ति धारण कर रखनी चाहिये। शान्तिके ही गुप्त आत्मनिर्देश गुप्त मनको देने चाहिये। आप सदा यही सोचा कीजिये—

'मैं सब काम शान्तिसे करता हूँ। व्यर्थके कल्पित भयोंमें आकर जल्दबाजी नहीं कर बैठता हूँ। मैं शान्त हूँ, परम शान्त और स्थिर हूँ। मेरा मानसिक संतुलन सदा ठीक रहता है। मैं जानता हूँ कि चञ्चलतासे

मुक्त रहकर ही मैं उन्नति कर सकता हूँ । मुझे कभी कोई घबराहट नहीं होती; क्योंकि मैं भगवान्‌की शक्तिमें स्वस्थ, प्रसन्न एवं निश्चिन्त हूँ। भगवान्‌की शक्ति और प्रेरणासे मेरे लिये जो शुभ और स्थायी है, वही होगा। कोई तूफान या परेशानी मेरी शान्त मन:स्थितिको भङ्ग नहीं कर सकती।

इस प्रकारकी गुप्त प्रेरणा बार-बार अपने गुप्त मनको देते रहिये। दिन-रात इसी भावनाको मनमें जमानेसे मनकी स्थिति संतुलित हो जायगी। आप ऐसे शान्त व्यक्तियों, मुनियों, विद्वानों, विचारकोंके मानसचित्र मनमें लाइये, जैसे शान्त आप स्वयं होना चाहते हैं। इन्हीं बड़े व्यक्तियोंकी मूर्तियाँ आपको घबराहटमें प्रेरणा देती रहेंगी।

अपनी कल्पनाका प्रयोग सही दिशामें कीजिये; अर्थात् कल्पना-द्वारा ऐसे शुभ और पौरुषपूर्ण मानसचित्र बनाइये, जिनमें आप अपना पूर्ण सफल रूप देख सकें। सफलता और शान्तिपूर्वक रहनेके जो चित्र आप कल्पनामें देखते हैं, वे निश्चय ही आपके जीवनमें प्रत्यक्ष होंगे। मान लीजिये, आपको भाषण देनेमें घबराहट महसूस होती है। अब आप मनमें बड़ी सभाका चित्र बनाइये और अपनेको उसके सामने धाराप्रवाह बोलते हुए कल्पित कीजिये। सफलता और शान्त रहनेका मानसिक अभ्यास करते-करते आप निश्चय ही उन्हें बाह्य जीवनमें भी पा सकेंगे।

कामको शान्त, स्थिर और प्रसन्न मनसे किया कीजिये। पहले ही यह न मान बैठिये कि आप अमुक कार्य न कर सकेंगे।

धीरे-धीरे बोलिये। एक काम ही एक बार पूर्ण कीजिये। सम्भव है, बहुत-से कार्य एक साथ सामने आते देख आप गड़बड़ा जायँ और गुप्त भयसे थकावट अनुभव करने लगें। धीरे-धीरे कार्य निपटानेसे घबराहट कम होती है।

मनमें कार्यकी सफलताका पूरा-पूरा विश्वास और संकल्पको दृढ़ रखिये। आप जिस कामको हाथमें ले रहे हैं, उसमें जरूर सफलता प्राप्त करेंगे, यह भाव रखनेसे मनुष्यकी तमाम शक्तियाँ जाग्रत् होकर सफलताके लिये प्रयत्नशील बनती हैं। अपनी विशेषताओं, अपनी शक्तियों, अपने ईश्वरीय गुणोंका ही विचार लगातार कीजिये। भूलकर भी अपनी निर्बलताओं या कमियोंको मनमें मत लाइये; अन्यथा घबराहट बढ़ेगी। निर्बलताओंकी बात सोचनेसे आत्मग्लानिका थोथा विचार मनमें आता है और वह कमजोरी पैदा करता है। पहले ऐसे छोटे-छोटे काम हाथमें लीजिये, जिनमें आप सफल हो सकते हैं। फिर इनसे कठिन और कष्टसाध्य कार्य हाथमें लेकर उनमें सफलता प्राप्त कीजिये। इससे आपका आत्म-विश्वास बढ़ जायगा।

आपकी घबराहटका कारण गुप्त मनमें संचित भय है। अतः जिन बातोंको करनेमें डर लगता है, उन्हें अवश्य करना चाहिये। आपको जिन व्यक्तियोंसे मिलनेमें संकोच या लज्जा आती है, उनसे जरूर मिलना चाहिये। ऐसा अभ्यास करते-करते मनका छिपा हुआ डर निकल जाता है। अतः सहर्ष मनसे निडर होकर आपत्तियों और कठिनाइयोंका स्वागत कीजिये।

संकटकी भीषण घड़ीमें रक्षा करनेवाले स्वर्णसूत्र

जीवनमें कभी-कभी बड़े भूचालके समान कठिन समय आते हैं। आकस्मिक विपत्ति, मृत्यु या दुःखद समाचार आते ही बहुत-से व्यक्ति बुरी तरह विचलित हो उठते हैं। कभी भयका भूत दिखायी देता है। जिंदगी बुरी तरह खतरेमें फँसी हुई दीखती है। ऐसा मालूम होता है कि जीवन सदाके लिये नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा।

ऐसे खतरेके समय मनुष्य भौंचक्का-सा रह जाता है। बुद्धि साथ नहीं देती। वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाता है। वह निराश-सा हो जाता है या उत्तेजित होकर ऐसी बात कह बैठता है जिसके लिये वह बादमें पछताता रहता है।

कभी-कभी हम ऐसी बात आवेशमें कर बैठते हैं, जो वास्तवमें हम करना नहीं चाहते थे, या दरअसल हमारा मतलब नहीं था। एक बार एक अफसरने क्लर्कको कुछ कड़वी बात कह दी। क्लर्क इतना क्रुद्ध हुआ कि उसने फाइलें अफसरके मुँहपर दे मारी। नतीजा यह हुआ कि नौकरी छूट गयी और उम्रभर पछताते रहे।

विलियम लेयन फेल्प्सने सत्य ही कहा है—

'संकटके समय मनको शान्त और चित्तको ठंडा रखना मनुष्यके लिये बड़ा उपयोगी है। इससे बड़े-बड़े कुफल बच जाते हैं।'

हम अपने चारों ओरके सफल और समृद्धिशाली व्यक्तियोंको

देखें और दुःख तथा उद्वेगसे पीडित जीवनको परिस्थितिके अनुसार तुरंत वदल दें ।

कुछ व्यक्तियोंने संकटोंसे बड़े धैर्यपूर्वक संघर्ष किया है। अपने-अपने तरीके निकाले हैं । कुछ उपाय यहाँ दिये जाते हैं—

नियम १—मानसिक दुःखके तनावको कम करनेके लिये फील्ड मार्शल वाइकाउन्ट स्लिमका प्रयोग देखिये । एक बार उन्हें युद्धमें वड़ी भारी हार उठानी पड़ी थी । वे कोई ऐसा उपाय ढूँढ रहे थे जिससे अपने सिपाहियोंमें वल और उत्साहका संचार कर सकें । अतः उन्होंने कुछ इस प्रकार कहना प्रारम्भ किया—

'नतीजा और भी भयंकर हो सकता था', वे वोले ।

'किस प्रकार ?' एक सिपाहीने प्रश्न किया ।

'हो सकता था कि वर्षा भी हो जाती !' वे हँसते हुए वोले । इस हास्यमय उत्तरको सुनकर सव हँस उठे । तनाव कम हो गया ।

आप भी जव कभी संकटमें हों, तो मुसकुराकर मानसिक तनाव कम करें । हँसी स्वयं एक अमृतोपम ओषधि है जो शरीरमें फैलकर पूरे शरीरको हलका कर देती है । सजीव वना देती है ।

आप भी मुसकुराहट या हास्यका प्रयोग किया करें ।

नियम २— एक प्रोफेसर साहव उच्च कक्षामें भाषण दे रहे थे । मनमें घवराहट थी । जल्दी-जल्दी अपनी वातें कहते चले जा रहे थे । संयोगसे जल्दीमें वे जिस नाटककी आलोचना कर रहे थे, उसके लेखकका नाम भूल गये । वहुतेरी कोशिश की, परंतु

नाम याद न आया। कक्षाके चतुर विद्यार्थी उनकी भूलको ताड़ रहे थे। उन्हें एकाएक याद आया कि संकटमें जल्दबाजी नहीं करनी चाहिये। अतः बिना डरे ही वे वादविवाद करते रहे। जैसे-जैसे उन्हें समय मिला और माथा कुछ ठंडा हुआ कि उन्हें नाटककारका नाम याद आ गया—नाम था सर जेम्स बेरी। अब क्या था, हिम्मतसे उन्होंने लेखकका नाम बता दिया। झेंप मिट गयी। उनकी बड़ी मानहानि होते-होते बची।

अतः कुछ समय रुकिये। मनको तनिक ठंडा और संतुलित होने दीजिये। जल्दबाजीमें सम्भव है आप कुछ ऐसी गलती कर बैठें, जो बादमें दुरुस्त न हो सके। उत्तेजनामें जल्दीसे कर बैठनेकी जो मनोवृत्ति है, उसे दबाइये। आप मूर्खतासे अवश्य बच सकेंगे।

अतः कुछ समय बीतने दीजिये। बातको ठंडा पड़ने दीजिये।

नियम ३—दूसरोंसे बातें करते हुए यह जी चाहता है कि हम अपनी बात या दृष्टिकोणसे चिपटे रहें। उसपर वादविवादमें बुरी तरह अड़ जायँ। विचलित न हों। दूसरी ओर दूसरा व्यक्ति भी अपनी जिद या तर्कमें पीछे नहीं हटना चाहता। नतीजा यह होता है कि तनाव बना रहता है।

दूकानदार ग्राहकको पटाना चाहता है, किंतु ग्राहक अपनी हठ नहीं छोड़ना चाहता। कोई भी अपनी बातको दबवाकर हेठी नहीं कराना चाहता। किंतु आप ऐसा करेंगे, तो दूसरेको शत्रु बना लेंगे।

एक सफल व्यापारीने मुझे बताया कि 'मेरी सफलताका रहस्य यह है कि मैं ग्राहकको अपना दृष्टिकोण खूब कह लेने देता हूँ। मैं उसे दबाता नहीं हूँ। उसके अहंकी तृप्ति करता हूँ। मैं अपने संकेत मात्र करता हूँ और फिर उन्हें सोचनेका काफी अवसर देता हूँ। ऐसा करनेसे मैं कभी अपने ग्राहकको नहीं खोता हूँ।'

आप दूसरोंपर हावी न हों। उनके अहंको कदापि न दबावें।

नियम ४– अपनी कटु-आलोचना या बुराईको सुनकर हम आगबबूला हो उठते हैं। कुछको तो इतनी उत्तेजना होती है कि मस्तिष्कका संतुलन ही नष्ट हो जाता है।

मैं हालहीमें एक मनसोपचारकसे मिला। उनसे पूछा— 'आपको तो अनेक पागलों और असंतुलित दिमागवालोंसे मिलना पड़ता है। आप भला क्या करते हैं?'

वे बोले—'अपनी ही बुराई सुन सकना सम्भव है। यदि मनमें यह मान लें कि वे हमारे लिये नहीं कही गयी हैं। इस तौरपर मानसिक रोगी किसी दूसरी बातपर और किसीसे नाराज होता है—अपने किसी मित्रसे, परिवारके किसी सदस्यसे या दफ्तरके हाकिमसे। वह उन सबका गुस्सा उतारनेके लिये हमें तो एक मात्र आधार ही बनाता है।

आप भी यही समझें कि दुनियाके आधे व्यक्ति विशेषतः स्त्रियाँ पागल या अविकसित होती हैं। वे हमें विचित्र लगती हैं। हम उन्हें विचित्र प्रतीत होते हैं। फिर हम व्यर्थ ही उनकी बातोंको बुरा मानकर क्यों परेशान हों?

नियम ५– गोर्डन कूपर आकाशमें उड़ रहे थे कि उनका वायुयान खराब हो गया। वे लिखते हैं कि मैंने हर सम्भव कोशिश की; आटोमैटिक कन्ट्रोल लगाये, पर वायुयान वशमें न आया। मैंने पहले अपने मनको शान्तिसे संतुलित किया। फिर बाहरके मैन्युअल कन्ट्रोल लगाये। यह हम सदा शुरूमें लगाते ही हैं। मैंने पाया कि वायुयान सँभल गया। मैं सही सलामत उतर आया। तबसे मुझे यह अनुभव हुआ कि मामूली बातों, वस्तुओं तथा विधियोंसे कभी-कभी बड़े शानदार फल प्राप्त किये जा सकते हैं।

संकटकी घड़ीमें आप पूर्ण रूपसे धैर्य धारण करें और ठंडे मस्तिष्कसे कठिनाईसे बचनेकी युक्ति सोचें। सच मानिये, यदि आप घबराहटसे बचे रहें, तो समस्याओंका कुछ-न-कुछ निदान निकल ही आयेगा।

कोई कठिनाई ऐसी नहीं है कि आप उससे न बच सकें। जीवनमें कभी भी हार मत मानिये। कठिनाईकी उलझी हुई गुत्थियोंको समझाइये। अपनी हीनता या पराजयकी बात मत सोचिये—

अनुह्वतः × × × × ×
आरोहणमाक्रमणं जीवतोजीवतोऽयनम्।

(अथर्व० ५। ३०। ७)

'तुम (मौतकी ओर जा रहे हो ?) मैं तुम्हें पीछे बुला रहा हूँ। वापिस लौटो। जीवनके मार्गको पहचाननेवाले (बनो)। उन्नति और वृद्धिको जाननेवाले (बनो)'

समाजका पतन इस प्रकार रुक सकता है !

देशमें स्थान-स्थानपर नैतिक पतनको लेकर दुःख प्रकट किया जा रहा है। कहीं खाद्यान्नोंमें मिलावट, कहीं रिश्वत, कहीं ब्लैकमार्केट है, तो कहीं पक्षपात, झूठे विज्ञापन, चोरी, छल, कपट या धोखेबाजीके नये-नये ढंग देखनेमें आ रहे हैं।

बाजारमें शुद्ध दूध, घी, आटा, दही, दवा मिलना असम्भव-सा हो गया है। सर्वत्र निम्नकोटिकी वस्तुओंकी मिलावट है। हमारे देशके व्यापारी यह नहीं समझते कि व्यापार ईमानदारी और शुद्ध वस्तुओंको बेचनेसे ही पनपता है। चोर-बाजारी, बिक्री-कर न चुकाना, पाकिस्तान आदि विदेशोंसे अवैध व्यापार करना, कम तौलना, मूल्य अधिक बताकर फिर हुज्जत करके कम करना,

अच्छा नमूना दिखाकर घटिया माल देना, असलीमें नकली मिला देना, ग्राहकको ठगनेका प्रयत्न—ये व्यापारिक पतनके अनेक रूप हैं!

समाचारपत्रोंमें आये दिन नैतिक पतनके समाचार छपते रहते हैं। एक वर्षमें वम्बई-राज्यमें भ्रष्टाचार-विरोधी व्यूरोने भ्रष्टाचार और दुर्वर्तनके २४३ मामले पकड़े, जिनमें ६७ सरकारी कर्मचारी भी सम्मिलित थे। इनमें २६ मामलोंमें ३५ सरकारी कर्मचारियोंको रिश्वत, गवन या किसी गैर-कानूनी ढंगसे रुपये ऐंठनेके अपराधमें पकड़ा गया है।

सहारनपुर पिछले ११ दिसम्वर ५८ का समाचार है कि वहाँके १४ गल्ला-व्यापारियोंको, एक रेलवे बुकिंगक्लर्क और चार दलालोंको चोरीसे दो लाखका चावल राज्यसे वाहर भेजनेके कथित अभियोगमें गिरफ्तार किया गया। नशीली चीजोंका अवैध व्यापार धड़ल्लेसे चल रहा है। अवैधरूपसे शराव बनाना या चोरीसे अफीम लाना, गाँजा बेचना आदिके अनेक समाचार छपते रहते हैं।

वम्बई-राज्यके पुलिस-विभागके एक मासके अपराधोंकी तफसील देखिये। मासके अन्ततक १०३ मामले पकड़े गये। इनमें २९ मद्यनिषेधके अपराध, ३ जुएके मामले, ६१ विना परमिटके मोटर चलानेके अभियोग और १० विविध अपराध थे; जैसे सिनेमा-टिकटोंकी चोरवाजारी, धोखादेही, सरकारी सम्पत्तिका उपयोग, इमारतके सामानकी चोरी, औरतोंको बेचने या वेश्यावृत्ति करवानेके मामले।

ये सब आसानीसे और विना ठोस श्रम किये धन कमानेके चसकेके कारण हुए हैं। वहुत-से व्यक्ति ऐश्वर्यपूर्ण जीवन, ऐश-आरामकी वस्तुएँ तो चाहते हैं, पर मेहनत और ईमानदारीसे नहीं कमाना चाहते । फलतः धोखेवाजीके नये-नये तरीके सोचा करते हैं।

लोग पतित क्यों होते हैं ?

विना मेहनत रुपया वना लेनेका व्यसन या चसका बुरा है। एक वार जिस व्यक्तिको मुफ्तखोरी, कामचोरी, धोखेवाजीकी लत पड़ जाती है तो उसका मन फिर किसी स्थायी काममें नहीं लगता। वह मुफ्तमें ही रुपयेका मालिक वनकर गुलछर्रे उड़ाना चाहता है।

कुछ व्यक्ति अपनेको अपनी हैसियत या सामाजिक स्तरसे ऊँचा दिखानेमें शान समझते हैं। अंदरसे खोखले रहते हुए भी वाहरसे ऐसा लिफाफा वनाये रखना चाहते हैं कि समाज धोखेमें रहे। कुछ ऐसे हैं जिनकी नशेवाजी, कामुकताकी तृप्ति, फैशन, विलासिता आदिकी आदतें अनियन्त्रित रूपसे वढ़ी हुई हैं। नैतिक आमदनी तो सीमित रहती है। कुछ ऊपरी आमदनी पैदाकर इन बढ़े हुए खर्चोंकी पूर्तिके लिये उनका मन कुलवुलाया करता है। वे सदा ऐसी तरकीवें सोचा करते हैं कि आमदनीके नये जरिये निकाल लें, जिनसे उनकी टीपटाप और वढ़ी हुई इच्छाओंकी पूर्ति होती रहे।

नैतिक और ईमानदारीसे आयवृद्धि करना आजके वेरोजगारीके

युगमें बड़ा कठिन है। फिर मनुष्य श्रमसे जी चुराता है और विना मेहनत आनन्द लूटना चाहता है। वह अपनी बुद्धि उन उपायोंकी खोज करनेमें लगाता है कि श्रम कम-से-कम करना पड़े, या हो सके तो बिल्कुल ही मेहनत न पड़े, पर आय दुगुनी हो जाय। इस कार्यमें वह मर्यादा और औचित्यकी सीमाओंको पार कर जाता है। क्षणिक भोग और लालचसे उसकी विवेक-बुद्धि भ्रमित हो उठती है!

नैतिक पतनका सामाजिक कारण मिथ्या प्रदर्शनकी भावना, झूठी शान, वासनापूर्ति या फैशनकी सनक और अनावश्यक तृष्णा हैं। भ्रष्टाचारीके मनमें अनावश्यक लोभ बना रहता है, जो उसे अवैध तरीकोंकी ओर ढकेलता है। कुछमें चोरीकी अपराधवृत्ति स्वाभाविक होती है। कुछ आनन्दी जीव होते हैं, जो शराब-पान, वेश्यागमन और होटलके वासनामूलक पदार्थोंके इच्छुक होते हैं। कुछ अनाप-शनाप खर्चमें ही अपनी अहं-तुष्टि कर पाते हैं। ये सब मानसिक दृष्टिसे रोगी होते हैं।

फजूलखर्ची, विलासिता और आरामतलबी हमारे इस दिखावटी समाजका एक बड़ा दुर्गुण है। यह केवल अमीर और पूँजीवादीवर्ग-तक ही सीमित नहीं है, प्रत्युत मध्यवर्ग और मजदूरवर्ग, क्लर्क और बाबूवर्ग तकमें पाया जाता है।

जितनी आज अपने-आपको अमीर दिखानेकी थोथी प्रवृत्ति पायी जाती है, उतनी पहले कभी नहीं पायी गयी। लोग अपनी ईमानदारीकी कमाईसे संतुष्ट नहीं हैं; वे तो एकाएक कम-से-कम

समयमें अमीर बन जानेके उपाय (जो प्रायः अनैतिक होते हैं) सोचा करते हैं । वे सट्टा करते हैं, जुआ खेलते हैं, दूसरोंको तरह-तरहसे धोखा देते हैं, ठगते हैं, भ्रष्टाचार करते हैं और रिश्वत उड़ानेका प्रयत्न करते हैं ।

शहरोंमें दिखावा और झूठी शान दिखानेकी दुष्प्रवृत्ति सर्वत्र पायी जाती है । आप उसे सड़कोंपर, गलियोंमें, पार्कोंमें, मन्दिरोंमें और सबसे अधिक विवाह-शादियोंके अवसरपर देख सकते हैं । पोशाकका दिखावा और शान कदाचित् सबसे अधिक बढ़ी हुई है । युवक और युवतियोंमें अपने-आपको सजाने, विविध शृङ्गार करनेकी भावना अनियन्त्रित रूपसे बढ़ती ही चली जा रही है । लोग अपनी आयसे बहुत अधिक व्यय कर दूसरोंपर शान जमाते हैं और उसका दुष्परिणाम व्यावसायिक दिवालियापन, धोखेबाजीके अनेक मुकदमे, विविध अपराध मिल रहे हैं, जिनमें लोगोंको बेईमानी और दूसरोंको ठगनेपर भारी सजाएँ होती हैं ।

हमारा बाहरी लिफाफा अच्छा रहे । हम अमीर और पूँजीवाले दिखायी दें, यह बहुरूपियापन आज हमारे समाजको भ्रष्टाचारकी ओर आकृष्ट कर रहा है । धोखेबाज दूसरोंपर झूठी शान जमानेमें लगे हुए हैं । वे एक खास किस्मके स्टाइलसे रहना चाहते हैं, खूबसूरत कोठियोंमें निवास करते हैं, दावतें देते हैं, पान-सिगरेटका दौर-दौरा रखते हैं और इन सबके खर्चे पूरे करनेके लिये भ्रष्टाचार ही उन्हें एक सीधा-सा रास्ता दिखायी देता है ।

एक वर्ग अंदरसे गरीब है, पर दिखाता है अमीरी । यह

निम्न मध्यवर्ग हर तरीकेसे अपनी गरीबीको छिपानेका उपक्रम करता है। वे व्यक्ति कमानेसे पूर्व ही अपनी आमदनी खर्च कर चुकते हैं। उनपर कभी पंसारीका तो कभी कपड़ेवालेका कर्ज चढ़ा ही रहता है। बिजलीके बिल जमा नहीं हो पाते। मकानका किराया चढ़ा रहता है; किंतु फिर भी वे मित्रोंकी दावतें करेंगे और लेन-देनमें कभी कमी न करेंगे। वे मित्र और सम्बन्धी कबतक ऐसे व्यक्तिके साथ रहते हैं? केवल तभीतक, जबतक वह ऋण इतना नहीं हो जाता कि अदायगीकी सीमासे बाहर हो जाय। जहाँ वह ऋणमें फँसा कि ऐसे 'खाऊ-खड़ाऊ' व्यक्ति उड़ जाते हैं और इस ऋणग्रस्त व्यक्तिसे घृणा करते हैं। फिर उसे कोई नहीं पूछता। कर्ज उसे पेटमें रख लेता है।

हम फैशनके दास बन गये हैं। हम दूसरोंके नेत्रोंसे देखते हैं। दूसरोंके दिमागोंसे सोचते हैं। जैसा दूसरोंको पसंद है, हम वही करते हैं। हम वह नहीं करते जो वास्तवमें हमारी सच्ची स्थिति है, हैसियत है या जो हमारी आमदनी है। हम अन्धविश्वासोंके गुलाम हैं। जैसा देने-दिलानेका रिवाज है, हम वैसा ही करनेपर तुल जाते हैं, जब कि हमारे पास पैसा होता ही नहीं और हम अपना घर भी दूसरोंके यहाँ गिरवी रख देते हैं। हम स्वतन्त्ररूपसे विचार नहीं करते, अपना आगा-पीछा नहीं सोचते। हम जिस वर्गमें हैं, उससे इस वर्गकी बड़ी हैसियतका अन्धानुकरण करते हैं। समाज तो दो दिन वाहवाही करके अलग हो जाता है। हम उम्रभर कर्जमें डूबे रहते हैं। हमारे मनमें यह गलत धारणा बन

गयी है कि हम यदि ऐसे कपड़े पहनेंगे, ऐसा बनाव-श्रृंगार करेंगे, सोसाइटीके रस्मों-रिवाजोंका पालन करेंगे, तभी हमें सम्मान्य समझा जायगा। हम मूर्खतामें फँसकर अपनेसे ऊँची आय, हैसियत, संचित पूँजी और ऊँची स्थितिवाले लोगोंके समान जीवन बितानेकी इच्छा करते हैं।

इस प्रकार अनेकानेक समझदार और पढ़े-लिखे व्यक्तितक कर्ज, दुःख, बेबसी, आत्महत्या, उत्तेजना, अपराध और भ्रष्टाचारकी ओर बढ़ते हैं। खानेकी वस्तुओंमें मिलावट, दूसरोंसे रिश्वत, भोली-भाली जनताको धोखेबाजीसे छलते हैं। अनेक तरीकोंसे ठगते हैं। झूठे विज्ञापन करते हैं, डकैती और हत्यासे भी नहीं चूकते। बार-बार चोरी करनेसे वह हमारी आदतमें शुमार हो जाता है। एक भ्रष्टाचारीको बने-ठने देखकर दूसरे भी वैसा ही रंग बदलते हैं। वे भी उन्हीं अनैतिक तरीकोंको अपनाते हैं। एक भ्रष्टाचारी दूसरेको भ्रष्टाचारी बनाता है।

पापीका अनैतिक धन आठ-दस वर्ष ठहरता है, ग्यारहवाँ वर्ष लगते ही समूल नष्ट हो जाता है।

अन्यायोपार्जित धन विषके समान होता है। जो अनैतिक और गंदे तरीकोंसे धन कमाते हैं, उनके चारों ओर विष-ही-विष है।

संत टाल्सटाय धनके साथ जुड़ी हुई अनेक बुराइयोंके कारण धनको पाप मानते थे। उनकी पत्नी खाने, उड़ाने, चाटने और दिखावटी जीवनको पसंद करती थी। वह हमेशा नये-नये फैशन और नयी-नयी माँगें पेश किया करती थी। इस तरह दोनोंके

स्वभावकी असमानताके कारण उनका जीवन कलुषित बन गया था। यदि और कोई कम आत्मविश्वासका व्यक्ति होता तो पत्नीको खुश करनेके लिये वह भी भ्रष्टाचारी बन सकता था। दुनियाको छल, कपट और धोखेबाजीसे लूटनेका षड्यन्त्र कर सकता था; किंतु टाल्सटायको भ्रष्टाचारसे बड़ी घृणा थी। उन्होंने सत्य और नैतिकताका सन्मार्ग न छोड़ा। बयासी वर्षकी उम्रमें पत्नीके कलहसे तंग आकर गृह-त्याग किया।

सच है, धन जिनका चाकर है, वे बड़भागी हैं। जो धनके चाकर हैं, वे अभागे हैं!

तमाम पवित्र चीजोंमें धन कमानेकी पवित्रता सर्वोत्तम है।

नैतिक गिरावटका जिम्मेदार हमारा समाज है

भ्रष्टाचारके लिये किसे दोष दें? व्यक्तिको या समाजको? आप कहेंगे व्यक्ति ही मिलावट करता है, रिश्वत लेता है, चोरी, छल, ठगी, धोखेबाजी करता है। इसलिये व्यक्ति ही इस अपराधका जिम्मेदार है, व्यक्तिका ही दोष है।

हम कहते हैं कि भ्रष्टाचारका दोषी व्यक्ति उतना नहीं है, जितना समाज है। समाज व्यक्तिको निरन्तर प्रभावित किया करता है। प्रत्येक समाजमें कुछ निश्चित कायदे-कानून और बँधी हुई रस्में हैं। व्यक्तिको उन्हींका पालन करना पड़ता है। जिन रस्म और रिवाजोंका समाजमें मान होता है, जिन बातोंको अच्छा और बुरा माना जाता है, समाजका प्रत्येक व्यक्ति उन्हींको स्वभावतः ग्रहण करना चाहता है। उन्हींको धारण करनेमें गौरवका अनुभव करता है।

समाजमें कुछ व्यक्ति तो सादा जीवन व्यतीत करते हैं, पर कुछ दम्भी ऐसे भी होते हैं, जिनके घरमें तो भूजी भाँग नहीं होती, पर वे अपने आपको बड़ी टीपटापसे दिखाते हैं, कृत्रिम बनाव-शृंगार रखते हैं; बाहर कुछ, अंदर कुछ और रहते हैं। ये साज-शृङ्गार करते हैं, तो समाज इन्हें मान देता है। समाजमें ये लम्बी नाक निकालकर चलते हैं। इनकी टीपटाप और विलास-को देखकर साधारण स्तरके व्यक्ति भी इनकी नकल करते हैं। लुभावने जीवनकी ओर आकर्षित हो जाते हैं। समाजमें सब कुछ अनुकरणसे ही चलता है। एकके बाद दूसरा, बस, यह लुभावना जीवन ही सर्वत्र परेशान कर रहा है।

समाजमें टीपटापसे रहनेवाले बड़े आदमियोंका विलासिता और फैशनसे भरा हुआ जीवन कम आयवालोंके मनमें ईर्ष्या उत्पन्न करता है। वह अपनी सीमित आमदनीमें अपने खर्चे पूरे कर नहीं पाता। अतः उसके मनमें अतृप्ति बनी ही रहती है। आज जिसे देखिये, वही आय कम होनेकी शिकायत इसीलिये करता है; क्योंकि वह अपनी हैसियत तथा सामाजिक स्तरमें नहीं रहना चाहता, बल्कि अपनेसे बड़ों, अमीरों, जागीरदारों, सामन्तों या राजाओंके जीवनका असफल अनुकरण करता है।

नैतिक गिरावट रोकनेके लिये सुझाव

नैतिक गिरावट एक सामाजिक रोग है। समाज ही इस रोगका निराकरण कर सकता है। यदि समाज प्रयत्न करे तो बहुत जल्दी भ्रष्टाचार समाप्त हो सकता है।

समाजमें ऐसे अवसर बंद कर देने चाहिये, जिनमें कम

आयवालोंको बड़ोंके अनुकरण और ईर्ष्याके अवसर मिलते हैं, या अनावश्यक मिथ्या प्रदर्शनके खर्चे बढ़ते हैं। विवाहोंमें अनाप-शनाप दिखावा, लेन-देन ठहराव, दहेजका प्रदर्शन आदि दूसरोंको और भी अधिक व्यय करनेको प्रेरित करते हैं। एक दस हजार व्यय करता है, तो दूसरा उसे नीचा दिखानेके लिये पंद्रह हजारकी योजनाएँ बनाता है। तीसरा कुछ और टीपटाप और प्रदर्शनकी तरकीबें सोचता है। लानत है, उस सामाजिक अनुकरणपर, जो हमें सजीव सत्यसे वञ्चित रक्खे। अपनी असलियत न प्रकट करने दे, अथवा वास्तविकता खोलते हुए मनमें लज्जाका भाव पैदा कर दे।

दहेज या तो दिया ही न जाय, अथवा चेकद्वारा दिया जाय, जिसका प्रदर्शन तनिक भी न हो। विवाहमें कन्याकी शिक्षा, योग्यता, सच्चरित्रता और स्वास्थ्य ही मुख्य है। धन तो नितान्त गौण है। दहेजका प्रदर्शन ही न किया जाय, तो फिर उसके देनेमें कौन गर्वका अनुभव करेगा ?

सौन्दर्य-प्रसाधनोंको महत्त्व न दिया जाय

आज हम नारी-जीवनको देखते हैं, तो उसमें भी समाजका ही कसूर पाते हैं। हर एक युवती बढ़िया-बढ़िया राजसी वस्त्र, अधिकाधिक नवीन रंग तथा आकर्षक प्रिंट्स, नाइलोन साड़ियाँ और नयी डिजाइनोंके आभूषण क्यों चाहती है ? नये फैशन क्यों बनाती है ? मुँहपर क्रीम, पाउडर, सुर्खी इत्यादि क्यों लगाती है ? अपनेको सुन्दर दिखानेमें क्यों इतनी तल्लीन है ?

इसका कारण वह यह समझती है कि समाजमें इन्हीं वस्तुओंके प्रयोगसे वह सम्माननीय समझी जायगी। वह यही समझती है कि

पत्नीका सजी-धजी फैशनमें होना ही सौभाग्यकी बात है। वह बेचारी ऐसे समाजमें रहती है, जिसमें अधिक-से-अधिक फैशन बनाना उत्तम समझा जाता है और अर्द्धनग्न रहनेमें पाश्चात्त्य देशोंकी अंधाधुंध नकल की जाती है। समाज इन फैशनों, इन सौन्दर्य-प्रसाधनोंको महत्त्व देता है। सम्मानसे देखता है।

समाजका सम्मान पानेकी भूखमें वह बेचारी जीवनकी अनेक उपयोगी और आवश्यक वस्तुओंका प्रयोग बंद कर देती है। शुद्ध घीके स्थानपर डालडा और दूधके स्थानपर चायका प्रयोग करती है, पर सौन्दर्य-प्रसाधनों, वस्त्रों, फैशनोंमें दिल खोलकर व्यय करती है। दोष उस समाजका है जो गलत मूल्योंसे व्यक्तियोंको नापता है और मिथ्या-प्रदर्शनकी ओर गुमराह करता है।

जनताका मन चीजोंको गहराईसे नहीं सोचता। वह तो कच्चा मन रखता है। ऊपरी दिखावेसे ही प्रभावित हो जाता है। वह भी व्यक्तिका मूल्याङ्कन वाह्य प्रदर्शनसे ही करने लगता है। अतः जरूरत इस बातकी है कि समाज ऐसे मिथ्या-प्रदर्शनपर रोक लगाये।

सिनेमाको घृणाकी दृष्टिसे देखा जाय

युवक-युवतियाँ समाज और सरकारद्वारा सिनेमा-अभिनेता और अभिनेत्रियोंको सम्मानित होते देखती हैं। अभिनेत्रियोंके सजे हुए फोटो बड़ी शानसे छपते हैं। अखबार उनके रोचक वृत्तान्त छाप-छापकर जनताका ध्यान उनकी ओर आकर्षित करते हैं। युवक अभिनेत्रियोंके चित्रोंसे सुसज्जित अखवारोंको लिये फिरते हैं। घर तथा दफ्तरोंमें दीवारोंपर उनके चित्र या कैलेंडर सजावट और सम्मानके लिये लगाये जाते हैं। जब युवक या युवती जनता-

द्वारा दिये गये इस सम्मानको देखती है, तब कन्याएँ स्वयं भी वैसी ही बनना चाहती हैं। इन्हें गुमराह करनेका अपराध उन लोगोंका है, जिन्होंने गलत मान दे-देकर कच्चे दिमागोंको बुरे रास्तेपर डाल दिया है!

समाजने सिनेमाको सार्वजनिक जीवनमें बहुत मान दिया। सिनेमा हमारे दैनिक जीवनका एक महत्त्वपूर्ण अङ्ग बन गया। कच्चे दिमागोंके विद्यार्थियोंने सिनेमामें रोमांस और एडवेन्चरके चित्र देखे। उन्हींका अनुकरण किया। फलस्वरूप यह वर्ग कामुक और रोमांटिक बन गया। विद्यार्थियोंमें अनुशासनहीनता, फैशनपरस्ती, कामुकता और गुंडागर्दीकी भावना फैल गयी।

आवश्यकता यह है कि सिनेमाको घृणाकी दृष्टिसे देखा जाय, अभिनेत्रियोंको मान न दिया जाय। मनुष्यकी सच्चरित्रता, विद्वत्ता, भलमनसाहत, उद्योग आदिको ही मान दिया जाय। जो-जो व्यक्ति जीवनमें सदाचार, संयम, सद्व्यवहार, त्याग, तपस्या, सादगी और सरलतासे जीवन-यापन करके ऊँचे उठे हैं, उन्हींको समाजकी ओरसे सम्मान दिया जाय। इस प्रकार सही दिशाओंमें सोचने-विचारने और चलनेको प्रोत्साहित किया जाय। यदि समाज सत्यता और शीलगुणको सम्मान देगा तो जनता रुपयेके मोहसे हटकर मानवोचित सद्गुणोंके विकासकी ओर ही श्रम करेगी। उसकी विचारधारा उच्च नैतिक आदर्शोंकी ओर चलेगी; हमें समाजको नयी शिक्षा देनी होगी।

समाजके स्वस्थ कार्योंको ही मान्यता दी जाय

सच्ची शिक्षाका समूचा उद्देश्य समाजको ठीक कार्योंमें रत

कर देना ही नहीं, बल्कि उन्हें ठीक कार्योंमें रस लेने लायक बना देना है। समाजको शुद्ध बना देना है।

सब शुद्धताओंमें धनकी शुद्धता सर्वोत्तम है; क्योंकि शुद्ध वही है, जो धनको ईमानदारीसे कमाता है; वह नहीं, जो अपनेको केवल मिट्टी और पानीसे शुद्ध करता है।

एक विचारकने लिखा है, 'निस्संदेह ऐसे बहुत आदमी हैं जो अन्यायी, बेईमान, धोखेबाज, अत्याचारी, फरेबी, झूठे, रिश्वतखोर, भ्रष्टाचारी बनकर धनवान् हुए हैं और आज समाजमें सम्मानके पात्र बने हुए हैं। सच जानिये, ऐसे व्यक्ति सुखी और तृप्त नहीं हो सकते। क्या वे इस दौलतके अत्यल्पांशका भी आनन्दसे उपभोग कर सकते हैं?'

'नहीं, कदापि नहीं। उनकी अन्तरात्मा उन्हें दिनभर और रातभर झिड़की, पीड़ा, संताप और यन्त्रणा देती रहती है।'

विद्वान् उचित दिशा सुझाएँ

सामाजिक वातावरण बदलनेकी जिम्मेदारी विद्वानों, विचारकों, लेखकों, सम्पादकों, कवियों, समाज-सुधारकों, राजनीतिक नेताओं और संतोंकी है। ये लोग अपने विचारों, पत्रों और लेखोंद्वारा समाजमें नयी-नयी विचारधाराएँ फैलाते हैं और जनताको विचारकी नयी विधियाँ सिखाते हैं, उचित-अनुचितका विवेक सिखाते हैं। अपने तर्कोंसे कुछ विशेष निष्कर्षोंपर पहुँचते हैं। विवेक कुछ खास व्यक्तियोंका गुण है, चंद बुद्धिशालियोंकी निजी सम्पत्ति है। यदि यह उपदेशकवर्ग समाजके मूल्योंको सांसारिकतासे हटाकर नैतिकताकी ओर ले जाय तो बड़ा लाभ हो सकता है।

वे सम्पादक, जो फिल्मोंके माध्यमसे कामुकता और श्रृंगारका प्रचार कर रहे हैं, जनताके शत्रु हैं। जो उच्छृङ्खल स्त्रियोंके आकर्षक-आकर्षक चित्र पत्रोंमें मुखपृष्ठोंपर छाप-छापकर युवकोंको विषय-वासनाकी ओर ढकेल रहे हैं, समाजका बड़ा अहित कर रहे हैं। अपने पत्रोंद्वारा वे जिस व्यक्तिको मान देंगे, शेष आदमी भी वैसे ही बनेंगे। अतः उन्हें चाहिये कि मानव-जातिके नैतिक जीवन-स्तरको ऊँचा उठानेवाले आदर्श पुरुष और नारी-रत्नोंको सम्मान दें। अपने पत्रोंमें उन आदर्श व्यक्तियोंके ही वृत्तान्त, घटनाएँ, कहानियाँ छापें, जिनमें दूसरोंको ऊँचा उठानेयोग्य आदर्श बातें हों। गंदे साहित्य, रोमांटिक किस्से-कहानियों और निम्न कोटिके साहित्य पढ़-पढ़कर जनता भ्रष्टाचारकी ओर भटक गयी है !

साहित्यका पतन राष्ट्रके पतनका द्योतक है। सच्चा साहित्य वही है, जो मनुष्यका हित करे अर्थात् उसका नैतिक उत्थान करे। विवेकको जाग्रत् करे। मानसिक स्वास्थ्यके लिये विवेक वैसा ही है, जैसा शरीरके लिये स्वास्थ्य। विवेक जाग्रत् होनेसे मनुष्य उचित-अनुचितका अन्तर स्वतः समझने लगता है। सम्पादकोंको ऐसा साहित्य प्रकाशित करना चाहिये, जिससे विवेक जाग्रत् हो और जनता देवत्वकी ओर चले। लेखक ऐसे सात्त्विक साहित्यकी रचना करें, जिससे मनुष्य संयमका पाठ पढ़ें, अपनी सीमित आयमें अपना गुजारा करें और संतुष्ट रहना सीखें। अपनी आवश्यकताओं, वासनाओं और तृष्णाओंको न बढ़ने दें। इस प्रकारकी विचारधारा फैलानेसे सात्त्विक वायु-मण्डल बनेगा और उसमें निवास करनेसे समाज भ्रष्टाचार स्वतः त्याग देगा।

ये हमसे सदा दूर रहें !

हमारे पास कौन रहे ? हमसे क्या दूर रहे ? इन प्रश्नों-ने भारतीय विचारकोंको सदा उलझनमें डाला है ।

हमसे क्या दूर रहे ? इस प्रश्नपर हमारे मनीषियोंने बहुत सोचा है, भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणसे विचार किया है, विषयके हर पहलूपर मन्थन किया है । यह उत्तर मानव-जीवनकी प्रगति और विकासके लिये उपयोगी है ।

हमसे दूर वे चीजें रहें, जो हमारा अहित करती हैं; वे दुर्गुण दूर रहें, जो हमारे मन, शरीर और आत्माको हानि पहुँचाते हैं; वे व्यक्ति दूर रहें, जो अपने सङ्गसे हमारे अंदर दोष उत्पन्न करते हैं । हमारी खराब आदतें, बुरा स्वभाव, क्लेश, रोग, शोक, चिन्ता और द्वेष हमसे दूर रहें; क्योंकि ये सब अस्वास्थ्यकारी और हानिकारक हैं । वे कौन-कौन-से विषैले विषय हैं जो हमसे दूर रहें ? हमारे शास्त्र कहते हैं—

हमसे वे लोग दूर रहें !

संसारमें असंख्य व्यक्ति हैं, भिन्न-भिन्न रंग, रूप, रुचि, स्वभाव और मानसिक विकासके हैं; पृथक्-पृथक् आदर्श और उद्देश्यवाले हैं; रहन-सहन और आदतोंमें अलग-अलग हैं । ये व्यक्ति बाहरसे सब एक-से ही लगते हैं, पर मन, बुद्धि और स्वभावसे बिल्कुल भिन्न हैं । इनके आचरणमें जमीन-आसमानका अन्तर है । कुछसे आपके जीवनमें नया उत्साह और उन्नतिके लिये नवप्रेरणा मिलती है, दूसरोंसे कोई कुरुचि या विषैली आदत मिल सकती है । अतः

अच्छे-बुरे, ऊँचे-नीचे, उन्नतिशील और पतनोन्मुख आदमियोंकी पहचान बड़ी जरूरी है । आप अच्छे विचार और शुभ संकल्पोंवाले व्यक्तियोंके सत्संगमें रहें और इनसे बचें—

उत वा यः सहस्य प्रविद्वान् मर्तो मर्तं मर्चयति द्वयेन।
अतः पाहि स्तवमान स्तुवन्तमग्ने माकिर्नोदुरिताय धायीः॥
(ऋग्वेद १ । १४७ । ५)

अर्थात् आप उन व्यक्तियोंसे सदैव दूर रहें, जो दूसरोंकी निन्दा और परच्छिद्रान्वेषणमें ही लगे रहते हैं; क्योंकि उनके साथ रहनेसे अपना स्वभाव भी वैसा ही त्रुटिपूर्ण बन जाता है ।

ऐसे व्यक्ति सदा दूसरोंकी कटु आलोचना और खराबियाँ निकालनेमें ही लगे रहते हैं । उनमें नैतिक, सांसारिक, व्यापारिक और आत्मिक कोई भी लाभ नहीं होता । उनके सङ्गसे पर-दोष-दर्शनकी क्षुद्र तथा नीच प्रवृत्ति बढ़ती है ।

हम जैसे लोगोंके साथ दिन-रात रहते हैं, गुप्तरूपसे उनके विचार और आदतें भी ग्रहण करते जाते हैं । गुण-अवगुण सब संक्रामक हैं । इसलिये निन्दा करनेकी क्षुद्र प्रवृत्तिवाले व्यक्तियोंसे सदा बचना चाहिये ।

अज्ञानियों और मूढ़ जनोंसे दूर रहें !

दीर्घतमा मामतेयो जुजुर्वान् दशमे युगे।
अपामर्थं यतीनां ब्रह्मा भवति सारथिः॥
(ऋग्वेद १ । १५८ । ६)

अर्थात् अज्ञानी व्यक्ति (अपनी मूढ़ता, अज्ञानता, संकुचितता और अल्पज्ञताके कारण) लोभातुर होकर रोग-शोकसे दुःख पाते हैं,

किंतु धर्मनिष्ठ पुरुष ज्ञान और विज्ञान बढ़ाकर स्वयं बन्धनमुक्त रहते हैं तथा दूसरोंको भी संसार-सागरसे पार ले जाते हैं ।'

अज्ञानसे अदूरदर्शिता उत्पन्न होती है । अविकसित व्यक्तिकी दर्शन-पद्धति संकुचित रहती है । वह उन चीजोंको अनावश्यक महत्त्व देता है, जिनका वास्तवमें साधारण-सा स्थान है । अज्ञानी लोग गुण, कर्म और स्वभावके स्थानपर पूर्वपुरुषों और माता-पिताके द्वारा अर्जित सम्पत्तिसे मनुष्यकी उच्चता-नीचता परखते हैं । वे अपनी भेड़ चालसे समझदार आदमियोंको भी गुमराह करते हैं ।

नादान दोस्तसे समझदार दुश्मन ज्यादा अच्छा है; क्योंकि हमें सदा उससे चौकन्ना रहना पड़ता है ।

हम साधु पुरुषोंके ही साथ रहें !

आप समझदार, विद्वान्, शान्त और संतुलित रहनेवाले व्यक्तियोंके ही साथ रहें, जिससे आपको सुरुचि और सद्ज्ञान मिले, उसीका सत्संग करें । झगड़ालू और उत्तेजक स्वभाववालोंसे दूर रहें ।

मा नो अग्नेऽव सृजो अघायाऽविष्यवे रिपवेदुच्छुनायै ।
मा दत्वते दशते मादते नो मा रीषते सहसावन् परा दाः ॥
(ऋग्वेद १ । १८९ । ५)

याद रखिये, इस समाजमें आपके चारों ओर अच्छे-बुरे सभी प्रकारके आदमी हैं । यहाँ मङ्गल मृदु स्वभाववाले सज्जन पुरुष भी हैं और बाघ, सर्प, बिच्छू आदि हिंसक विषैले जीव-जन्तु भी बड़ी संख्यामें छिपे हुए हैं । बल्कि ये दूसरी कोटिमें विषैले व्यक्ति अधिक हैं और आपको परेशान करनेका मौका ढूँढ़ते रहते हैं ।

इसलिये समझदार मनुष्यको चाहिये कि इन असाधुओंसे बचकर साधु-पुरुषोंका साथ करे, शुभ कर्मोंको ही ग्रहण करे और दुष्कर्मोंसे दूर रहे ।

हमारे कर्मका कभी नाश नहीं होता । कल्याणकारी धर्म-कर्म, दूसरोंकी सेवा और सहायता, पुण्य-कार्य सदा ही देर-सबेर फलदायक होते हैं । इस लोक और परलोकमें धर्मको ही सबसे श्रेष्ठ कहा है । बुद्धिमान् धर्मसे बढ़कर किसीको बड़ा नहीं कहते—

धर्म एव कृतः श्रेयानिह लोके परत्र च ।
तस्माद्धि परमं नास्ति यथा प्राहुर्मनीषिणः ॥

धार्मिक प्रवृत्तिवाले व्यक्तियोंके साथ रहिये । उनसे आपको जीवन और जगत्-सम्बन्धी उत्तमोत्तम रहस्य प्राप्त होंगे । उनके आचरण, वाणी, कर्मसे आपके उन्नतिशील जीवनको प्रेरणा प्राप्त होगी ।

आयुर्नसुलभं लब्ध्वा नावकर्षेद् विशांपते ।
उत्कर्षार्थं प्रयतेत नरः पुण्येन कर्मणा ॥

यह दुर्लभ आयु पाकर मनुष्यको कभी पाप-कर्म नहीं करना चाहिये । समझदार व्यक्तिको सदा ही पुण्यकर्मोंसे अपनी और समाजकी उन्नतिके लिये कार्य करना चाहिये ।

हम कटुवचन बोलनेवालोंसे दूर रहें !

कुवाणीका प्रयोग करनेवाले, सदा दूसरोंको गाली देने या कुवचनोंका प्रयोग करनेवाले असभ्य व्यक्तियोंसे दूर रहना चाहिये । ये लोग पशु-तुल्य होते हैं और मनुष्यकी सबसे बड़ी विभूति वाणीका दुरुपयोग करते हैं ।

गाली या अश्लील भाषाका प्रयोग करनेवाला व्यक्ति अंदरसे पशु-प्रवृत्तियोंमें ही जकड़ा रहता है। गाली समाजके लिये अहितकर है। अंदर छिपे हुए पाप और दुष्ट वासनाको प्रकट करनेवाला दोष है।

सदा निन्दा, क्रोध तथा कटुवचनोंका प्रयोग करनेवाले मानसिक दृष्टिसे बीमार हैं। वे कुछ भी कर बैठते हैं। उनसे हम सदा दूर ही रहें।

मा नो निदे च वक्तवेऽर्यो रन्धीरराव्णे।
त्वे अपि क्रतुर्मम॥
(ऋग्वेद ७। ३१। ५)

'हे परमेश्वर! जो मनुष्य कठोर और निन्दनीय वचन बोलते हों, उनसे हम सदैव दूर रहें। कठोरता, रूक्षता, कर्कशता इत्यादि त्रुटियोंसे हमारा कोई सरोकार न हो। हमारे सब कार्य आपको ही समर्पित हों अर्थात् हम सदैव शुभकर्म ही करें।'

रूक्षता और कर्कशता आसुरी प्रवृत्तियाँ हैं। ये उस कठोरताकी प्रतीक हैं जो असभ्य और दानवी प्रकृतिके व्यक्तियोंमें पायी जाती हैं।

आप सरस और प्रेममय रहें। पीड़ित और दुःखितके लिये सदा आपका हृदय खुला रहे।

यो मा पाकेन मनसा
चरन्तमभिचष्टे अनृतेभिर्वचोभिः।
आप इव काशिना संगृभीता
असन्नस्त्वासत इन्द्र वक्ता॥
(ऋग्वेद ७। १०४। ८)

अर्थात् मिथ्यावादी और असत्य भाषण करनेवाले झूठे व्यक्तिसे दूर रहना ही अच्छा है।

झूठा व्यक्ति जब दूसरोंको धोखा दे सकता है, तो वह आपका कैसे सगा बन सकता है ? जीवनके सैकड़ों कार्य हैं, जो झूठके कारण हानिप्रद हो सकते हैं। एक झूठको छिपानेके लिये वह दस नयी और अधिक बड़ी झूठ बोलता है। इसलिये दो-तीन बार परख करनेके बाद झूठेका सङ्ग त्याग देना ही लाभदायक है।

झूठेका व्यवहार कपटपूर्ण एवं स्वार्थमय होता है। वह स्वार्थसाधनके लिये मित्र तथा सम्बन्धियोंसे भी विश्वासघात कर सकता है। स्वार्थी और कपटीसे सावधान रहें।

यस्तित्याज सचिविदं सखायं न
तस्य वाच्यपि भागो अस्ति।
यदीं शृणोत्यलकं शृणोति नहि
प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम् ॥
(ऋग्वेद १०। ७१। ६)

आपको अपनी जीवनयात्रामें ऐसे व्यक्ति मिलेंगे, जो अपने स्वार्थ-साधनके लिये किसीसे मित्रता कर लेते हैं। फिर जब उनका अपना काम निकल जाता और स्वार्थ सिद्ध हो जाता है, तो उसे त्याग देते हैं। ऐसे कपटी लोगोंसे एक वार धोखा खाकर सावधान हो जाना चाहिये और फिर कभी उनका विश्वास नहीं करना चाहिये। ऐसे धोखेबाजोंको निन्दा और अपयशका भागी बनना पड़ता है।

स्वार्थी और कपटी मनुष्य हमसे दूर रहें। जो दूसरोंका अहित ही सोचते हैं और जिनसे जीवनके उत्थानकी प्रेरणा नहीं मिलती, वे शुष्क और हृदयहीन हमसे दूर रहें।

आंततायीका प्रतिरोध करना चाहिये

जिन दुर्ग्रोंसे देशको हानि होती है और जो अपने क्षुद्र स्वार्थोंके लिये धोखा देनेसे नहीं चूकते, उनसे हम दूर रहें।

मातृभूमिके प्रति विश्वासघात करनेवाले, स्वयं अपने ही बन्धु-बान्धवोंका अपकार करनेवाले मूर्खोंसे हम बचते रहें।

हमारे समाजमें तोड़-फोड़, भेद-भाव, कलह और विद्वेष फैलानेवाले असामाजिक तत्त्व हमारे पास न आयें।

यदि नो गां हंसि यद्यश्वं यदि पूरुषम्।
तं त्वा सीसेन विध्यामो यथा नोऽसो अवीरहा॥
(अथर्ववेद १। १६। ४)

'जो हमारे गाय आदि पशुधनोंको नष्ट करता है, वह दण्डनीय है। अर्थात् जो मानवीय हितोंका अतिक्रमण करे और असामाजिक काम करे, उसका वीरतापूर्वक प्रतिरोध करना चाहिये।'

समाजके हितमें ही हम सबका, व्यक्ति और परिवारका हित समाया है। अतएव समाजविरोधी प्रवृत्तियोंको सदा ही रोकना उचित है। समाजके हर व्यक्तिको शिक्षा, विकास एवं उन्नति करनेका पूर्ण और समान अवसर मिलना चाहिये।

यः सपत्नो योऽसपत्नो यश्च द्विषन् छपाति नः।
देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरम्॥
(अथर्ववेद १। १९। ४)

अर्थात् 'वह समाजकी तोड़-फोड़ करनेवाला, जो हमारे

ऊँचे नैतिक हितोंको नष्ट करना चाहता है, उसे हम नष्ट कर दें। दुष्ट पुरुषोंसे सदैव आत्मरक्षा करनी चाहिये। बुरे लोगोंको ठीक पहचान न कर पानेसे ही प्रायः लोगोंका अहित होता है। इसलिये भले-बुरेका विवेक सदैव बनाये रहें।'

व्याघ्रं दत्वतां वयं प्रथमं जम्भयामसि।
आ दुष्टेनमथो अहिं यातुधानमथो वृकम्॥
(अथर्ववेद ४। ३। ४)

अर्थात् 'दुष्ट स्वभाववाले हिंसक जन्तुओं-जैसी राक्षसी प्रवृत्तियोंवाले चोर, बदमाशोंको नष्ट करना धर्म है। समाजमें इस प्रकारके लम्पट, चोर, हिंसा, वैर, स्वार्थ-साधनके रोगों और दोषोंका सदैव निवारण करते रहना चाहिये।'

हमारे समाजमें मनुष्यके रूपमें अनेक हिंसक पशु और राक्षस चल-फिर रहे हैं। इनकी बाहरी सूरत तो मनुष्यों-जैसी है, पर अंदरसे ये घिनौनी पशुवृत्तिसे भरे हुए हैं। जैसे बिच्छूकी आदत डंक मारनेकी है तथा साँपका काम डँस लेना है, ऐसे ही ये दुष्ट व्यक्ति समाजके लिये हानिकर हैं। हम इनसे सावधान रहें! बचते रहें!

मनुष्योंके हाथों जो असुरता फैल रही है, वह हमसे दूर रहे। भौतिकताकी चकाचौंधमें आध्यात्मिकता भुला न दी जाय। धर्मको व्यावहारिक बनानेकी आज सर्वाधिक आवश्यकता है। विज्ञान बढ़े, पर मानवीय संस्कार भी कम न हों।

अफवाहोंसे बचिये

अफवाह व्यक्ति तथा समाज दोनोंके ही लिये हानिकारक है। इसका आधार मनुष्यकी कल्पना-शक्तिका गलत दिशामें प्रयोग है। भय एक प्रबल मानसिक आवेग है। यों तो भय सभी प्राणियोंको उद्विग्न करता है, किंतु अफवाहोंके द्वारा मनुष्य अपनी बुद्धिको भयके साथ संयुक्तकर गलत मार्गमें अपनी कल्पनाका प्रयोग कर बैठता है। जो लोग अफवाहें फैलाते हैं, वे आस-पासकी जनतामें गैर-जिम्मेदार बातें कर अशिक्षित और भोली जनतामें आतङ्क और घबराहटका कलुषित वातावरण उत्पन्न कर उसे पथभ्रष्ट करते हैं। जनता प्रायः बिना सोचे-समझे ही भय तथा खतरेकी बातोंमें दिलचस्पी लेने लगती है। भोले-भाले लोग अपनी कल्पना-शक्तिद्वारा भयको दुगुना-चौगुना करके देखते रहते हैं। अफवाहें कभी-कभी तो बड़ा घातक प्रभाव करती हैं। भय बहुत जल्दी

जनताके भीतरी मनमें बैठ जाता है और बार-बार गलत बातें सुनते-सुनते वह मानसिक ग्रन्थिका रूप धारण कर लेता है।

सैनिकोंपर प्रभाव

मनोवैज्ञानिक लेखक प्रो० लालजीरामजी शुक्ल अफवाहोंकी प्रतिक्रियाका वर्णन करते हुए लिखते हैं—'लड़ाईके समय गलत प्रचार या झूठी विषैली अफवाहें सुनकर कुछ सिपाहियोंको लकवा हो जाता है। उनके अङ्गोंमें कोई क्षति नहीं होती, परंतु वे उनको काममें नहीं ला सकते। ऐसे डरपोक व्यक्तियोंके मानसिक अध्ययनसे पता चला है कि वे भीतरी मनसे लड़ाईके भयंकर दृश्यों, मार-काटसे डरते थे; परंतु वे बाहरसे इस डरको स्वीकार नहीं करते थे। अपने साथियोंको बहादुरीकी शान दिखानेकी अभिलाषा उन्हें इस भयको स्वीकार नहीं करने देती थी। ऐसे लोग दूसरे सिपाहियोंके सामने अपनी बहादुरीकी डींग हाँका करते हैं। एक ऐसे ही बहादुरीकी डींग हाँकनेवाले सिपाहीके सामने एक तोपका गोला गिरा और फट गया। इस दृश्यमात्रसे वह बेहोश हो गया। गोलेसे उसको कोई शारीरिक चोट नहीं आयी थी; परंतु भयके फलस्वरूप उसका मुँह खुल गया था। वह फिर इसी अवस्थामें रह गया। उसे भयके कारण खुले मुँहकी अवस्थामें मानसिक लकवा हो गया। जब मानसिक चिकित्सासे उसके गुप्त मनमें छिपे हुए भयका रेचन हुआ, तब उसका मुँह बंद हो गया। इस प्रकार कल्पित भयकी मानसिक ग्रन्थि अनेक प्रकारके असाधारण भय मनुष्यके मनमें उत्पन्न करती है।'

अफवाहें संक्रामक होती हैं

मानसिक विकार संक्रामक अर्थात् छूतसे फैलनेवाले दुष्ट रोगोंके समान सुनने, देखने या कल्पनामात्रसे ही उत्पन्न हो जाते हैं। मान लीजिये कोई पार्टी या वर्ग अपना उल्लू सीधा करना चाहता है। या शत्रु ही किसी देशको डरपोक या कायर बनाना चाहता है, तो वह अपने प्रचारकों, गुप्त एजेन्टों या रेडियोसे ऐसी गलत बातें बार-बार कहने लगता है, जिनका मनुष्यके अचेतन मनपर विषैला प्रभाव पड़ता है। अधिकांश जनता भोली-भाली और अशिक्षित होती है। एक बार गुप्त मनमें भय और आतङ्क बैठ जानेसे जनता अपनी कल्पनाको पतनोन्मुख निर्बलता, पराजय, दुःख तथा कल्पित पीड़ा इत्यादि अशुभ कल्पनाओंकी दिशाओंमें मोड़ने लगती है। ये अशुभ कल्पनाएँ एक व्यक्तिसे दूसरे व्यक्ति, एक परिवारसे दूसरे परिवार, गली-मुहल्लों, स्कूलोंमें फैलती-फैलती पूरे गाँव और शहरोंमें फैलती जाती हैं। अशुभ कल्पना कायरता उत्पन्न कर नागरिकों और युद्धमें कार्य करनेवाले सिपाहियों-तकको बेकार कर देती है। इन अफवाहोंसे शहर-के-शहर खाली हो जाते हैं। मनुष्यका पराक्रम, वीरता, धैर्य, साहस, कार्यक्षमता नष्ट हो जाती है।

इसलिये यह बहुत आवश्यक है कि वर्तमान संकटकालमें हम अफवाहोंसे बचें। न तो हमें अफवाहें सुननेमें दिलचस्पी लेनी चाहिये और न उन्हें फैलानेमें हाथ बँटाना चाहिये। बल्कि आवश्यकता इस बातकी है कि अशुभ कल्पनाओंको जन्म देनेवाली अफवाहोंका

तुरंत निराकरण किया जाय और ऐसे विचारोंको फैलाया जाय जो जनताका साहस बढ़ानेवाले हों और विजयमें उसकी आस्थाको दृढ़ करनेवाले हों। सही विचारोंके प्रचारसे जनताका भय और आशङ्काएँ दूर होंगी और भीषण परिस्थितियोंमें भी वह बिना घबराये शत्रुका सामना कर सकेगी।

अंग्रेजोंकी विजयका कारण

एक सही प्रचारसे एक हारता हुआ देश अपनी पराजयको विजयमें कैसे बदल सकता है, इसका एक प्रत्यक्ष उदाहरण यहाँ उद्धृत किया जाता है। पिछले महायुद्धमें जब डनकर्ककी लड़ाईमें अंग्रेजी सेना जर्मनोंके सामने न ठहर सकी और जब उसे बुरी तरह भागकर इंगलिश चेनल पार करना पड़ा, तो सारे इंग्लिस्तानमें निराशाका वातावरण फैल गया। उस समयतक यूरोपके प्रायः सभी जर्मनविरोधी राष्ट्र हथियार डाल चुके थे। कोई भी सेना जर्मनोंके सामने ठहर नहीं पाती थी। अतएव इस संकटकालमें अंग्रेज बड़ी शोचनीय अवस्थामें पड़ गये थे। यदि अंग्रेजी जनताके विचार उस समय भय और निराशासे मुक्त न किये जाते तथा यदि सामान्य जनतामें आशावादी कल्पनाओंका संचार न किया जाता, तो अंग्रेज हार जाते।

उस संकटकालमें जनताकी कल्पनाओंको विजयके आशावादी विचारोंकी ओर दौड़ाया गया। यह विचार फैलाया गया कि अंग्रेज लोग छोटी-छोटी लड़ाइयोंमें भले ही हार जायँ, परंतु पूरे युद्धमें अवश्य विजयी होते हैं। इस शुभ विचारसे अंग्रेज जातिके शुभ

भयके विचार बदलकर आशावादी बन गये । फलतः अंग्रेजोंने हिटलरके आगे घुटने नहीं टेके । वे डटकर उसका मुकाबला करते रहे । बाहरी परिस्थितियाँ भी उनकी विजयके विचारोंके अनुकूल हो गयीं । जो रूस उनका सबसे बड़ा विरोधी था, वही मित्र बनकर जर्मनीसे लड़ने लगा । इधर अमेरिका भी अपने धन-जनसे उनके साथ हो गया । इस प्रकार कल्पनाके सही प्रयोगसे पराजय विजयमें बदल गयी ।'

जिस बातका आपको पक्का और सही पता नहीं है, उसे कभी स्वीकार मत कीजिये, न दूसरेसे ही कहिये । ऐसी बातें डरपोक दिमागोंकी उपज होती हैं और उनसे राष्ट्रका अहित होता है ।

जो व्यक्ति बड़ी शानसे तिलका ताड़ बनाते हैं या बेसिर-पैरके मनमाने किस्से गढ़ते हैं, उनसे बड़ा सावधान रहिये । इन्हें अफवाहोंमें फँसाकर अपना नेतृत्व करने, उल्लू सीधा करने और भोली अशिक्षित जनताको पथभ्रष्ट करनेमें कुत्सित आनन्द आता है ।

सम्भव है किसी अफवाहमें शत्रुका ही हाथ हो । इसलिये ऐसी खबरें उड़ाने या नाटकीय ढंगसे वर्णन करनेवालोंपर तीखी नजर रखिये ।

युद्धके दिनोंमें जनहितकी बातें ही उपयोगी होती हैं । अतः सदा देशकी विजय और शत्रुकी हारकी ही शुभ कल्पना कीजिये । दूसरेकी अफवाहोंमें विश्वास करनेके स्थानपर सच्चे तथ्य स्वयं ढूँढ़िये ।

अंधविश्वास धर्मके लिये कलङ्क

धर्मके सम्बन्धमें हानिकारक गलत और तर्कहीन बहुत-सी धारणाएँ एक मानसिक बीमारी है। बुद्धिविकासके प्रारम्भिक कालमें जंगली लोग धर्मका तत्त्व नहीं समझते थे। उनकी समझ, चिन्तन, तर्क और मस्तिष्क सब अविकसित थे। तर्क हीन उपायोंसे वे धर्मको तौलते थे। जिस बातसे डरते थे, उसे दूर करनेके लिये जादू-टोने, कुरीतियों और भूतपलीतकी कल्पनाएँ किया करते थे। सिद्ध कहलानेवाले ढोंगी बाबा करामाती छल और अद्भुत चमत्कार दिखाया करते थे। ऐसे धूर्त लोगोंसे धर्मका क्षेत्र बड़ा बदनाम हुआ है और भोली भावुक जनताका बड़ा अहित हुआ है। समझदार पढ़े-लिखे लोग तो प्रायः अन्धविश्वासोंके अशुभ परिणामों-से परिचित हैं और आये दिन समाचारपत्रोंमें ऐसी दुर्घटनाओंका हाल पढ़ते रहते हैं, किंतु पिछड़े हुए लोगोंको इन धूर्तोंसे सावधान रहनेकी बड़ी जरूरत है। घृणित अन्धविश्वास धर्मका कदापि अङ्ग नहीं है। पाखण्डके किलोंको ध्वस्त करना होगा। कुछ ताजे समाचार देखिये, विवेकहीन अन्धविश्वासी लोग क्या-क्या मूर्खताएँ किया करते हैं—

झोपड़ीमें आग लगा दी

गुडगाँव क्षेत्रके पटौली ग्राममें एक महिलाने नौ झोपड़ियोंमें आग लगा दी। न जाने किस धूर्तने उसके मनमें यह अन्धविश्वास जमा दिया कि ऐसा करनेसे उसे संतानकी प्राप्ति हो जायगी। उसने बताया कि इस निस्संतान स्त्रीसे पटरीपर बैठनेवाले किसी

तान्त्रिकने कह दिया था कि यदि वह कम-से-कम छः झोपड़ियोंमें आग लगा देगी, तो उसके बच्चा हो जायगा। अज्ञान और अन्धकारमें फँसी वह मूर्ख स्त्री इसीको सही तरीका मान बैठी और उसने झोपड़ियाँ जला डालीं। बादमें इस महिलाको पंचायतके सामने पेश किया गया। पंचायतने उसपर आग लगानेके अपराधमें एक सौ रुपया जुर्माना किया!

शंकरजीको जीभ भेंट की

रामगढ़ जिलेमें प्राप्त एक समाचारमें बताया गया कि एक व्यक्तिने स्थानीय मन्दिरमें अपनी जीभ काटकर भगवान् शिवके मन्दिरमें चढ़ा दी। इस व्यक्तिके कोई संतान नहीं हो रही थी। अन्तमें उसने शिवजीको जीभ चढ़ाकर पुत्र पानेका आशीर्वाद चाहा। देवी-देवता मनुष्य और पशुओंकी वलि या ऐसे उपहार पाकर प्रसन्न होते हैं, यह एक भ्रान्त धारणा है।

काली माताकी प्रसन्नताके लिये

गाजियाबादके केला मुहल्लामें रहनेवाले एक हरीसिंह नामक व्यक्तिको अपने चार वर्षीय पुत्र वीरेन्द्रको हत्याके अपराधमें आजीवन कारावासका दण्ड दिया गया। इस्तगासाके अनुसार अभियुक्तने अपने पुत्रकी गर्दन छुरेसे काटी और बेटेका रक्त काली माताको भेंट करनेके लिये वह देवीके मन्दिरमें गया। वहाँ अन्य भक्तोंने उसे पकड़कर पुलिसके हवाले कर दिया। देवी-देवताको प्रसन्न करनेके झूठे अन्धविश्वासोंके फन्दोंमें न जाने कितने भोले लोगोंको अपने धन, धर्म, प्राण और शरीरसे हाथ धोना पड़ता है।

देवीसे वरदान मिलनेकी तरकीब

अमृतसरमें कालीमाईको प्रसन्न करनेके लिये एक युवक शरणार्थी करतारचन्दने अपना बलिदान चढ़ानेका निश्चय किया। देवीके सामने युवकने उस्तरेसे अपनी गर्दन काटनेका प्रयत्न किया, परंतु उसे तत्काल अस्पतालमें दाखिल करा दिया गया, जहाँ डाक्टरोंके भारी प्रयत्नसे वह खतरेसे बाहर हो सका। पुलिसका कथन है कि युवकको संदेह था कि उसकी पत्नी बदचलन है। उसकी आदतें सुधारनेके लिये युवकने देवीसे प्रार्थना की और अपनी ही बलि चढ़ानी चाही। ऐसे मूर्खोंको अधर्मी ही कहा जायगा।

देवताको प्रसन्न करनेके लिये नरबलि

चाँदा जिलेकी पुलिसने तीन गोंडोंको एक नरबलिके आरोपमें गिरफ्तार किया था। वे समझते थे कि वर्षा न होनेका कारण यह था कि इन्द्र अप्रसन्न थे और जबतक उन्हें नरबलि न दी जाय, वर्षाकी सम्भावना न थी। वे एक व्यक्तिको बहकाकर घने जंगलोंमें गोंड देवताके सामने ले गये और उसकी विधिवत् पूजा की और फिर उसकी बलि दे दी। उसका रक्त कुछ देवतापर चढ़ाया गया और शेष आपसमें बाँट लिया गया। बड़े ही दुःखका विषय है कि मनुष्य अपनी मूर्खतासे कैसे जघन्य पाप कर बैठता है।

भगवान्‌के दर्शनोंकी लालसामें

आगरामें बाईस वर्षीय व्यक्ति श्रीनिवासने रेणुका गाँवके पास परशुराम-मन्दिरमें मूर्तिके आगे अपनी गर्दन काटकर चढ़ा दी। उसकी इच्छा थी जल्दी-से-जल्दी भगवान्‌के दर्शन स्वर्गमें पहुँचकर हो

जायँगे । श्रीनिवासकी तुरंत मृत्यु हो गयी । एक प्रत्यक्षदर्शीके अनुसार उस युवकने पहले छाती तथा सिरमेंसे खून निकालकर मूर्तिपर छींटें दिये थे । कैसी मूढ़ता है !

अनोखी अग्नि-समाधि

एक ६० वर्षीय साधुके मनमें यह बात जम गयी कि अपने आप अग्निसमाधि लेनेसे मुक्ति होती है । पिपरिया गाँवके निकट एक गाँवमें उसने अग्निसमाधि लेकर प्राण त्याग कर दिये । कहते हैं, पंचमढ़ी सड़कपर एक निर्जन स्थानपर रहनेवाले साधुने दो दिन पूर्व अपने हाथोंसे चिता स्वयं अपनी झोपड़ीके सामने तैयार की और विभिन्न प्रकारकी धार्मिक क्रियाएँ करने एवं भजन-पूजनके पश्चात् उसने चितामें आग लगा दी । जब चिता धू-धू करके तेजीसे जलने लगी, तब वह लपलपाती लपटोंमें कूद पड़ा । थोड़ी देरमें ही उसका शरीर राख हो गया ।

मुक्तिके विषयमें ऐसा भ्रमजंजाल बड़ा अनर्थकारी होता है !

भवानीके दर्शनोंकी लालसाके लिये

खुर्जासे लगभग आठ मील दूर जिहादपुर नामक गाँवके एक व्यक्तिने पिछले दिनों लगातार नौ दिनतक नवरात्रपर्वपर व्रत रक्खा और भवानीका जाप किया । उसे बहुत दिनोंसे यह आशा थी कि भवानी उसे प्रत्यक्ष दर्शन देंगी । बहुत देरतक प्रार्थनाएँ करनेके बाद भी जब भवानीने दर्शन न दिये तो आवेशमें आकर उसने अपनी गरदनमें छुरा भोंक लिया और मर गया । उसके मनमें यह भ्रान्त धारणा भर गयी थी कि भवानी अपने भक्तको अपने प्रकट होकर बचा लेंगी ।

बालककी बलि

इन्दौरके जिला एवं सत्र न्यायाधीश श्रीकालेने चिमली गाँवकी २२ वर्षीया विवाहिताको बाल-हत्याके अपराधमें आजन्म कारावासकी सजा दी है। कहते हैं कि उक्त महिलाने अपने एक वर्षीय बच्चेकी शुभ कामनाओंके लिये दूसरेके दस वर्षीय बालककी हत्या कर दी थी। उसके मनमें किसीने यह अन्धविश्वास जमा दिया था कि तेरा बच्चा जीवित तभी रहेगा, जब तू किसी बच्चेको मारकर उसके बालोंकी भस्मको पानीमें डालकर पीयेगी। इससे पहले उसके दो बच्चोंकी मृत्यु हो गयी थी।

ऐसे अन्धविश्वासोंसे पश्चात्तापके अतिरिक्त और क्या मिल सकता है? ये अन्धविश्वास हमारी अल्पज्ञता और मूर्खताके उदाहरण हैं। धर्मकी आड़ लेकर इस प्रकारके सैकड़ों दुष्परिणाम प्रतिदिन होते रहते हैं। ऐसी गलत, भ्रान्त एवं हानिकारक मान्यताओंको कदापि धर्मका नाम नहीं देना चाहिये। टोना-टटका, जादू इत्यादि प्रायः जनताको ठगने और बहकावेमें डालनेके स्वार्थपूर्ण उपाय हैं। प्रत्यक्ष तथा परोक्ष दोनों ही रूपोंमें ये हानिकारक और त्याज्य हैं। हमें सदा अपनी बुद्धि-तर्क और वास्तविकताकी कसौटीपर हर तथ्यको कसना चाहिये और हर असत्य तथा हानिकारक दूषित प्रथा, भ्रान्त धारणा और बुरी मान्यताका साहसपूर्वक तिरस्कार और विरोध करना चाहिये।

आयुमें बड़े होकर भी क्या आप मनसे बच्चे तो नहीं हैं !

बच्चोंके आचरणको हम सहानुभूति और प्रेमकी दृष्टिसे देखते हैं। वे बातचीत, रहन-सहन, आचार-व्यवहार, दुःख और पीड़ाके आगमनपर तनिक-सी देरमें विचलित हो उठते हैं। तनिक-सी कठिनाई उन्हें विचलित कर देती है। काल्पनिक दुःखों-से वे एकाएक परेशान हो उठते हैं। भूख लगनेपर व्याकुल हो रो पड़ते हैं। कोई खिलौना टूट जाय, कोई बुरा स्वप्न दीख जाय, कहीं अँधेरेमें रहना पड़े, तो वे बुरी तरह घबड़ा जाते हैं। माँ-बाप, भाई-बहिनसे अलग अकेला रहना पड़े, तो मुर्झा जाते हैं। रोते-चीखते हैं। तनिक-तनिक-सी बातोंपर झगड़ते हैं। छोटा-सा खिलौना, थोड़ी-सी मिठाई, दो-चार पैसे पानेपर शानसे मुसकराते हैं। रंग-बिरंगे वस्त्रोंमें उन्हें बेहद दिलचस्पी रहती है।

क्षण-क्षण उनकी विचारशक्ति, उनके सोचनेके तरीके, उनके शौक और रुचियाँ बदलती रहती हैं। आज कुछ कहते हैं, तो कलको नयी बातके लिये जिद करते हैं।

वे इतने भावुक होते हैं कि तनिक-सी बातपर हर्ष, उद्वेग, क्रोध, उत्तेजना, ईर्ष्या, द्वेष, लोभसे प्रभावित हो जाते हैं ।

क्या बच्चोंमें पाये जानेवाले ये दुर्गुण आपमें भी विद्यमान हैं ? आपका शरीर प्रौढ हो गया है, मुँहपर दाढ़ी-मूँछें उग आयी हैं, पर क्या आप मनसे अभीतक बच्चे ही बने हुए हैं ?

क्या आप तनिक-सा विरोध या कठिनाई पड़नेसे निराश हो उठते हैं ? क्या बच्चोंकी तरह आपके हर्ष-विषाद तरंगोंकी भाँति उठते और गिरते रहते हैं ? क्या आप कल्पनाके दूषित प्रयोगद्वारा तिलको ताड़ बनाकर देखते हैं ? अति भावुकता एक भयानक दुर्गुण है । बच्चे भावनाकी तरंगोंपर तैरते हैं । आपको स्थिर बुद्धिसे कार्य लेना चाहिये । आपको संकल्पोंमें दृढ रहना चाहिये ।

अपने मानसिक विकासकी अवस्थाके अनुसार कार्य करना चाहिये ।

अब आप विकसित हो गये हैं । आपके शरीरके विकासके साथ मनका भी उसी अनुपातमें विकास हो जाना चाहिये । भावनाके स्थानपर अपनी विचारशक्ति और विवेकसे काम लिया कीजिये । उद्वेगों और अपनी उत्तेजनाओंपर पूर्ण नियन्त्रण रखिये । छोटे-छोटे कष्टोंसे उद्विग्न होना आपके बचपनकी निशानी है ।

बालक बिस्फोटककी तरह तनिक-सी बातमें उत्तेजित हो उठता है, आप शान्त और पूर्ण संयत रहा करें । अपने आवेशों-को वशमें रक्खें । मनको सदा शान्त और संतुलित अवस्थामें रखा करें । ठंडे दिल और दृढ हाथोंसे कार्य किया करें ।

बालक अरुचिकर कठोर कामोंसे दूर भागता है । आप कठिन कार्योंको पहले करें । कठोर और कठिन बातोंका हल निकालना विकसित मस्तिष्कवाले व्यक्तिका कार्य है । आप निर्दय, निर्मम और क्रूर जगत्का शान्ति और निर्भयतासे सामना करना सीखें ।

विकसित व्यक्तिकी दो शक्तियाँ महत्त्वपूर्ण होती हैं—विवेक और बौद्धिक क्षमता । इन गुणोंसे आपको जीवनभर काम लेना है । ये गुण आपको परिस्थितियोंपर काबू पाना सिखायेंगे । इन गुणोंकी अधिकाधिक वृद्धि करते चलिये ।

आप यशस्वी हैं । बल और तेजके पुंज हैं । इन्द्रके समान सदा विजयी और यशस्वी रहनेवाले हैं । अकेले दस सहस्रके तुल्य हैं । आपकी आत्मा दस सहस्रकी वर्चस्विता रखती है ।

अपनेको बालक मत मानिये । विकसित मानवकी पारिवारिक, सामाजिक और नैतिक जिम्मेदारियाँ सँभालनेके लिये तैयार रहिये ।

बच्चोंकी तरह बनाव-शृङ्गार, टीप-टाप, नाच-रंग, जिह्वाके क्षणिक स्वाद आदिमें ही मत लगिये, वरं सादा जीवन और उच्च विचार रखिये ।

आप पूर्ण उत्तरदायित्व सँभालने योग्य आत्मविश्वासी नागरिक हैं ।

उन्नतिकी गुप्त साधना

प्रत्येक मनुष्यमें स्वभावके दो अङ्ग होते हैं—मस्तिष्कका एक हिस्सा आरामतलब, मस्त, कामचोर और अवनतिकी ओर ढकेलनेवाला होता है; किंतु एक दूसरा भाग वह है, जो उसे उन्नति, जागृति, स्थायी लाभ और श्रेष्ठताकी ओर प्रेरित करता है। इसे हम मानवकी अन्तरात्मा भी कह सकते हैं। ये दोनों भाग बारी-बारीसे मनुष्यपर अपना अधिकार जमाना चाहते हैं। इनके फलोंका निर्णय बुद्धि अथवा विवेक करता है, जिसमें विवेक जाग्रत

रहता है, वह कठिनाइयों और विरोधी परिस्थितियोंमें रहकर कीचड़के कमलकी भाँति उन्नतिके समृद्धिशाली गौरवपूर्ण मार्गकी ओर चल पड़ता है। जिसमें कुबुद्धि या कुमति जोर मारती है, वह अच्छी परिस्थितियोंमें रहकर भी पतनकी ओर गिरता है! पतनका मार्ग ढालू होनेसे जहाँ एक बार फिसला कि फिसला! गिरता ही जाता है। जो उन्नतिकी ओर चलता है, समाजकी दृष्टिमें वह आदर्श मान लिया जाता है। उसीको लोग याद रखते हैं, उसके माता-पिता, परिवार, प्रारम्भिक स्थितिको किंचित् भी स्मरण नहीं रखते।

कोई भी व्यक्ति अपने परिवारकी पुरानी समृद्धि, यश, गौरव, अमीरीसे अधिक दिन यशस्वी या गौरवपूर्ण जीवन व्यतीत नहीं कर सकता। प्रसिद्धिके तत्त्व मनुष्यमें हैं। उसके अपने निजी चरित्रमें, आदतोंमें, स्वभाव और कार्यपद्धतिमें निहित हैं। मनुष्यका हर दिशामें अपना-अपना निजी महत्त्व है। कार्य करनेका अपना पृथक् मौलिक ढंग है। यही उसकी विशेषता है। अपनी इसी मौलिकताके बलपर लोगोंने संसारको चकित किया है।

ऐसे असंख्य प्रसिद्ध और बड़े आदमी हुए हैं, जो पहले निकम्मी हालतमें थे, किंतु उनमें अचानक अपनी विशेषता, ईश्वरीय देन और छिपे हुए गुणोंका ज्ञान हुआ; उनमें एक तरहकी अभिनव जागृति उत्पन्न हुई और उन्होंने आश्चर्यजनक कार्य कर दिखाये।

यह नियम आप तब समझेंगे, जब आप भी अपनी विशेषताएँ और गुण मालूम करेंगे। यह पहचानते ही आपका

जीवनचक्र पलट जायगा। इसलिये आप निराश न हों, आलसी न बनें, बस, यह देखें कि आपके विचार किधर जा रहे हैं ? मन क्या कहता है ? आदतें कैसी हैं ? आप नशेबाजी या कुसंगतिमें तो नहीं पड़ गये हैं ? आप उन्नतिकी ओर जा रहे हैं या अवनतिकी ओर ?

स्मरण रखिये, आपमें ईश्वरकी बड़ी शक्ति भरी हुई है। मन, आत्मा और शरीर सर्वत्र अद्भुत गुप्त शक्तियोंके खजाने हैं। आप कभी अविकसित दशामें पड़े हुए हैं और दिनोंको धक्का दे रहे हैं। जीवनको व्यर्थ, थोथा और निष्प्रयोजन समझ रहे हैं। पर आपका जन्म बड़े, बहुत महत्त्वपूर्ण व्यक्ति बननेके लिये हुआ है। राज्य करनेके लिये आये हैं। कुछ बड़ा उद्देश्य आपमें निहित है।

मनुष्य जो कुछ दृढ़ संकल्प कर ले वही कर सकता है। प्रत्येक मजबूत संकल्प बड़ी भारी शक्ति रखता है। दुःख यह है कि वह दृढ़तापूर्वक चाहता हो नहीं। न चाहे, तो कुछ भी नहीं कर पाता। अतः इससे स्पष्ट है कि पहले आपमें अपने लक्ष्यको प्राप्त करनेकी दृढ़, उग्र, दुर्दमनीय इच्छा होनी चाहिये।

प्रायः लोग वही करते हैं, जो उनके पुरखे या बुजुर्ग किया करते थे। वे नयी बात ही नहीं सोचते। उसी वातावरणमें बने रहते हैं। उन्नतिकी किसी नयी दिशाकी ओर उनका दिमाग ही नहीं दौड़ता। बुद्धि नवीन दिशाओंमें नहीं चलती। उनकी कल्पना उर्वरा नहीं होती। इस प्रकार वे लकीरके फ़कीर बने रहते हैं। उस पुश्तैनी कार्यकी उन्हें जन्मसे ही टेव पड़ जाती है। वे लोग

समझते हैं कि अच्छे भाग्यका अवसर उसी पेशे, व्यवसाय, कार्य, नौकरीमें आयेगा। परंतु अनेक बार लोगोंने नयी ओर चलकर आश्चर्यजनक उन्नतियाँ की हैं। बात नयी तरह सोचने-विचारने और कल्पना करनेकी है। दुनियाको देखो, समाजकी गतिविधिका विश्लेषण करो, लोगोंकी मनोवृत्तियोंको नापो-तोलो, स्वभाव और वृत्तियोंका मन्थन करो, नयी दिशाकी ओर आँखें लगाओ। निश्चय जानो, अभी बहुत-सा नया काम करने और विशेषतः आपके हाथों होनेको शेष पड़ा है। नये व्यापार, नये आविष्कार, नयी उन्नति सब आपके भाग्यमें हैं। नयी ओर सोचकर उन्नतिकी दिशा मालूम करनेवालेके लिये, साहसी, उत्साही और आत्मविश्वासीके लिये, दृढ़निश्चयीके लिये जीवनका प्रत्येक क्षण उन्नतिका एक सुअवसर है!

कई लोग समझते हैं कि जीवनमें उन्नतिका सुअवसर केवल एक बार ही आता है। मेरे एक मित्र एक इन्टरव्यूमें असफल रहे, एक दूसरे सज्जनका नम्बर ग्यारहवाँ था, जब कि ऊँची नौकरीमें केवल दस ही व्यक्ति लिये जाने थे। ये दोनों व्यक्ति आज टूटे-फूटे मन लिये (फ्रस्ट्रेड) पड़े हैं। कहते हैं—'क्या बतायें, हमारा तो दिल ही टूट गया। जीवनकी सारी आशाएँ ही नष्ट हो गयीं। अब भविष्यमें क्या होना-जाना है? हमारा जीवन तो बस समाप्त हो गया। हमारे लिये तो दुनिया बेकार है।' ऐसे निराश आदमियोंको हम बताना चाहते हैं कि जीवनमें उतार-चढ़ाव पग-पगपर आते हैं। कड़ुवे घूँट तो जीवनमें पीने ही पड़ते हैं।

जीवनके रास्तेपर पाँवमें काँटे अवश्य ही चुभते हैं, पर उन्नति और प्रगतिके अवसर एक नहीं, अनेक आते रहते हैं। कई बार आते हैं। भिन्न-भिन्न रूपों और व्यक्तियोंके माध्यमसे आते हैं, परंतु उनका उपयोग या उपेक्षा हमारी बुद्धि और अधिकारकी बात है। प्रायः जैसा उनका उपयोग होना चाहिये था, वैसा नहीं होता। हमें प्रतिदिन, प्रतिमास, प्रतिवर्ष अपने जीवन और समाजके उतार-चढ़ावका सूक्ष्म निरीक्षण करते रहना चाहिये कि हम व्यापारिक, मानसिक, बौद्धिक, आर्थिक, सामाजिक, नैतिक और धार्मिक क्षेत्रोंमें आगे बढ़ रहे हैं या पीछे हट रहे हैं अथवा जहाँ-के-तहाँ बने हुए हैं।

मुख्य बात याद रखिये—कठिनाइयोंसे कभी मत डरिये। उन्नतिके रास्तेमें पद-पदपर कष्ट है। आपको स्वयं अपना पथ बनाना है। मार्गके कंकड़-पत्थर और काँटे स्वयं दूर करने हैं। कठिनाइयोंसे आपको उत्तरोत्तर और निरन्तर आगे बढ़नेका साहस और स्फूर्ति मिलनी चाहिये। आपका आत्मबल दृढ़ होना चाहिये। कठिनाई ही जीवनका सबसे बड़ा शिक्षक है। जैसे, पहलवान प्रतिदिन प्रतिपक्षीसे कुश्ती लड़कर, बार-बार पटखनी खा, धूलधूसरित हो, पसीनेमें तरबतर होकर निरन्तर थोड़ी-थोड़ी शारीरिक शक्ति बढ़ाता है और सबल बनता है, उसी प्रकार प्रत्येक कठिनाई हमें किसी-न-किसी प्रकार दृढ़ और बली बनाती है, बशर्ते कि हम उससे हार न मानें। गिर जायें, तो धूल झाड़कर फिर खड़े हो जायँ। जो हर बार कठिनाईसे एक कुश्ती और

लड़नेके लिये तैयार हो जाता है, उसमें उन्नतिके कई अच्छे गुण हैं, जैसे उत्साह, उद्योग और जीतनेकी नयी आशा ! उत्साही और आत्मविश्वासी कठिनाइयोंको अन्ततः पराजित करके ही दम लेता है।

एक विचारकके ये बहुमूल्य शब्द काँचमें मँढ़वाकर रखने योग्य हैं—'संसारमें संकट असम्भाव्य नहीं है, बल्कि आवश्यक है। अवश्य ही आनेवाला है। अनुत्तरदायी और डरपोक व्यक्तियोंसे जन्मी हुई आपत्तियाँ इस दुनियामें भरी पड़ी हैं। कमजोरको दबानेके लिये उनमेंसे कोई भी किसी समय आ सकती है। अपनी ओरसे आपत्तिको जन्म न देना और परप्रेरित संकटसे टक्कर लेना मनुष्यताका एक उदात्त लक्षण है। संसारमें बड़े संकटोंसे टक्कर लेनेके लिये मनुष्यको हर समय तैयार रहना चाहिये। क्या अच्छे और क्या बुरे, संकट हर मनुष्यपर आ सकते हैं; किंतु जिसके पास चरित्रका बल है, विचारोंका तेज है और आत्मिक आलोक है, वह संकटकालमें उसी प्रकार हँसते हुए बाहर निकल आयेगा, जैसे ग्रहणसे मुक्त होकर पूर्णिमाका चन्द्रमा।

जो चरित्रका दुर्बल है, दीन-हीन-डरपोक है, कायर और कलुषित है, उसे आत्महत्यारा कहना चाहिये। वह कठिनाई और संकटका एक हल्का झोंका लगते ही टूटे हुए तारेकी भाँति टूटकर गिर पड़ेगा।

कठिनाइयोंसे लाभ भी होता है

कठिनाई हमें मजबूत बनाती है

जैसे पहलवान दंगलमें पटखनी खा-खाकर मजबूत होता है और शारीरिक शक्ति प्राप्त करता है, वैसे ही जीवनरूपी दंगलमें मनुष्य कठिनाइयोंसे जूझ-जूझकर शक्तिशाली बनता है। अपना आत्मबल बढ़ाता है। यह विकसित आत्मबल समस्त विजयों-का मूल है।

आपको कठिनाइयोंका स्वागत करना चाहिये। अपने आत्म-बलसे उनपर विजय प्राप्त करनी चाहिये। प्रत्येक कठिनाईपर विजय आपके धैर्य और साहसको बढ़ानेवाली है।

कैसी भी कठिनाई आये, उसका सामना करनेके लिये आपको प्रस्तुत रहना चाहिये। ज्यों-ज्यों आप कठिनाइयाँ झेलेंगे, आपकी उन्नतिका मार्ग सरल होता जायगा। कठिनाई हमें शक्तिशाली बनाती है।

आप उन्नतिके अभिलाषी हैं और उसका मूल्य है 'कठिनाई'—यदि यह मूल्य आप दे सकते हैं तो उन्नति और सफलता पानेमें देर नहीं है; क्योंकि वस्तु उसीको मिलती है जो उसका पूरा मूल्य देता है। जो मनुष्य सही तरीकेका मूल्य परिश्रमके रूपमें दे सकता है उसकी कार्य-सिद्धिकी आशंका नहीं है।

कठिनाइयाँ हमारा आत्मबल बढ़ाती हैं

आप चाहे किसी दशामें हों, सदैव आत्मबल लगाकर आगे बढ़नेका प्रयत्न करते रहिये। कठिनाइयों और विपत्तियोंसे घबरा न जाइये। जब आप इनपर विजय प्राप्त करेंगे तो आपको अपना बढ़ता हुआ पौरुष और साहस देखकर बड़ा आनन्द मिलेगा। यह मत समझिये कि अमुक कार्यसे या अमुक कठिनाईसे अथवा विपत्तिसे हमारा कुछ लाभ नहीं होता। कठिनाईको बोझ या विपत्ति समझना आपका भ्रम है; मिथ्या कायरता और डरपोकपन है जो आपको अवनतिके गड्ढेमें ढकेल रहा है। कष्टोंऔर विपत्तियोंसे युद्ध कर उनके विरुद्ध डटे रहनेसे आपकी आत्मिक और नैतिक उन्नति होगी। आप जीवनकी साधारण अवस्थासे ऊपर उठ जायँगे और संसार आपका सम्मान करेगा।

कठिनाइयोंसे न डरनेवाले वीर

आपको राजकुमार गौतमबुद्धपर आनेवाली कठिनाइयोंका ज्ञान है। उन्होंने पर्वतोंकी गुफाओंमें बैठकर भारी तप किया। उनके सामने सैकड़ों विपत्तियाँ आयीं। शरीर सूख गया, हिंसक जन्तुओंने आक्रमण किया, सर्दी-गरमी-आँधी इत्यादिके सैकड़ों कष्ट सहे, पर वे अपने सात्त्विक संकल्पपर डटे रहे।

जैसे पर्वतसे निकला हुआ पानीका झरना सामनेकी शिलाओं और पत्थरोंको तोड़ता-फोड़ता आखिर अपना मार्ग बना ही लेता है, उसी प्रकार दृढ़ इच्छाशक्तिवाला साहसी पुरुष सब प्रकारकी विघ्न-बाधाओंको हटाकर अन्तमें सफलताकी सीमातक पहुँच ही जाता है।

महाराणा प्रतापसिंहका जीवन कठिनाइयोंसे निरन्तर युद्ध करनेवाले साहसीका उदाहरण है। स्वतन्त्रताके लिये युद्ध, बिना किसी सुख-सुविधाके विरोधियोंसे संघर्ष लेना, अपने उच्च लक्ष्यकी ओर निरन्तर आगे ही बढ़ते जाना प्रतापके जीवनसे स्पष्ट होता है। आप भी आधुनिक प्रताप ही हैं।

छोटी-सी उम्रमें ही मुगल सम्राट् उनके भयानक शत्रु हो गये थे। चारों ओर उनके विरोधी भरे थे। रुपयेके लालची उनके प्राणोंके प्यासे हो रहे थे। स्वयं उनके आत्मीयतक मुसल्मान शासकोंके हाथोंमें थे। मुट्ठीभर स्वदेश-भक्तोंके अतिरिक्त कोई उनका साथी न था। केवल आत्मबल और साहस उनके पास था। उसीका सहारा लेकर उन्होंने स्वतन्त्रताका बिगुल बजाया था। प्रतापके जीवनकी अभिलाषा थी—चित्तौड़का उद्धार। तनिक कल्पना कीजिये, बिना किसी बड़े सहारेके अपने बाहुबलपर भरोसा करके वे मुगल सैन्यरूपी समुद्रमें कूदे थे। भूखे-प्यासे वे जंगलों-जंगलों खाक छानते फिरे। उनके बच्चे और धर्मपत्नी भोजन और निवास तकके लिये बुरी तरह तरसते, विक्षुब्ध, उद्विग्न होते और कठिनाइयाँ झेलते रहे। अन्ततः उनकी सेना पराजित हुई थी, पर उन्होंने कभी अपने साहसका संबल न छोड़ा था। वे कभी हतोत्साह न हुए थे। वे कठिनाईको फूँकसे उड़ जानेवाला रूईका पहाड़ कहा करते थे। आपमें भी वही साहस, वही धैर्य और उत्तरोत्तर कर्तव्यके प्रति जागरूकता होनी चाहिये।

वीरवर पुरु

सिकन्दर संसारको विजय करनेका स्वप्न देखता था। उसने साहसपूर्वक सैंकड़ों कठिनाइयाँ पार की थीं। वह एक पराये देशसे भारतको लूटने और अपने अधीन करनेके लिये आ रहा था। उसकी सेना बड़ी सुदक्ष थी। उसके पास नयी-से-नयी उत्तम युद्ध-सामग्री थी। उसने पंजावके कई प्रदेशोंको तो जीत लिया था, पर एक ऐसे भारतीय योद्धासे उसका सामना हुआ, जो भारतका सिरमौर है। आज भी वह वीरतामें पूज्य है। वह झेलमके पास एक छोटी-सी रियासतका राजा था, उसका नाम पुरु था। अपनी छोटी-सी शक्तिसे उसने सिकन्दरका सामना किया था और उसकी नाकमें दम कर दिया था। बड़ा घोर युद्ध हुआ था। इसमें पुरुकी भी बड़ी भारी हानि हुई थी, पर उसने देशकी स्वतन्त्रताकी रक्षाके लिये अपने प्राणोंकी आहुति देने तककी परवा नहीं की। दुर्भाग्यसे वीर पुरु गिरफ्तार हो गया, पर वह साहसकी जीवित प्रतिमा था।

सिकन्दरने कैदी पुरुसे पूछा—'बन्दी, तुम्हारे साथ कैसा व्यवहार किया जाय ?'

वीर पुरु कठिनाइयोंसे घबरानेवाला व्यक्ति नहीं था। वह शत्रुके मध्य भी वीर केसरी-सा निर्भय खड़ा था। उसने वीरतासे उत्तर दिया, 'वैसा ही व्यवहार करो, जैसा एक राजा दूसरे राजाके साथ करता है। भारतीय वीर कठिनाईसे नहीं डरता।'

इस वीरतासे भरे उत्तरको सुनकर सब चकरा गये। सिकन्दर भी अचरजमें पड़ गया।

भारतीय वीर पुरुष कभी कठिनाइयोंसे नहीं घबराये। आपमें उन्हीं वीरोंका रक्त है, वे ही वीरोचित भावनाएँ हैं, वे ही शौर्यकी प्रशस्त परम्पराएँ हैं।

जीवनके सब मोर्चोंपर आगे बढ़ें

आप चाहे किसी दशामें रहें, किसी-न-किसी क्षेत्रमें आगे बढ़नेकी गुंजाइश अवश्य है। मनुष्य-जीवनके चार पहलू हैं—पारिवारिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक। आप सावधानीसे इन चारों पहलुओंपर विचार कर देखें कि आप कहाँ हैं? किस स्थितिमें और कितने अंशोंमें पिछड़े हुए हैं। फिर वहींसे आगे बढ़नेकी कोशिश कीजिये। आपके पारिवारिक जीवन, पत्नी, बच्चों, सगे-सम्बन्धियोंकी उन्नति कैसे हो? किन-किन व्यक्तियोंके द्वारा हो? आपको मित्र, परिचित तथा समाजमें ऊँचा सम्माननीय स्थान कैसे प्राप्त हो? मनोरंजन, कला, संगीत, भ्रमण आदि सांस्कृतिक दृष्टिसे कैसे आगे बढ़ें? नैतिक, धार्मिक और आध्यात्मिक जगत्‌में कैसे उन्नति हो? ये सभी अङ्ग समान रूपसे उन्नतिके लिये खुले पड़े हैं। आप इनकी कठिनाइयोंको हल करें। उनमें समान रूपसे रस लें। सभीमें निरन्तर आगे बढ़नेका यत्न करें। आप पायेंगे कि आपका जीवन कितना भव्य और विशाल हो जायगा।

आपको हर कठिनाईपर विजय एक आनन्द देगी। विपत्तिसे लाभ उठानेकी कला सीखिये। आप स्वयं ही अपनी स्थितिपर नहीं सोचते और इसलिये निश्चेष्ट पड़े रहते हैं। यदि अपनी कमजोरी देखकर आगे बढ़नेका सच्चा प्रयत्न करें, तो निश्चय ही उन्नति हो सकती है।

कोशिश करनेवाले चोटीपर जा पहुँचते हैं

याद रखिये, तेजीसे और सच्चे परिश्रमसे चलनेवाले साहसी उन्नतिके अभिलाषी पुरुष चोटीपर पहुँच जाते हैं, किंतु आलसी और डरपोक वहीं-के-वहीं पड़े रह जाते हैं। कोशिश न करनेवाले, अपनी दृष्टि चारों ओर न दौड़ानेवाले मूर्ख सदा सड़ते ही रहते हैं। मजबूती तो जिम्मेदारीके कामोंको करनेसे ही आती है। जो जितनी बड़ी जिम्मेदारी सँभालता है, वह उतना ही ऊँचा उठता है और यश-प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। महान् व्यक्ति नयी कठोर जिम्मेदारियों-से कभी भी नहीं डरे हैं। महान् होनेके लिये ऊँचे विचार, नयी योजनाएँ और सतत उद्योगकी आवश्यकता है। ये वे तत्त्व हैं, जो प्रत्येक बड़े आदमीने काममें लिये हैं।

वे सदा अपनी योग्यतापर विश्वास करते रहे। अपने दायित्वको समझते रहे। वे अपने कामको पूरी लगनसे करते थे। उनका यह आत्मविश्वास ही उनकी सिद्धिकी जड़ है। जिन्हें आरम्भमें अपने कार्यमें अविश्वास और शंका हो जाती है, जो व्यर्थकी विघ्न-बाधाओं और कठिनाइयोंकी शंकाएँ और कुकल्पनाएँ गुप्त मनमें बसाये रहते हैं, उनके बड़े काम कभी शुरू ही नहीं हो पाते। जो लोग बड़े-बड़े पदोंपर पहुँचते हैं, उन्हें पहले बड़ी विपत्तियों, विरोधों और कष्टोंका सामना करना पड़ता है। अनेक आविष्कारक जीवनभर अपने तत्त्वों और खोजमें लगे हुए गूढ़ परिश्रमसे नये-नये प्रयोग करते रहे। काम पूरा न हो सका और वे संसारसे चल बसे। कुछकी, उनके साथियोंने हँसी उड़ायी," उन्हें

कष्ट पहुँचाया, उनके प्रयोगोंमें अनेक बाधाएँ डालीं, यहाँतक कि उनके जीवनकी मामूली आवश्यकताएँ भी पूरी नहीं हो सकीं; पर वे अपने काममें सदा-सर्वदा दत्त-चित्त पूर्ण शक्तिसे लगे रहे, डटे रहे और दृढ़तापूर्वक थोड़ी-थोड़ी सफलताएँ पानेमें लगे रहे। अन्तमें यश-प्रतिष्ठा प्राप्त की। उनकी बदौलत दूसरे हजारों मनुष्य मालामाल हो गये।

परिश्रमकी पूँजी उन्नति कराती है

प्रत्येक मनुष्य कुछ-न-कुछ करना चाहता है, किंतु उसे करनेके लिये यथोचित मात्रामें परिश्रम और कठिनाइयाँ सहन नहीं करना चाहता। वह कार्यमें पूरा मन लगाकर उसे पूर्ण करनेका प्रयत्न नहीं करता। यों कहिये कि वह बबूल बोकर आम काटना चाहता है। अवश्य ही ऐसे मिथ्या स्वप्नदर्शी लोग असफल होते हैं और भाग्यको अथवा ईश्वरको दोष देते हैं!

यदि मनुष्य दृढ़ निश्चय करके तन-मनसे अपने ध्येयकी पूर्तिमें लग जाय तो वह उसे अवश्य पूरा कर सकता है। जिसने अपना काम करनेकी मनमें ठान ली है, वह विघ्न-बाधाओंकी कुछ परवा नहीं करता। वह समझता ही नहीं कि विघ्न-बाधाएँ क्या चीज हैं। उन्नतिके मार्गमें कठिनाइयाँ उसी अस्थिर और कायरको होती हैं जिसका मन टिका नहीं होता। दृढ़ निश्चयके सामने कठिनाइयाँ पलायन कर जाती हैं। वे उन्नतिके अभिलाषीको मार्ग-प्रदर्शनका काम देती हैं।

तूफानोंका सामना भी करना होगा

कभी यह मत सोचो कि आपकी जीवन-नौका सदा सुरक्षित और स्थिर चलती रहेगी। खराब मार्ग भी आयेंगे। काँटे, कंकड़, पत्थर भी चुभेंगे। आँधी-तूफान भी उठेंगे। कष्टोंकी टक्करें भी लगेंगी। वास्तवमें ये सब आपके धैर्यकी परीक्षाके लिये आती हैं। सावधान! भीड़का धक्का आपको धकेल न दे।

उन्नतिके मार्गमें भय और शंकाएँ ऐसे मानसिक विकार हैं, जो मनुष्यको एकदम पीछे रोक लेते हैं। भय चुपके-से आकर कहता है, 'ऐसा काम मत करो, अन्यथा खराब हो जायगा। सारा पुरुषार्थ निष्फल जायगा।'

इस शंकाके कारण हम ठीक-ठीक अपने कर्त्तव्यको करनेके बदले उसे खो बैठते हैं। मनकी दुविधा और संदेह-वृत्तिसे हम अपने चारों ओर ऐसी दीवारें खड़ी कर लेते हैं, जिनसे बाहर निकलने-का हमें द्वार ही नहीं मिलता। इस अधम दुरवस्थामें हम कभी उन्नति नहीं कर सकते।

कोई भी उन्नति और बड़ा काम करनेके लिये हमें साहस, दृढ़निश्चय और निर्भयताकी बड़ी आवश्यकता है। अपने सोये हुए पुरुषार्थको जगानेके लिये प्राचीन कालमें गुरु शिष्यके कानमें कहा करते थे—'तत्त्वमसि' तू ब्रह्मस्वरूप है। इसी मन्त्रको आप गुप्त मनमें जमाइये। पूर्ण आत्म-विश्वाससे कहिये—

'मैं ब्रह्मस्वरूप हूँ। मैं ईश्वरका शक्तिशाली पुत्र हूँ। अपना उच्च स्थान लेकर रहूँगा।'

स्वभावका छुईमुईपन जीवनके लिये अत्यन्त हानिकारक है

अंग्रेजीके महाकवि कीट्सकी मृत्यु केवल २७ वर्षकी उभड़ती जवानीमें हो गयी। उन्हें कोई खास बीमारी नहीं थी। मृत्युकी परिस्थितियाँ कुछ इस प्रकार थीं।

कीट्स अच्छे कुशल कवि थे। वे ललित कविताएँ लिखा करते थे। सभी मुक्तकण्ठसे उनकी कविताएँ पसंद करते थे। काव्य-जगत्में उनकी सम्माननीय स्थिति थी।

एक बार संयोगसे उनके विरुद्ध एक ध्वंसात्मक लेख एक आलोचनात्मक पत्रिकामें छपा। यह व्यक्तिगत द्वेष और ईर्ष्यावश लिखा गया था। इसमें झूठे ही उनपर कीचड़ उछाली गयी थी। पुरानी शत्रुता निकालने और बदनाम करनेके लिये व्यर्थ ही निराधार आरोप लगाये गये थे। कीट्सने इस निन्दाको पढ़ा और उनके भावुक मनपर इसका घातक प्रभाव पड़ा। उन्हें भयानक मानसिक आघात लगा। वे उसी मानसिक पीड़ासे बीमार पड़ गये और क्षयग्रस्त हो जवानीमें ही मृत्युको प्राप्त हुए।

कल्पना कीजिये, जिस चढ़ते यौवनमें लोग विवाह करके जीवन-क्षेत्रमें प्रविष्ट होते हैं, उसीमें स्वभावके छुईमुईपनके कारण बेचारा भावुक कवि मर गया! इतना छोटा-सा कारण, बेबुनियाद निन्दा और कविकी निर्बलता यह कि वह उसीको सत्य मानकर मन-ही-मन परेशान और उद्विग्न! और फिर उसी आघातसे

मृत्यु ! स्पष्ट है कविमें निन्दाको सहन करनेकी शक्ति न थी ! वे संसारकी आसुरी शक्तिसे अपनी रक्षा नहीं कर सकते थे । वे यह नहीं जानते थे कि मनका छुईमुईपन मृत्युका एक कारण बन सकता है। भावुकताकी अधिकता भी मौतके मुँहमें धकेल सकती है !

राजा दशरथ अति-वियोग-दुःखसे स्वर्गवासी हुए

जब मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम वनवास जा रहे थे, पूरी अयोध्या शोकसंतप्त थी । नागरिक सौ-सौ आँसू रो रहे थे । कई तो दुःखके कारण मूर्छित होकर गिर पड़े थे। राजमहलमें माताएँ करुण-विलाप कर रही थीं, परिवारके सब सदस्य शोकसंतप्त होकर अश्रुपात कर रहे थे ।

स्त्री पुरुषकी अपेक्षा अधिक कोमलहृदया होती है । साधारण-सी बातका उसपर दूषित प्रभाव पड़ता है। यह सहज स्वाभाविक था कि श्रीरामकी माता कौसल्याजीपर पुत्रवियोगका अधिक प्रभाव होता । उनका एकमात्र पुत्र उन्हें बिलखता छोड़ पूरी जवानीमें वन-वनकी खाक छाननेके लिये अपनी पत्नीके सहित उनसे बिछुड़ रहा था। अति कारुणिक परिस्थिति थी । सम्पूर्ण अयोध्यापर दुःखके काले बादल बरस रहे थे ।

वास्तवमें दुःख माता कौसल्या और पिता दशरथ दोनोंको ही था। शायद कौसल्याजीको दशरथजीकी अपेक्षा अधिक ही था, पर कौसल्याजीमें सहिष्णुता अधिक थी, जब कि दशरथजीका स्वभाव छुईमुई-जैसा था । वे अति कोमल थे और इस अधिक दुःख

माननेकी आदतने, इस झूठी भावुकताने उनके प्राग ले लिये। वे मानसिक आघात सहन न कर सके थे।

छुईमुईका पौधा छूनेसे ही मुरझाने लगता है। ऐसे स्वभावके मनुष्य भी संसारके तनिक-से विरोध और निन्दासे, तनिक-सी विपत्ति और कठिनाईसे बुरी तरह अस्त-व्यस्त हो जाते हैं। उनका मानसिक संतुलन भंग हो जाता है। वे एकाएक उद्विग्न हो उठते हैं। यह भावुकताका दुर्गुण है। इस अतिभावुकताके भयंकर दुष्परिणाम निकलते हैं। अतः स्वभावका छुईमुईपन सदा दूरकर सहिष्णुताको अपनाना चाहिये।

यह संसार बुरे तत्त्वोंसे भी भरा हुआ है। व्यर्थ ही बुरा कहनेवाले, जिनकी आदत निन्दा करनेकी है, सर्प-बिच्छू-जैसे मनुष्य भी बहुत-से हैं। चोर, डाकू, कुटिल, पापी और राक्षस अच्छे कार्योंमें विघ्न उपस्थित किया ही करते हैं। राक्षस ऋषियोंकी तपश्चर्यामें विघ्न उपस्थित किया करते थे। अन्तमें इस अत्याचारके विरुद्ध मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामको धनुष उठाना पड़ा था।

अकारण निन्दासे डरिये मत

संसारमें हर देशमें, हर युगमें लोक-हितैषी, परोपकारी, प्रगतिशील, उपकारी महान् आत्माओंकी निन्दा हुई है; आज भी हो रही है और भविष्यमें भी होती रहेगी। पारस्परिक ईर्ष्या, द्वेष और निन्दा करना राक्षसवृत्तिके मनुष्योंका स्वभाव है। बिना निन्दाके कोई महापुरुष और नेता नहीं बचा है।

प्रायः यह निन्दा निराधार होती है और पीठ पीछे बदला

निकालनेकी भावनासे की जाती है । कुछ दूषितवृत्तिवाले लोग आपकी असाधारण योग्यता और गुणोंको देखकर जलते हैं और इसलिये आपकी उन्नतिमें रोक लगाना चाहते हैं । जब स्वयं उनका वश नहीं चलता, तो चुगलीकर दूसरोंको भड़काते हैं । ऐसी थोथी निराधार निन्दाको सह सकना और बिना किसी विक्षोभकी प्रतिक्रियाके उसको पचा लेना, उस निन्दारूपी विषको शिवके विषकी तरह पचा लेना मनुष्यका महान् गुण है । इस सहिष्णुताको विकसित करना चाहिये ।

महान् व्यक्तियोंने निन्दकोंकी कभी किंचित् भी परवा नहीं की है । उलटे उससे लाभ ही उठाया है । निन्दासे एक बड़ा लाभ यह होता है कि यह सहज ही पता लग जाता है कि लोग क्या चाहते हैं ? अधिकतर निन्दा उसी बातको लेकर की जाती है, जिसको लोग चाहते हैं । लोकप्रियताका विस्तार निन्दासे होता है । निन्दाके बहाने लोग लोकसेवकोंको समझनेका प्रयत्न किया करते हैं । अप्रत्यक्ष रूपसे निन्दा मनुष्यकी प्रसिद्धिकी मानसिक प्रतिक्रियामात्र है ।

निन्दक पीठ पीछे बुराई इसीसे करता है कि वह झूठी अफवाहें फैलाता है । उसमें सार कुछ भी नहीं होता । वह बातको आपके सामने कहनेसे डरता है ।

किसी भी उन्नतिके आकाङ्क्षीको निराधार और थोड़े दिन ठहरनेवाली लोकनिन्दासे भयभीत होकर अपने उच्च ध्येयका त्याग नहीं करना चाहिये । जो निन्दा सह सकता है, वह संसारका बड़े-से-बड़ा कष्ट सहन करनेमें सक्षम होता है ।

निन्दा और संकटके समय मानसिक संतुलन न खोयें

प्रिंस बिस्मार्कके ये शब्द बड़े अनुभवके हैं—

किसी भी निन्दा या विरोधके अवसरपर मनुष्यको चाहिये कि वह उस मानसिक आघातसे बचे, जो उसके मनपर चट्टानकी तरह पड़कर उसे साहसहीन कर सकता है। मस्तिष्कमें शीतलता बनी रहे। वह पूर्ण संतुलित रहे। यदि मस्तिष्क निराश या भयभीत हो गया, तो समझ लेना चाहिये कि उसके सारे अस्त्र-शस्त्र छिन गये, आपत्तियोंसे टक्कर लेनेके सारे साधन ही समाप्त हो गये।

मस्तिष्कको मानसिक आघातसे बचानेका सबसे सरल उपाय है—तटस्थता। दूसरे शब्दोंमें अपनेपर आयी आपत्तिसे अपनेको अलगकर उसका इस प्रकार अध्ययन कीजिये, जैसे उस आपत्तिसे आपका कोई भी सम्बन्ध नहीं है, मानो वह किसी दूसरेपर आयी हुई है और आप उसके दर्शकमात्र हैं।

जेम्स ऐलनका उदाहरण

महात्मा जेम्स ऐलनने एक संस्मरणमें लिखा है—

'मेरे परिचय-क्षेत्रमें दो ऐसे व्यक्ति रहे हैं जिनकी जीवनभरकी कमाई एक साथ ही नष्ट हो गयी। एक दिन प्रातःकाल उन्होंने समाचारपत्रोंमें पढ़ा कि जिस बैंकमें उनका रुपया जमा था वह दिवालिया हो गया। यह समाचार पढ़ते ही एक व्यक्ति इतना दुखी और निराश हुआ कि उसका मस्तिष्क बिल्कुल विरुद्ध हो गया। वह बिल्कुल पागल हो गया। यह था उसके स्वभावका अति भावुक होना।

किंतु दूसरे व्यक्तिने, जो आपत्तिसे नहीं डरता था, गम्भीर मुस्कानसे कहा—

'ठीक है, परमात्मा जो कुछ करता है भला ही करता है। मेरी अबतककी कमाईका पैसा तो मेरे हाथसे निकल गया। अब शोक करनेसे वह वापस मिल नहीं सकता। हाँ, परिश्रम करनेसे पुनः मिल सकता है। मेरा पैसा ही तो गया, हाथ-पैर और हौसला तो नहीं गया। मैं फिर कमा लूँगा।'

ऐसा सोचकर वह व्यक्ति पुनः नवीन उत्साह और दृढ़ आत्म-विश्वाससे काममें जुट गया और कुछ ही दिनोंमें पुनः धनवान् हो गया, किंतु भावुक आदमी रोता और छाती पीटता हुआ शोक ही करता रहा। उसने उद्योगका सहारा न लेकर निराशाका पल्ला पकड़ा, जिससे दिन-दिन दयनीय होता हुआ विपत्तिका शिकार बना।

मनको कष्टसहिष्णु बनाना चाहिये।

मनको सहनशील बनाइये

हमारे यहाँ कहा गया है—

उत वा यः सहस्य प्रविद्वान् मर्तो मर्तं मर्चयति द्वयेन।
अतः पाहि स्तवमान स्तुवन्तमग्ने माकिर्नो दुरिताय धायीः॥

(ऋग्वेद १। १४७। ५)

अर्थात् (इस संसारमें निन्दा-द्वेष करनेवाले बहुतसे व्यक्ति हैं) जो लोग सदैव दूसरोंकी निन्दा और परच्छिद्रान्वेषणमें लगे रहते हैं, समझदार आदमीको उनसे सदा-सर्वदा बचना चाहिये; क्योंकि उनके साथ रहनेसे अपना स्वभाव भी निन्दक बनता है।

दीर्घतमा मामतेयो जुजुर्वान् दशमे युगे।
अपामर्थं यतीनां ब्रह्म भवति सारथिः॥

(ऋग्वेद १। १५८। ६)

स्मरण रखिये, अज्ञानी व्यक्ति लोभातुर होकर रोग-शोकसे (अपनी भावुकताके कारण) अति दुःख पाते हैं, किंतु, धर्मनिष्ठ, दृढ़संकल्प और पौरुषवाले पुरुष अपना ज्ञान और विज्ञान बढ़ाकर स्वयं बन्धनमुक्त होते हैं और अपने उदाहरणसे दूसरोंको भी संसार-सागरसे पार ले जाते हैं।

मा नो अग्नेऽव सृजो अघायाऽविष्यवे रिपवेदुच्छुनायै।
मा दत्वते दशते मादते नो मा रीषतेसहसावन् परा दाः॥
(ऋग्वेद १। १८९। ५)

याद रखिये, इस संसारमें अच्छे और बुरे व्यक्ति सभी प्रकारके प्राणी हैं। यहाँ एक ओर मङ्गल मृदु स्वभाववाले सज्जन सत्पुरुष भी हैं और बाघ, सर्प, बिच्छू आदि हिंसक विषैले जीव-जन्तु भी हैं। वे समाजमें यत्र-तत्र लुके-छिपे फैले हुए हैं।

इसलिये समझदार पुरुषको चाहिये कि वह दुष्टोंसे तथा उनकी निराधार निन्दासे बचकर साधुपुरुषोंका साथ करे। अर्थात् शुभ कर्मोंको ही ग्रहण करे और दुष्कर्मोंसे सदा-सर्वदा दूर रहे।

और यदि वास्तवमें हमारे चरित्रमें दुर्गुण और बुरी आदतें हैं, तो हम उन्हें दूर करनेका डटकर प्रयत्न करें, जिससे किसीको कभी निन्दा करनेका मौका ही न मिले—

क्रत्वः समह दीनता प्रतीपं जगमा शुचे।
मृळा सुक्षत्र मृळया॥
(ऋग्वेद ७। ८९। ३)

अर्थात् ईश्वरको साक्षी मानकर अपनी त्रुटियाँ, ऐब, दुर्गुण तथा

दुष्कर्म स्वीकार करते रहें ताकि इनके निवारणमें ढील न पड़े। परमात्मासे हमारी यही प्रार्थना हो—

'प्रभो! हमारे दुर्गुण दूर कीजिये।'

स्वभावका छुईमुईपन त्याग दीजिये। यदि कोई अकारण ही विरोध करता है, तो उसकी निन्दापर तनिक भी ध्यान मत दीजिये। लोग सदा अच्छाईका विरोध करते रहते हैं, ऊँचा उठनेके धुनी लगातार ऊँचे उठने और उन्नति करते ही जाते हैं। वे समाजके ईर्ष्यालु आलोचकोंकी तनिक भी परवा नहीं करते। महापुरुषोंको बड़े विकट विरोधों और कठोर संघर्षोंमें होकर अपनी उन्नतिका मार्ग बनाना पड़ा है। लोग उन्हें समझ नहीं पाये और केवल विरोधके लिये विरोध करते रहे। अन्ततः वे पूर्ण विजयी होकर रहे। दूसरोंकी कटु आलोचना, निन्दा, कड़वे वचन और विरोधमें भी संतुलन बनाये रखनेकी आदत बनाइये। सहिष्णुता मनुष्यका एक दैवी गुण है। इसे विकसित कीजिये। कोई बुरा कहे, तो आप कदापि बुरा मत मानिये। स्वभावको सहनशील बनाइये। याद रखिये—

मा शपन्तं प्रति वोचे देवयन्तम्।

(ऋग्वेद १। ४१। ८)

सत्कार्योंमें विघ्न उत्पन्न करनेवाले दुष्टोंका बहिष्कार कीजिये। उन्हें असुरोंकी भाँति घृणित समझिये जो सत्कार्योंमें रोड़े अटकाते हैं।

मनसे मिथ्या भय निकाल दीजिये

आप व्यर्थ ही किसी-न-किसी प्रकारके गुप्त भयसे परेशान हैं। मृत्युका भय, लोकलाजका डर, किसीके द्वारा आक्रमण होनेका भय, अपने शत्रुओंद्वारा परेशान होनेका भय, रात्रिमें भूत-प्रेत-पलीतका भय, व्यापारमें हानिका भय, नौकरी छूटनेका भय, स्वास्थ्य नष्ट होनेका भय, बच्चोंका आवारागर्द निकल जाने या संचित पूँजी नष्ट कर देनेका भय—ये अथवा इसी प्रकारके असंख्य भय आपको दिन-रात परेशान किया करते हैं।

सच मानिये, इनमेंसे अधिकांश भय ऐसे हैं जो बिल्कुल काल्पनिक हैं और कभी भी आपको हानि पहुँचानेवाले नहीं हैं। आप व्यर्थ ही भयभीत होकर इन्हें अपने गुप्त मनमें जमाये हुए हैं।

नब्बे प्रतिशत डरपोक लोग काल्पनिक भयसे विक्षुब्ध रहते हैं, जब कि वे उनके वास्तविक जीवनमें कभी नहीं आते। डरते-डरते भय उनकी आदत बन जाता है। वे हर स्थितिमें अपनेको भयभीत—डरा-डरा-सा पाते हैं। अधिक दिनोंतक मनमें जमे रहनेसे भयकी आदत कायरता या डरपोकपनमें बदल जाती है। डरपोक आदमीका पौरुष नष्ट हो जाता है। ऐसा व्यक्ति साहसका कोई भी काम कभी नहीं कर पाता। उसकी कायरताकी आदत उसे जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें असफल कर देती है।

कायर व्यक्ति सदा यही सोचते रहते हैं—'हम कुछ नहीं हैं। हम क्षुद्र हैं। हमसे जीवनमें कोई बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य होनेवाला नहीं है। हम दीन-हीन दरिद्र हैं। दूसरे लोग हमसे विद्या, बुद्धि, शक्ति, सामर्थ्य, सूझ-बूझमें श्रेष्ठतर हैं; बड़े हैं, सर्वगुण-सम्पन्न हैं।' ये सब हीनत्वकी भावनाएँ मनुष्यके सही विकासमें बाधाएँ हैं। भयकी भावना मनमें जड़ पकड़ जानेसे मनुष्यके अन्तःकरणकी समस्त उत्तम योजनाएँ क्षणभरमें धूलमें मिल जाती हैं।

भय हमारी अज्ञानताका सूचक है

भयकी आदत मानव-जीवनकी शत्रु है। कायर और डरपोक

लोगोंका जीवन व्यर्थ ही है। वे दिनमें हजार बार मरते हैं। व्यर्थके भयसे ग्रसित डरकी कुकल्पनाओंसे हजारों जीवन बर्बाद हो रहे हैं तथा समयसे पूर्व ही कालके ग्रास बन रहे हैं।

जिस प्रकार तेज आँधी-वर्षा कोमल पुष्पों, पौधों या कमनीय कलिकाओंको झकझोरकर नष्ट-भ्रष्ट कर डालती है, उसी प्रकार भयरूपी दानवकी कुकल्पनाएँ अबोध और अविकसित हृदयोंपर अपनी काली-काली मृत्यु-जैसी परछाईं डालकर सदैवके लिये उन्हें अविकसित और डरपोक छोड़ जाती हैं।

भय हमारी अज्ञानता और कमसमझीका सूचक है। ज्यों-ज्यों मानव-मनमें डरपोकपन बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों उसकी उर्वरा सृजनात्मक शक्तियाँ पंगु होती जाती हैं। उसका वास्तविक सिंह-जैसा निर्भय सशक्त पौरुषपूर्ण व्यक्तित्व अन्धकारमें विलीन होता जाता है। ये डरपोक लोग अपना भय, अन्धविश्वास, दुःख-दर्द, कायरता, संकोच और लज्जा, अपने प्रति अविश्वासके विचार अपनेतक ही सीमित नहीं रखते, प्रत्युत अपने आस-पासके पड़ोसियों, मित्रों अपने बाल-बच्चों तकमें फैलाते हैं। हमारा नारी-समाज युग-युगके भय और डरपोक-पनसे जकड़ गया है। भारतीय नारियाँ, विशेषतः ग्रामोंमें रहनेवाली अशिक्षित, पिछड़ी हुई स्त्रियाँ भयसे भरी रहती हैं और उम्र भर कैदखानेमें जीवन बिताती हैं। अपनी कायरताके कारण उन्हें लाचार गुलामोंका जीवन व्यतीत करना पड़ता है। कायरता और भय मनुष्यमात्रके मनोबलको क्षीण करनेवाले मनोविकार हैं।

अब आप अपना दृष्टिकोण पौरुषपूर्ण बनायें

अबतक आपका जीवन भय और कायरतामें व्यतीत हुआ है । आप जीवनके अप्रीतिकर, अस्वास्थ्यकर तथा चिन्तामय पहलूपर विचार करते रहे हैं । इस प्रकार डरपोक विचारोंने आपको नष्ट कर दिया है ।

विचार एक महाशक्तिशाली आधार है । नयी शक्ति इसी बीजसे उत्पन्न होती है । आप जैसा विचार दृढ़ताके साथ गुप्त मनमें जमायेंगे, वैसी ही शक्तियाँ और गुण आपमें प्रकट होंगे । दृढ़ विचार एक महाशक्तिशाली चुम्बक है । वह जैसा स्वयं है, वैसे ही वायुमण्डलको अपने इर्द-गिर्द आकर्षित करेगा । यदि हम सृजनात्मक और पोजिटिव विचारधाराको मनमें दृढ़ करें तो दृष्टिकोण पौरुषपूर्ण बन सकता है और आत्मविश्वास उत्पन्न हो सकता है ।

तनिक सोचकर देखिये, यदि आप उम्र भर दूसरोंसे डरते रहेंगे, खुद अपने आपको नहीं सँभालेंगे, अपने सोये हुए पौरुषको जाग्रत् नहीं करेंगे तो आपका ठौर-ठिकाना कहाँ रहेगा ? आपको महत्त्वपूर्ण स्थान कहाँ मिलेगा ? आप भविष्यमें क्या कर सकेंगे ?

आपको चाहिये कि आप व्यर्थके काल्पनिक डरों, मनमें बैठी कभी न घटनेवाली चिन्ताओं तथा कुविचारोंको हृदयसे सदा-सर्वदाके लिये निकाल दें, अपने इर्द-गिर्द निर्भयता तथा निश्चिन्तताके वातावरणकी सृष्टि करें । स्वयं निर्भय बनें तथा

अपने आस-पासके व्यक्तियोंसे कहें कि वे भी आपकी तरह भयभीत न हों। पुराने दुःख.दायी प्रसंगों, अपनी की हुई गलतियों और अन्धकारपूर्ण पहलुओंको सदाके लिये भूल जायँ। मनको भविष्यकी चिन्ताओंमें न फँसने दें।

भयके विचार आपको उद्विग्न न करें। आप इस पचड़ेमें न पड़ें कि दूसरे आपके विषयमें क्या सोचते-विचारते हैं? क्या-क्या कहते हैं? तथा उन्होंने आपको कैसा समझा है?

आप यह सोचते ही क्यों हैं कि आपके विषयमें उनकी राय ऊँची नहीं है? वे आपकी आलोचनाएँ पक्षमें करते हैं अथवा विपक्षमें?

आप तो यही सोचकर चलें कि वे सब आपके पक्षमें ही सोचते और बातें करते हैं। आपका हित ही चाहते हैं। आपको ऊँचा समझते हैं। आपके गुणोंकी ही चर्चा करते रहते हैं।

आप यह मानिये कि वे सब लोग आपके विषयमें अहितकर और कटु बात सोच ही नहीं सकते; क्योंकि आप वैसे हैं ही नहीं। आप तो ऊँचा उठने और बड़ा बननेके लिये जन्मे हैं। प्रत्येक दिन उन्नति ही करते चल रहे हैं। हितैषी भावनाओंको ही मन-मन्दिरमें सजा रहे हैं और उन्नतिशील विचारोंके चिन्तनमें ही संलग्न रहते हैं।

यह याद रखिये, जो व्यक्ति दूसरेके विचारों, सुझावों या संकेतोंपर निर्भर रहता है वह उस बच्चेके समान है जो बड़ा

होनेपर भी दूसरोंकी गोदमें ही रहना चाहता है। स्वार्थी संसार उसे उस बंदरकी तरह नाच नचाता है, उसकी नकेल दूसरोंके हाथोंमें रहती है। दुनियामें झूठी आलोचनाएँ और बेबुनियाद खिल्ली उड़ानेवाले सदासे रहे हैं, पर पुरुषार्थी वीरोंने (जिनमें आप भी हैं) इनकी कभी परवा नहीं की है।

आप वीर बनें। पुरुषार्थी होकर जियें। अपने वास्तविक आत्म-स्वरूपको पहिचानें। अपने उज्ज्वल भविष्यको निहारें।

आप तुच्छ नहीं, महान् हैं। अपने गुप्त-बल और पौरुषके कारण आपको किसी अभाव और दुर्बलताका अनुभव नहीं करना है। किसीके सामने हाथ फैलाकर कुछ माँगना नहीं है। आप अनन्त शक्तिशाली हैं। आपके बलका पारावार नहीं है। जिन ईश्वरीय साधनोंको लेकर आप पृथ्वीतलपर अवतीर्ण हुए हैं, वे अचूक ब्रह्मास्त्र हैं। उन दैवी साधनोंकी शक्ति अनेक इन्द्र-वज्रोंसे अधिक है। सफलता और आनन्दपर आपका जन्मजात अधिकार है। उठिये! अपनेको, अपने दिव्य हथियारोंको भलीभाँति पहिचानिये। आत्मसुधार और आत्मविकासके कार्यमें लग जाइये और बुद्धिपूर्वक कर्त्तव्य-मार्गमें जुट जाइये। फिर देखें कैसे वह उद्देश्य सिद्ध नहीं होता, जिसकी पूर्ति आप सच्चे मनसे चाहते हैं। आप वह कल्पवृक्ष हैं। जो मनुष्यकी सब इच्छाओंकी पूर्ति करता है। आप वह पारस हैं, जो छूते ही लोहेको सोना बना डालता है। सचमुच आप सफलताकी साक्षात् प्रतिमा हैं।

शौर्य, साहस और पराक्रम आज भी कम नहीं

शेरके चपत लगाये

लिस्बनसे पुर्तगाली समाचार एजेन्सी लुसिटेनियाने बताया है कि एक पुरुषार्थी मनुष्यने अंगोलामें अपने दाँत शेरकी नाकमें इस साहससे गड़ाये कि उसे घायल मनुष्यको छोड़कर भागना पड़ा।

घटना इस प्रकार बतायी जाती है कि लुसियो और जोकिम चंका नामक दो भाई जंगलमें शिकार खेलने गये; जहाँ एक शेर लुसियोपर झपटा और उसे जमीनपर गिराकर अपने पंजोंसे उसे दबोच लिया। वह बड़ी जोखिमकी स्थितिमें फँस गया। मौत एक-एक पलमें अपना काला पर्दा उसपर डाल रही थी। शेर उसे मारना ही चाहता था। उसका भाई, जोकिम शेरको गोलीसे

न मार सका; क्योंकि बंदूक नौकरके पास थी और डरके मारे वह भाग गया था। भाईको शेरके पंजेसे बचानेके लिये जोकिम शेरसे उलझ पड़ा और उसने अपनी पूरी शक्तिसे शेरको पटकनेका प्रयास किया; किंतु जब कोई बस न चला, तो उसने हिंसक जानवरोंकी तरह शेरकी नाकपर इस जोरसे दाँत गड़ा दिये कि उसकी साँस ही रुक गयी। नाकका कुछ हिस्सा कट गया। शेर हड़बड़ा गया। जैसे ही शेरकी पकड़ जरा ढीली पड़ी, वैसे ही लुसियो उछलकर खड़ा हो गया और उसने शेरको गोली मार दी। दोनों भाई नाम्पुला अस्पतालमें जख्मी हालतमें एक मास रहे; किंतु अन्तमें बच गये। शौर्य और साहसके ऐसे नर-नाहर ही मानवताके सच्चे आभूषण हैं।

कुल्हाड़ीसे शेरको मार डाला

ग्राम एकूलगढ़में एक साहसी हरिजन युवक मेहताबने अकेले ही एक शेरको कुल्हाड़ीसे मार डाला। घटना यों हुई कि उसके घरसे रातमें शेर बकरी उठाकर ले गया था। वह इसपर क्रोधित हो उठा और उसकी वीर भुजाएँ उससे प्रतिशोध लेनेपर फड़क उठीं। सुबह वह शेरकी खोजमें निकल पड़ा। घूमता-फिरता वह घंटोंतक शेरको ढूँढ़ता रहा। अन्तमें एक नदीके किनारे एक खोहमें उसने शेरको ढूँढ़ निकाला। शेर और मेहताबमें द्वन्द्व-युद्ध होने लगा। शेरने मेहताबके हाथोंको दो बार मुँहमें दबा लिया; किंतु मेहताबने कुल्हाड़ीके वारोंसे अन्तमें शेरको मार ही डाला।

साहसी मनुष्यके पास पहुँचे हुए स्वल्प साधन भी अपनी पूरी

उपयोगिता दिखाते हैं। एक बहादुर व्यक्ति लाठी लेकर इतनी विजय प्राप्त कर लेता है, जितनी कि डरपोक व्यक्ति तोप-तलवार लेकर भी नहीं पा सकता। यह वीरभोग्या वसुन्धरा है। यहाँ एक-से-एक बलवान् आदमी भरे पड़े हैं और आप भी उनमेंसे एक हैं।

गला दबाकर चीता मार डाला

बिलासपुर जिलेके खोंगसरा गाँवके एक युवक भागीरथने सात फुट लंबे चीतेको गला दबाकर मार डाला। एक जगह साँप और चीतेमें लड़ाई हो रही थी, जिसे देखनेके लिये गाँवके बहुतसे लोग एकत्र हो गये। चीतेको न जाने क्या सूझी कि उसने एकाएक साँपसे लड़ना बंद कर दिया और वह आस-पासके लोगोंपर ही टूट पड़ा। सभी ग्रामीण डरकर भाग खड़े हुए, भागीरथने डटकर मुकाबला किया। संघर्षमें भागीरथने चीतेका गला बड़ी मजबूतीसे पकड़ लिया और पूरी ताकतसे इतना दबाया कि उसका प्राणान्त हो गया। यह है मनुष्यके पुरुषार्थकी प्रेरक गाथा! वास्तवमें संसार शक्तिके सामने झुकता चला आया है। संसारमें वीर ही पूजित होते आये हैं। विभूतियाँ उसीके इर्दगिर्द इकट्ठी होती हैं, जिसकी भुजाओंमें सशक्तता और समर्थता भरी रहती है।

ऊपर जिनके उदाहरण दिये गये हैं, वे भी हम-आप-जैसे हाड़-मांसके पुरुष थे। उनके पास भी हम-जैसा ही शरीर था; हम-जैसे ही हाथ-पाँव थे। अन्तर केवल यह था कि उनके मनमें साहस और पुरुषार्थकी वीरभावनाएँ थीं, आन्तरिक बल था,

उन्हें अपने ऊपर पूरा भरोसा था । इसीलिये वे साहसपूर्ण कदम उठा सके ।

ग्रामीणोंने शेर मारा

बरेलीकी तहसील फरीदपुरका एक समाचार इस प्रकार छपा है—

तहसील फरीदपुरके ग्राम चढ़ियाके निवासियोंने एक साढ़े आठ फुट लंबे शेरको लाठी तथा काँटोंसे मार गिराया । बताया जाता है कि दुलासिंह नामक आदमी पासके जंगलमें ऊँट चरा रहा था कि शेर-ने उसपर हमला कर दिया । शोर सुनकर पास ही खेतमें काम करनेवाले किसान लाठी और काँटा लेकर घटना-स्थलपर पहुँच गये और दुलासिंहको किसी प्रकार शेरके पंजेसे छुड़ाया । गाँवका एक लाइसेन्सी घरसे बंदूक उठा लाया और उसने घायल शेरको गोली मार दी, जिसके लगते ही शेर ढेर हो गया ।

भारतमाताकी वीर-भूमिमें ऐसे वीरोंका जन्म सदासे ही होता आया है । हम एक वीर जाति हैं । साहसके आधारपर जातियाँ आगे बढ़ती हैं । साहसके आधारपर ही देश उन्नतिशील बनते हैं । साहसी आगे बढ़ते हैं, तो परिस्थितियाँ भी साथ देती हैं और कितने ही सहयोगी भी मिल जाते हैं, किंतु जिन्हें अपने ऊपर भरोसा नहीं है, जिन्होंने अपनी शक्तिको समझा ही नहीं है, वे डरते-काँपते यही सोचते रहते हैं कि उनसे कुछ होना-जाना नहीं है । आत्महीनताका अनुभव करनेवालोंको ही असफलता मिलती है ।

आज देशमें भाँति-भाँतिके रूपोंमें शौर्य और साहसके समाचार प्रकाशित होते रहते हैं; जो देशमें उगते-पनपते पराक्रमके चिह्न हैं। कुछ समाचार देखिये—

बाँदाके वीर ग्रामीणोंको पुरस्कार

बताया जाता है कि बाँदा जनपदके तीन ग्रामीण देवसरन, चुन्नीलाल तथा नर्बदा, जिन्होंने ग्राम खोहीमें डकैतोंके एक सशस्त्र गिरोहको पत्थर मार-मारकर भगाया था तथा उनके डकैती डालनेके प्रयासको विफल कर दिया था। उनकी वीरता तथा साहसको देखकर श्री॰ ए॰ एम॰ शाह पुलिस कप्तान बाँदाने उन्हें पुरस्कृत किया। ग्रामीणोंने बड़े साहससे डाकुओंका सामना किया था और एक डकैतको काफी जख्मी कर दिया था; जिसे उसके साथी उठा ले गये थे।

मनोवैज्ञानिक सत्य यह है कि मनुष्यकी बलिष्ठता बाहरी इतनी नहीं, जितनी भीतरी होती है। बल बाहर दिखायी तो पड़ता है, पर वह वस्तुतः होता अंदर ही है। जो बाहरसे मोटा-तगड़ा, भारी-भरकम दिखायी देता है, किंतु मनसे, साहस और पुरुषार्थसे कमजोर है, वह किसी आँधी-तूफानसे खोखले पेड़की तरह एक दिन उखड़ कर गिर जायगा और परिस्थितियाँ अनुकूल न हुईं, तो कभी भी फिर ऊपर न उठ सकेगा।

किंतु जिस आदमीमें मनकी भावनात्मक बलिष्ठता होगी, हिम्मतकी पूँजी जमा रहेगी, उसे विपरीत परिस्थितियोंसे लड़नेमें किसी परेशानीका अनुभव नहीं होगा।

मनका साहस, पराक्रम और पुरुषार्थ सूर्यकी तेजस्विता-जैसा शक्तिशाली है, जो घने बादलोंको चीरकर भी अपने अस्तित्वका परिचय देता है। आत्मविश्वासके बराबरका साहस संसारकी और किसी सहायता या सुविधासे नहीं मिल सकता है।

हमें दैनिक जीवनमें पग-पगपर साहसकी पूँजीकी आवश्यकता है। आज भी ऐसे अनेक साहसी पुरुष हैं, जो शौर्य और पराक्रमका परिचय दे रहे हैं।

वृद्धकी अदम्य साहससे छलाँग

बरहत्रा (संथाल परगना) से प्राप्त एक समाचारके अनुसार गत पिछले दिनोंमें ३२१ अप सियालदह गया-यात्रा ट्रेनकी तीसरी श्रेणीमें यात्रा कर रहे एक वृद्ध व्यक्तिके सदम्य साहससे एक चोर पकड़ा गया।

बताया गया है कि ट्रेन ज्यों ही स्थानीय स्टेशनसे निकट पहुँची कि चोरोंके एक दलने उस ५५ वर्षीय वृद्धका बक्स उठाकर बाहर फेंक दिया तथा खुद भी ट्रेनसे कूद गये। यात्री भी तत्क्षण चोरोंके पीछे कूद पड़ा। इसपर चोरोंने उसपर प्रहार करना शुरू कर दिया, किंतु उसकी चिल्लाहट सुनकर पास ही गश्त लगा रहे पुलिसके सिपाही दौड़ पड़े और चोरोंको गिरफ्तार कर लिया।

इस वृद्धमें नैतिक साहस था। भले और उचित पक्षके साथ सदा परमात्माका बल रहता है।

ग्रामीणोंने दो डाकुओंको मार गिराया

प्रयाग जिलेके छुरपुर पुलिस थानेके अम्बा गाँवमें एक दिन सशस्त्र डाकुओंके दल और गाँवके कुछ लोगोंके बीच अर्द्ध-रात्रिको हुई दो घंटेकी मुठभेड़में दो डाकू मारे गये। तीन या चार गाँववालोंके गोलीसे घायल होनेकी सूचना मिली है। रिपोर्टमें बताया गया है कि करीब एक दर्जन डाकुओंने जो बंदूकों और घातक हथियारोंसे लैस थे, गाँवके एक मकानपर धावा बोल दिया। जोरोंकी आवाज और चिल्लाहट सुनकर गाँववाले लाठी और भाले लेकर इकट्ठे हो गये। डाकुओंने ग्रामीणोंपर गोली चलायी, किंतु ग्रामीण इससे डरे नहीं, बल्कि लाठी और भालोंसे दो डाकुओंको मारनेमें सफल हुए। शेष डाकू भाग गये।

साहसके सहारे ही लोग अपने जान-माल, धर्म और परिवारकी रक्षा करते हैं। इस साहससे रक्षा हर जगह हो सकती है। साहसी आदमी हर घड़ी उससे लाभ उठाता है। पता नहीं कहाँ, किस रूपमें साहस दिखाना पड़े ? इसलिये हर विषम परिस्थितिमें मजबूत रहना चाहिये। कायर और आत्महीनतासे ग्रसित व्यक्ति सदा शंकाशील रहते हैं। उन्हें इस बातपर विश्वास ही नहीं होता कि वे अपनी रक्षा कर भी पायेंगे या नहीं ?

युवकका अद्भुत साहस

भरदह (गाजीपुर) का एक समाचार है कि सीमावर्ती ग्राम मिर्जापुरसे एक नवयुवक जब अपने खूँटेपर बैल खोलनेके लिये झुका ही था कि उसकी पीठपर छप्परसे एक बड़ा विषैला सर्प

गिरा और उसने अपनी पूँछसे युवकका गला कस लिया। वह युवक तनिक भी नहीं डरा। उसने अपूर्व साहसका परिचय दिया। दोनों पैरोंके बीचमें हाथ डालकर सर्पका फन पकड़कर मुट्ठी बाँध ली। एक ओर सर्प पूरी ताकतसे युवकके गलेको कस रहा था, दूसरी ओर युवक अपनी मुट्ठी कसता जा रहा था। इतनेमें पड़ोस एवं परिवारवालोंने सर्पकी पूँछसे युवकका गला छुड़ाया और युवकने झटकेसे सर्पको दूर फेंका। सर्पकी रीढ़की हड्डी टूट गयी और लोगोंने उसे मार डाला।

साहसी आगे बढ़ते हैं तो परिस्थितियाँ भी उनका साथ देती हैं और मदद करनेवाले कितने ही साहसी सहयोगी भी मिल जाते हैं। साहससे साहस पैदा होता है। एककी हिम्मतसे दूसरेकी हिम्मत बँधती है। किंतु जिन्हें अपने ऊपर भरोसा नहीं है, जिन्होंने अपनी अतुल सामर्थ्यको कभी समझा ही नहीं है, वे डरते-काँपते यही सोचते रहते हैं कि उनसे कुछ बननेवाला नहीं है। वे किसी बड़े काममें हाथ नहीं डालते। ऐसे डरपोक और कायर लोग सचमुच असफल ही रहते हैं। आत्महीनताका अनुभव करनेवालोंको जीवनमें सदा असफलता ही मिलती है। धन, स्वास्थ्य, पद, सत्ता, शस्त्र, सहयोग आदिकी सुविधाओंका लाभ वही उठा पाते हैं, जो मनसे बलवान् हैं।

आप भी पुरुषार्थी बनें

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥

(यजुर्वेद ४०। २)

मनुष्यमात्रको इस लोकमें अपना कर्त्तव्य करते हुए ही सौ वर्ष जीनेकी इच्छा करनी चाहिये। हे मानव! तेरे लिये यही एक मार्ग है; इससे दूसरा कोई उत्तम मार्ग नहीं है। कर्तव्य कर्म करते रहनेसे मनुष्यमें कोई विकार उत्पन्न नहीं होता है। अतः इस जगत्में परम पुरुषार्थ करते हुए ही तू दीर्घ जीवन प्राप्त करनेकी इच्छा कर। पुरुषार्थमय जीवन व्यतीत करना ही मनुष्यका परम धर्म है।

इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं, न स्वप्नाय स्पृहयन्ति।
यन्ति प्रमादमतन्द्राः॥ (ऋक्० ८।२।१८)

यज्ञ करनेवालेको समस्त देव चाहते हैं, आलसी और निरुद्यमी मनुष्यको कोई नहीं चाहता। आलस्य न करनेवाले पुरुषार्थी पुरुष ही अशुद्धि करनेवालेका दमन करते हैं; क्योंकि पुरुषार्थी मनुष्यकी देवगण सहायता करते हैं; आलसी और प्रमादी मनुष्यका कोई सहायक नहीं होता। अतः प्रत्येक मनुष्यका कर्त्तव्य है कि वह पुरुषार्थ करके अपने जीवनको अभ्युदयके मार्गपर आगे बढ़ाये।

पुरुषार्थकी आज्ञा

पिबतं च तृष्णुतं च गच्छतं प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तम्।
(ऋक्० ८।३५।१०)

हे मानव! अपने पुरुषार्थसे तू अमृतपान कर और तृप्त हो तथा अभ्युदयके मार्गपर आगे बढ़ता चल। इस प्रकार तू प्रजाको धारण करते हुए उसके पोषणके लिये धन भी एकत्र करता चल।

जयतं च प्र स्तुतं च प्र चावतं प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तम् ॥

(ऋक्० ८ । ३५ । ११)

हे मानव ! जीवनमें तू सदा विजय प्राप्त कर तथा उत्तम कार्य करनेवाले प्रशंसनीय समाजकी रक्षा कर और इस प्रकार तू अपनी प्रजा और धनको बढ़ाता चल ।

हतं च शत्रून् यततं च मित्रिणः । प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तम् ॥

(ऋक्० ८ । ३५ । १२)

हे मानव ! तू शत्रुओंका नाश कर तथा मित्रोंको सहयोग प्रदान कर । इस प्रकार तू अपनी प्रजा और धनको बढ़ाता चल ।

ब्रह्म जिन्वतमुत जिन्वतं धियो हतं रक्षांसि ।
सेधतममीवाः ॥ (ऋक्० ८ । ३५ । १६)

हे मानव ! संसारमें कर्म करते हुए उत्तम ज्ञान प्राप्त कर और अपनी सुबुद्धिसे दुष्कर्मोंका दलन करते हुए श्रेष्ठ कर्म कर तथा सदा नीरोग एवं स्वस्थ रह ।

क्षत्रं जिन्वतमुत जिन्वतं नॄन् हतं रक्षांसि ।
सेधतममीवाः ॥ (ऋक्० ८ । ३५ । १७)

हे मानव ! पुरुषार्थी बनकर क्षात्रतेजको प्राप्त कर तथा श्रेष्ठजनोंको सदा समीप रखकर दुष्टजनोंका हनन कर । इस प्रकार सदा स्वस्थ एवं प्रसन्नचित्त रह ।

धेनूर्जिन्वतमुत जिन्वतं विशो हतं रक्षांसि ।
सेधतममीवाः । (ऋक्० ८ । ३५ । १८)

हे मानव ! तू गौओंका संवर्धन करते हुए अपने पशु-धनको

बढ़ा और प्रजाको पालते तथा राक्षसोंका नाश करते हुए अपने जनसमाजकी रक्षा कर। यही तेरा कर्तव्य है।

आशीर्ण ऊर्जमुत सौप्रजास्त्वं दक्षं धत्तं द्रविणं सचेतसौ।
जयं क्षेत्राणि सहसायमिन्द्र, कृण्वानो अन्यानधरान्त्सपत्नान्॥
(अथर्व० २। २९। ३)

हे परमात्मन्! हमें आशीर्वाद दो कि हमारा सदा भला और कल्याण हो। हे समान चित्तवाले पुरुषो! उत्तम संतानके साथ अन्न, बल, धन और शक्तिको सदा प्राप्त करो और दान दो। हे प्रभो! हमें ऐसी शक्ति प्रदान करो कि हम अपने पुरुषार्थसे विजय प्राप्त करें और शत्रुओंका दमन करनेमें सदा समर्थ रहें। इस प्रकार हमें अपने राष्ट्रकी भी रक्षा करनी चाहिये।

उद्बुध्यध्वं समनसः सखायः, समग्निमिन्ध्वं बहवः सनीळाः।
दधिक्रामग्निमुषसं च देवीमिन्द्रावतोऽवसे नि ह्वये वः॥
(ऋक्० १०। १०१। १)

एक विचार और एक समान ज्ञानसे युक्त लोगो! तुम उठो, जागो और जानो कि तुम्हारा क्या कर्तव्य है। तुम एक घरमें रहनेवाले सब लोग प्रेमसे मिलकर ईश्वरको, ज्ञानीको तथा ज्ञानको उत्तम रीतिसे प्रदीप्त करो। धारणाशक्तिके साथ प्रगति, विकास और उन्नति करनेके लिये हे प्रभो! आप हमें दिव्य शक्ति प्रदान कीजिये। समाज और राष्ट्रकी रक्षाके लिये हम आपका आह्वान करते हैं।

आप वीर हैं, इसलिये शत्रुओंसे डरें नहीं !

जो डरता है, उसे और भी अधिकाधिक डराया, धमकाया और लाञ्छित-तिरस्कृत किया जाता है। संसार आपके बल और पौरुषको तौलता-परखता रहता है। यदि वह यह पाता है कि आप दबते हैं, तो आपको अधिकाधिक दबा-डराकर अपना स्वार्थ सिद्ध किया जाता है।

यदि आप अपनेको कमजोर समझेंगे तो अधिकाधिक निर्बल, निस्तेज, नपुंसक और भयभीत होते जायँगे। आपकी वीरता, शौर्य, इच्छा, संकल्प तथा उच्चतम सामर्थ्यका ह्रास होता जायगा। कल्पित भय आपको अवनतिके नरकमें गिरा देगा। यदि आप अपने शत्रुओंसे डरकर पाँव पीछे उठायेंगे तो उन्हें आपके विरुद्ध कार्य करनेका उत्साह और बल प्राप्त होगा। आपकी त्रुटियाँ स्वतः आपके ही विपक्षमें, प्रतिकूलतामें कटिबद्ध हो जायँगी।

शत्रु-भय मनकी कल्पनाका एक मिथ्या विचार है। इसीसे भयभीत होकर हम अपने विषयमें दीनता और हीनताकी कल्पनाएँ

करते हैं और अपनी कल्पनामें शत्रुको बहुत बढ़ा-चढ़ाकर देखते हैं। इस मिथ्या भयने कितनोंके अन्तःकरणको श्मशानभूमिमें बदल दिया है।

वास्तवमें आप शूरवीर हैं!

हमारी बात सच मानिये, आप शूरवीर हैं। राष्ट्र-रक्षाकी पूरी सामर्थ्य आपकी रग-रगमें छिपी हुई है।

मैं अनेक ऐसे व्यक्तियोंको जानता हूँ जो अर्धविकसित अवस्था या अपने बचपनमें ही कल्पित शत्रुओंकी भावनाके चंगुलमें फँसकर क्रमशः दीन-हीन पतितावस्थाको प्राप्त हो गये हैं। उनके मनमें कल्पित भय भरा हुआ था। वे कभी न आनेवाली विपत्तियों तथा नाना प्रतिकूलताओंके अनर्थकारी स्वप्न देखा करते थे। अतः वे जीवनभर कल्पित भयकी भावनाके वशीभूत होकर अपने साहस-पूर्ण प्रयत्नों तथा महत्त्वाकांक्षाओंको चूर्ण कर बैठे।

हमारे जीवनमें कमजोरी पैदा करनेवाला भयंकर शत्रु यह भय ही है। अविश्वास, अकर्मण्यता, अधीरता, कायरता, असंतोष, कमजोरी तथा इसी प्रकारकी अनेक मानसिक निर्बलताओंका स्रष्टा यह भय ही है। कल्पित भयको मनमेंसे निकाल देनेपर मनुष्यके उच्च गुणोंका विकास शुरू हो जाता है।

कितने ही व्यक्ति अपने विषयमें दूसरोंकी राय जाननेके इच्छुक हुआ करते हैं। अमुक व्यक्ति, अमुक अखबार, मेरे बारेमें क्या कहता है? अमुक आदमीका मेरी जाति, देश, धर्मके सम्बन्धमें क्या विचार है? साधारण जनताने मुझे कैसा समझा है?

जब मैं बाजारसे होकर निकलता हूँ तो बाजारवाले मेरे बारेमें क्या कहते हैं ?

जब मनुष्य इस प्रकारके तर्क-वितर्कोंमें फँस जाता है तो समझना चाहिये कि वह कल्पित भयमें फँस गया है। उसके गुप्त मनमें बचपनकी कोई निर्बलता ग्रन्थिके रूपमें छिपी हुई है और वह तज्जनित चित्रोंकी प्रतिच्छाया यत्र-तत्र देख रहा है।

जिस प्रकार दूसरोंके दोष-दर्शन विकार माने जाते हैं, उसी प्रकार अपने दोषों और निर्बलताओंका बार-बार दर्शन और चिन्तन भी मनुष्यको हीन-दीन और कमजोर बनानेवाला है।

बाइबिलमें एक स्थानपर कहा गया है कि मनुष्यके पास जो वस्तु अधिक है, वही उसे अधिकाधिक दी जायगी। जो कम है, वह न्यून वस्तु या गुण भी उससे छीन लिया जायगा।

इसका दूसरा अर्थ यह है कि यदि आपके पास कमजोरी ज्यादा है तो कमजोरी, निर्बलता, दीनता, हीनता, दुःख, दारिद्र्य, कमी, हार ही आपको अधिकाधिक दी जायगी। यदि आप कमजोरीकी बात सोचेंगे तो आपके गुप्त मनमें वैसा ही विषैला और दूषित वातावरण बनता जायगा। आस-पासके वातावरणमें भी कमजोरी ही फैलती जायगी। आप छोटी-छोटी बातोंसे बुरी तरह डरेंगे। रातभर बुरे स्वप्नोंमें डरते रहेंगे।

इसके विपरीत यदि आप वीरता, साहस, शौर्य, उत्साह, उल्लासके शुभ विचारोंमें निवास करेंगे, तो साहस और वीरताका अन्तर्मन निर्माण होगा।

आपके भय कल्पित हैं। आपकी चिन्ताएँ स्वयं आपकी अपनी उत्पन्न की हुई हैं। अपने पूर्ण स्वाभाविक रूपमें आप पूर्ण निर्भय हैं। व्यर्थके सांसारिक क्लेशों, विपत्तियों और हर प्रकारकी चिन्ताओंसे मुक्त हैं। आपका वास्तविक रूप शूरवीरका स्वरूप है। किसी प्रकारकी कायरताका विचार आपके मनोमन्दिरमें नहीं आना चाहिये।

आपका अन्तःकरण वह दर्पण है, जिसमें आप अपने निर्भय स्वरूपका अवलोकन कर सकते हैं। आप उस दर्पणको आत्म-विश्वास और उत्साहके रेतसे रगड़कर प्रशस्त कर डालिये।

यदि आप अपने जीवनसे भयको दूर करनेमें समर्थ हो सकेंगे तो अपने जीवनका एक नया पृष्ठ खोल सकेंगे। तभी आप विजयी और पुरुषार्थी जीवन प्राप्त करना सीखेंगे।

विज्ञानका अकाट्य सिद्धान्त है कि एक ही स्थानपर दो परस्पर-विरोधी विचार नहीं ठहर सकते। जब आप साहसपूर्ण विचारोंको अपने गुप्त मनमें प्रचुरतासे भर लेंगे और उन्हें मजबूतीसे मनमें जमा लेंगे तो फिर आपकी पराजय या असफलताका तो प्रश्न ही नहीं उठेगा।

निर्भय होकर जीवन बिताइये। अपने भयको अपने ऊपर विजय न प्राप्त करने दीजिये। आप महावीर हैं। आप शक्ति-पुत्र हैं। आप महान् पराक्रमी पिताके शूर-वीर सुपूत हैं। आप वीर सैनिक हैं। आप सेनाध्यक्ष हैं। जीवन-संग्राममें पूर्ण विजयके लिये आपको सेनाका अध्यक्ष चुना गया है। आपके कंधोंपर घर, परिवार, मुहल्ले, प्रान्त

और समूचे देशकी रक्षाका भार है । आपको अपनी शक्तिपर भरोसा है । पूरे विश्वाससे स्वीकार करें और गर्वसे कहें—

संशितं म इदं ब्रह्म संशितं वीर्यबलम् ।
संशितं क्षत्रमजरमस्तु जिष्णुर्यें येषामस्मि पुरोहितः ॥
(अथर्ववेद ३ । १९ । १)

अर्थात् मैं वीर हूँ । मेरा ब्रह्म तीक्ष्ण है । मेरा ईश्वरके प्रति विश्वास प्रबल है । मैं आत्मा और परमात्मामें पूर्ण विश्वास रखता हूँ । इस कारण मृत्युसे भय नहीं खाता । निर्भय होकर रणक्षेत्रमें जा सकता हूँ । मेरा ज्ञानरूपी ब्रह्म भी तीक्ष्ण है । मैं युद्धनीतिका पूर्ण ज्ञाता हूँ । मैं शत्रुपक्ष तथा स्वपक्षके बलाबलको देखकर निर्णय करनेकी क्षमता रखता हूँ । मेरा मनोबल और शरीरबल भी तीक्ष्ण है । मैं पूर्ण विजयशील और पराक्रमी हूँ । इसी प्रकार जिनका मैं अध्यक्ष हूँ, नायक हूँ, उन सैनिकोंका भी क्षमाबल तीक्ष्ण हो । अजर हो । क्षमाबल अकुण्ठित रहे ।

प्रेता जयता नरः उग्रा व सन्तु बाहवः ।
तीक्ष्णेषवोऽबलधन्वनो हतोग्रायुधा अबलान् उग्रबाहवः ॥
(अथर्ववेद ३ । १९ । ७)

आगे बढ़ो, विजय प्राप्त करो, हे वीरो ! प्रचण्ड हों तुम्हारी भुजाएँ । तीक्ष्ण अस्त्रोंवाले, उग्र शस्त्रोंवाले, उग्र बाहुओंवाले हे वीरो ! शत्रुओंको मार दो, उनके शस्त्रोंको दुर्बल सिद्ध कर दो, शत्रुकी शक्ति हीन कर दो ।

स्वच्छ वस्त्रोंका आध्यात्मिक प्रभाव होता है

जिस प्रकार स्नान करनेके उपरान्त सम्पूर्ण शरीरके त्वचा-रन्ध्र खुल जानेसे और घर्षणसे एक प्रकारकी स्फूर्ति प्राप्त होती है, उसी प्रकार स्वच्छ और नवीन वस्त्रोंको धारण करनेसे मनुष्यकी आत्माको प्रसन्नता प्राप्त होती है।

हमारी आत्माका गुण स्वच्छता है। वह विकार, दुर्गुण, सब प्रकारके मल-पदार्थोंसे मुक्त है। उसमें गंदगी टिक नहीं सकती। पाप-पङ्कका उसपर छींटा पड़ नहीं सकता। यदि कोई वस्तु उसे पंकिल करनेका उद्योग करती है तो हमारी अन्तरात्मामें पश्चात्ताप और आत्मग्लानिकी चीत्कार उठती है। कोई भी दुर्विचार, पापमय कल्पना, कुत्सित वासना, हमारी नैतिकतासे हेय निकृष्ट भावना जब मनःक्षेत्रमें प्रविष्ट होकर हमारे सत्य, प्रेम, कर्तव्य-निष्ठाको विश्रृङ्खलित करने लगती है, तब आत्मामें एक आन्तरिक आघातका हम सब अनुभव करते हैं। इसका कारण क्या है?

आत्माद्वारा हमें किसी भी ऐसे अनैतिक कार्यके लिये सहयोग प्राप्त नहीं हो सकता, जो किसी भी प्रकारकी कायिक, वाचिक, मानसिक गंदगीसे युक्त हो। गंदी धारणाएँ या अश्लील कृत्य करनेवाले आत्माकी ध्वनिकी अवहेलना कर गंदे कार्योंमें प्रविष्ट होते

हैं; किंतु अंदर-ही-अंदर उन्हें एक मनोव्यथा दुखी करती रहती है। कुछ कालके लिये आप इस आन्तरिक ध्वनिका दमन भले ही कर दें, इसका पवित्र कार्य निरन्तर चलता रहता है।

आत्मध्वनिका कार्य है—अन्तर्मनमें सफाईका कार्य करना। जो गंदे विचार, मन्त्रणाएँ या कल्पनाएँ आयें, उन्हें गंदगीसे हटाकर नीर-क्षीर-विवेक कर मनुष्यको सत्पथकी ओर अग्रसर रखना। जो व्यक्ति आत्मध्वनि सुनता है, उसे आत्मध्वनि सीधा मार्ग दिखाती चलती है। उसके मनःक्षेत्रमें सर्वत्र स्वच्छता होती है। जहाँ कोई गंदा विचार विद्रोहीकी भाँति उदित होता है, वहीं मनकी शुभ वृत्तियाँ उससे संघर्ष कर उसे निकाल बाहर करती हैं।

बाहरी वातावरण पूर्ण स्वच्छ रहे!

चूँकि स्वच्छता हमारी आत्माका नैसर्गिक गुण है, अतः बाह्य स्वच्छतासे भी परितुष्टि एवं प्रसन्नता प्राप्त होती है। स्वच्छ वातावरणका प्रभाव स्वास्थ्य, प्रसन्नता, आन्तरिक आह्लादका देनेवाला है।

स्वच्छ वातावरणकी सृष्टि करनेमें मनुष्योंके वस्त्रोंका बड़ा सम्बन्ध है। वस्त्र शरीरसे निकटतम सम्पर्क रखते हैं। उनके अनुसार उसकी अन्तर्वृत्तिका निर्माण होता चलता है। यदि उनमें स्वच्छता है तो स्वभावतः मनमें पवित्र विचारोंका क्रम चलने लगता है। विचार-प्रवाह स्वयं पवित्रता और सात्त्विकताकी ओर रहता है। गंदगीसे विचार उतने ऊँचे नहीं उठ पाते। उनकी नैतिकताको

अप्रत्याशित चोट लगती है। गंदे वस्त्रोंके सम्पर्कमें रहते-रहते उसकी उच्च शक्तियाँ धीरे-धीरे पंगु हो जाती हैं।

महात्मा गाँधीजीका विश्वास था कि खद्दरके स्वच्छ वस्त्र पहनकर ही वे सत्य, न्याय, अहिंसा, विश्वबन्धुत्वके पवित्र विचारोंसे प्रेरित हो जाते थे। प्रत्येक सत्याग्रहीको खद्दर पहिनना चाहिये। खद्दर और विचारोंकी पवित्रताका निकट सम्बन्ध है।

वातावरणकी स्वच्छता और वस्त्रकी स्वच्छता मनकी स्वच्छता उत्पन्न करनेवाली है। जो व्यक्ति स्वच्छ रहनेका अभ्यस्त है, उसके विचारोंका स्तर गंदे वस्त्रोंवालेसे ऊँचा रहता है।

स्वच्छता दैवत्वका सामीप्य है (Cleanliness is next Godliness)—इस उक्तिमें महान् संदेश भरा है। स्वच्छता क्रमशः देवत्वके समीप हमें ले जाती हैं। देवताओंका एक विशिष्ट गुण स्वच्छता है। स्वच्छ रहकर आप वातावरणकी दृष्टिसे देवत्वके समीप पहुँच जाते हैं।

कैसे परितापका विषय है कि जहाँ अन्य जातियाँ स्वच्छताके लिये सतत उद्योगशील हैं, बच्चोंमें स्वच्छताके बीज बोती हैं, हमारे यहाँ इस ओर बहुत कम ध्यान दिया जा रहा है। स्वच्छता एक आदत है। यदि एक बार आदत डाल दी जाय तो जीवनभर मनुष्य उसे नहीं भूलता। याद रखना चाहिये, स्वच्छता और शौकीनीमें बड़ा अन्तर है। शौकीनी दूसरोंको दिखानेके लिये होती है और स्वच्छता गंदगीका नाश करनेके लिये। शौकीनी तो स्वयं एक मनकी गंदगी मात्र है।

हिंदू वेश-भूषा और हिंदी भाषाको अपनानेमें गर्वका अनुभव करें !

अंग्रेजीके एक लेखक टामस फुलरने लिखा है—

'वेश-भूषाकी सादगी सज्जनताका चिह्न है। उससे हमारी आध्यात्मिक भावनाएँ जीवित रहती हैं। वेश-भूषासे आदमीका धर्म, जाति, देश और संस्कृति सब कुछ स्पष्ट हो जाते हैं। स्वच्छ और भद्र वस्त्र पहने व्यक्तिके लिये सभी ऊँची सोसाइटीके दरवाजे खुले रहते हैं, जब कि बहुमूल्य भड़कीले वस्त्र व्यक्तित्वका ओछापन व्यक्त कर देते हैं और इस दिखावटीपन और नकलचीपनसे हम दूसरोंकी दृष्टिमें घृणाके पात्र बनते हैं। अच्छे गुणों और उत्तम चरित्रके विकासके लिये आपके वस्त्र भी सभ्यों-जैसे रहें।'

हिंदू वेश-भूषा ही आरामदायक और सादा है

प्रत्येक जाति और देशवाले अपनी-अपनी पोशाकोंको श्रेष्ठ बतलाते हैं, किंतु सारा विश्व इस तत्त्वको भलीभाँति जानता और स्वीकार करता है कि भारतीय वेश-भूषा आकर्षक है। पुरुषोंद्वारा पहनी हुई धोती, कुर्ता, जाकेट और हिंदू-नारीद्वारा पहनी हुई साड़ी विश्वमें सबसे सुन्दर और आरामदायक मानी गयी है। विश्वके

जिन-जिन स्थानोंपर भारतके प्रधान मन्त्री श्रीलालबहादुर शास्त्री धोती और कुर्तेमें गये, उनकी पोशाकको सबसे अच्छा समझा गया था। इसी प्रकार श्रीमती विजयालक्ष्मी पण्डित और श्रीमती इन्दिरा गाँधीकी भारतीय साड़ी स्वच्छता, सुन्दरता और शालीनतामें सर्वश्रेष्ठ गिनी गयी।

पोशाकके साथ संस्कृति और धर्मका सम्बन्ध है। प्रत्येक धर्म और संस्कृतिको स्पष्ट करनेवाली वेश-भूषा भी अलग है। वैसी पोशाक पहिननेसे एक विशेष प्रकारके भाव और विचार मनमें उत्पन्न होते हैं। निरक्षर व्यक्तितक अन्धानुकरणमें पाश्चात्त्य ढंगके कोट, पेन्ट, टाई और हैट-बूट, मोजोंमें देखे जाते हैं। टूटी-फूटी गिटपिट अंग्रेजी भाषा बोलकर वे झूठे दम्भकी पूर्ति मात्र करते हैं। अंग्रेजी पोशाक पहनते ही मनमें ऐंठ, अकड़, झूठी शान, विलासिता और शेखीके ओछे भाव उदय होते हैं। मुसलमानी पोशाकके साथ ऐश्वर्य, इन्द्रिय-भोगकी लम्पटता, विलासिता, वासनाकी तड़क-भड़क जुड़ी हुई है। पोशाक, वेश-भूषा और भाषाके साथ संस्कृति, इतिहास और धर्म जुड़ा हुआ रहता है। अंग्रेजी और मुस्लिम संस्कृति और धर्म 'खाओ, पिओ, मौज उड़ाओ'के भोगवाद और इन्द्रिय-लोलुपतापर खड़ी हैं। ये भोगलिप्सा और क्षुद्र सांसारिकताको ही महत्त्व देते हैं। वहीं कुत्सित नग्नता, अश्लीलता और लम्पटता फैली हुई हैं। पाश्चात्त्य समाजमें सर्वत्र वासनात्मक पशु-प्रवृत्तियाँ फैली हुई हैं। ये देश केवल बाहरी बनावटी सौन्दर्य (क्या उसे वास्तवमें सौन्दर्य कहें ?), टीपटाप, झूठे दिखावेको ही प्रधानता

देते हैं। उनके यहाँ नित्य नये-नये फैशन निकलते रहते हैं। इन सब जातियोंमें नाना भोगोंकी अतृप्त इच्छाएँ भरी पड़ी हैं। यह भोगेच्छा और वासनामय जीवन उनके विचारों और बुद्धिको भौतिक स्तरसे ऊपर नहीं उठने देते। छोटी वस्तुओं, नीचे आदर्शों और मांस-मदिराका पाशविक स्वाद चखते-चखते ये लोग उच्च जीवन-मूल्योंको ही भूल गये हैं। पाश्चात्य और मुस्लिम संस्कृतियोंकी पोशाकों और वेश-भूषामें जो फैशनपरस्ती, झूठी शेखी, बाहरी सजावट, भोगविलास आदि हैं, वह मनुष्यकी पञ्चेन्द्रियोंका पाशविक सुख है।

आप एक दिनके लिये अंग्रेजी या मुसल्मानी पोशाक पहनिये, आप उन्हीं-जैसे विचारोंको मनमें अनुभव करेंगे। आप फौजी पोशाक पहिनते हैं, तो आपके मनमें हिंसा, पशुता, आतङ्क, दुष्टता और दूसरोंपर अत्याचार तथा दम्भके भाव भर जाते हैं। मुसल्मानी पोशाकमें वासना और स्वार्थपरता, प्रदर्शन तथा ओछापनके भाव मनमें पैदा हो जाते हैं।

आज भारतीय नौजवान जो फैशनपरस्ती कर रहे हैं, अश्लील फिल्मोंमें काम करनेवाले अभिनेताओं-जैसी अर्द्धनग्न और चुस्त पोशाकें पहनते हैं, ट्रांजिस्टर लगाये हुए आवारा-गर्दी करते शहरोंकी सड़कोंपर चक्कर लगाते हैं, ढेर-के-ढेर सिग्रेट और पानकी दूकानों, होटलों और सिनेमाघरोंके आगे भीड़ किये रहते हैं, यह महज एक फैशन और दिखावा भर है। इस प्रकारके अन्धानुकरणमें कौन-सा सौन्दर्य है? ऐसी आधुनिकता केवल झूठे प्रदर्शनकी मरुमरीचिका मात्र ही है।

भारतीय पोशाक—स्वच्छ और सफेद धोती, लंबा कुरता, जाकट, चप्पल इत्यादि इस देशके हिंदूधर्म, मौसम और आर्थिक हैसियतके अनुसार सस्ते, सुविधाजनक और उचित हैं। इनसे सद्भाव और सौहार्दका वातावरण उत्पन्न होता है। इनमें स्वच्छता, सुन्दरता और आराम भी अधिक रहता है; मनुष्य व्यर्थके दिखावेसे भी बचा रहता है। सौजन्य, सरलता, सादगी, विनयशीलता, सज्जनता हमारी संस्कृति और धर्मकी विशेषताएँ रही हैं। इस पोशाकके प्रयोगसे हमारी आध्यात्मिक भावनाएँ जीवित रहती हैं। हम अधिक रंगीन और भड़कीले वस्त्रोंको आदमीका ओछापन मानते हैं। अधिक बनावट, शृङ्गार और प्रदर्शनपूर्ण वेश-विन्यासको आडम्बरपूर्ण मानते हैं। यह तड़क-भड़क हमारे यहाँ हीन समझी गयी है। कम-से-कम वस्त्र रखकर प्रकृतिसे तादात्म्य स्थापित करना, अपने शरीरको व्यर्थके साज-शृङ्गार, टीप-टाप, फैशनपरस्तीसे दूर रखना, सादा जीवन और उच्च विचार धारण करना—यही हमारा दृष्टिकोण रहा है और आगे भी रहना चाहिये।

पाश्चात्त्य देशोंमें जहाँ प्रकृतिपर विजय प्राप्त करनेकी भावना रहती है, भारतीय संस्कृति और हिंदूधर्मने उनके साथ अपनापन स्थापित करनेका विनीत प्रयत्न किया है। हिंदूधर्ममें हिमालय—कैलाश-जैसे पर्वत; गङ्गाजी, यमुनाजी, गोदावरी-जैसी नदियाँ; वन, वृक्ष, उपवन पवित्र माने गये हैं। वहाँ ईश्वरका निवास माना गया है। भारतके हिंदू साधु-संन्यासी ही नहीं, जनता भी प्रकृतिकी गोदमें सदा आनन्द लेती रही है। भारतीय हिंदू प्रकृतिमें दासीकी कल्पना न कर

उसे माताके रूपमें देखते और श्रद्धा व्यक्त करते हैं। प्रकृतिके वन, लता, पर्वत, नदी, पशु-पक्षी, वृक्षोंके साथ उन्होंने सदा अपनेपनका अनुभव किया है। हमारे पर्वतों और नदियोंके निकट ही हमारे तीर्थों और मन्दिरोंकी स्थापना हुई है। वन, उपवन और ग्राम हमारी संस्कृतिके सुन्दर प्रतीक रहे हैं।

अतः ग्रामीण वेश-भूषा और प्रकृतिके साहचर्यमें रहनेसे आनेवाली सादगी, स्वच्छता, स्वास्थ्य, विनयशीलता और उदारता हमारी पोशाकमें भी पायी जाती है। टीप-टापको ओछेपनकी निशानी माना गया है। थोथी कृत्रिमता, बनावटीपन, रंग-विरंगे आधुनिक शृङ्गार-प्रसाधनोंसे हमारे यहाँ सदा विरक्ति रही है। भारतीय संस्कृति यह मानती है कि जितनी ही कृत्रिमता हमारे जीवनमें आयेगी और पोशाकके सम्बन्धमें जितनी अस्वाभाविकताको हम अपनाते जायँगे, उतने ही उच्च जीवनसे दूर हटते जायँगे।

भारतीय पोशाककी सादगीका अर्थ दीनता या दरिद्रता नहीं है, वरं यह है कि बिना आडम्बरके उपयुक्त और आवश्यक वस्तुओंका शुद्धतापूर्वक प्रयोग करना। यह सादगी, स्वच्छता, निरभिमानिता हमारे नित्य व्यवहारमें मिली हुई होनी चाहिये। वस्त्र बहुत मूल्यवान् न हों। टेरालीन, डेकारौन और नाइलौन-जैसे बहुत मूल्यवान् तथा स्वास्थ्यनाशक न हों, बारीक रेशमके न हों। इनकी कोई आवश्यकता नहीं हैं। हम तो मोटे सफेद खद्दरके प्रेमी रहे हैं, किंतु वे स्वच्छ होने चाहिये। तड़क-भड़कके, रंग-विरंगे या बेढब फैशनके वस्त्र व्यर्थ थोथेपनके प्रतीक हैं। कम कपड़े पहिनने

चाहिये, पर उनकी सफाईका पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिये। भारतीय विचारोंकी तो यही मान्यता है कि जेवर लादनेकी अपेक्षा तो कुछ अधिक कपड़े बनवा लेना और स्वच्छ रखनेपर थोड़ा व्यय करना अधिक उपयोगी है। मन, विचार, वेश-भूषा और वातावरणकी सादगी एवं स्वच्छता उच्च आध्यात्मिक जीवनकी ओर खींच ले जानेकी अद्भुत क्षमता रखते हैं।

हिंदी भाषाके साथ हिंदू-धर्म और संस्कृति जुड़ी हुई है

भाषाकी गुलामी सबसे बुरी है; क्योंकि भाषाके साथ उसी देशकी संस्कृति और धर्मको भी गुप्तरूपसे अपनाना पड़ता है। जिस भाषाको हम प्यार करते हैं, अपनालेते हैं या भरपूर प्रशंसा किया करते हैं, उस देशके धर्म, परम्पराओं. वीर पुरुषों तथा संस्कृतिको भी अपनाने लगते हैं। भाषाकी आड़में धर्म और संस्कृतिका भी प्रचार किया जाता है। भाषाके प्रत्येक शब्द, मुहावरे और कहावतोंके पीछे उस देशका धर्म, संस्कृति और संस्कार बोलते हैं। धर्म भाषाके कपड़े पहिनकर दैनिक व्यवहारमें प्रकट होता है। अनेक शब्दोंका निर्माण ही धर्मके स्रोतसे बनता है। भाषा और धर्मका अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है।

अंग्रेजोंकी कूटनीति, अंग्रेजीकी गुलामी

जब अंग्रेजोंने भारतको जीता था, तब वे व्यापारिक सफलता तथा राजनीतिक विजयमात्रसे ही संतुष्ट नहीं हुए थे। राजनीतिक गुलामी ऊपरी और बाहरी शासकीय गुलामी है। शासन दण्ड, आतंक और भयके बलपर चलता है। उन्होंने हिंदुस्तान (इस

हिंदुओंके देश) को मानसिक दृष्टिसे भी गुलाम बनानेकी योजना बनायी।

वह मानसिक गुलामी कैसे उत्पन्न की गयी ?

जब कोई वीर जाति निर्बल जातिको जीतती है, तब प्रायः उसे सब ओरसे गुलाम बनानेका प्रयत्न करती है। वह उसपर अपनी भाषा और साहित्यका बोझ डाल देती है। उसे बरबस विजेताओंकी भाषा और साहित्यका अध्ययन करना पड़ता है। उस भाषाको सीखनेवालोंको पुरस्कार और प्रशंसापत्र वितरित किये जाते हैं। पराजित जाति शासक-जातिके वीर पुरुषों, जातीय आदर्शों और धर्मकी प्रशंसा उस साहित्यमें घुमा-फिराकर बार-बार पढ़ते हैं, चित्रोंमें देखते हैं, कविताओंमें गाते तथा उसीके मानसिक वातावरणमें रहते हैं। अतः चुपचाप विजित जाति शासक-जातिके धर्मको भी स्वीकार करती जाती है, उसके आदर्शों और रीति-रिवाजोंको भी ग्रहण कर लेती है।

शारीरिक निर्बलता और पराजयका बुरा नतीजा यह होता है कि वह हर दृष्टिसे जीतनेवाली जातिको अपनेसे श्रेष्ठ समझने लगती है। इससे विजित जातिमें मानसिक और सांस्कृतिक दासता बढ़ती है। दूसरेकी भाषा और उसके साहित्यमें उस जातिकी प्रशंसा पढ़ते-पढ़ते निर्बल जातिको मनमें ऐसा प्रतीत होते लगता है कि शासकोंका सब कुछ श्रेष्ठ है और स्वयंका सब कुछ दीन-हीन और बेकार है। यह भाषाकी गुलामी है।

अधिक दिनोंतक विदेशी भाषा पढ़ते-पढ़ते पराजित मनुष्य

विदेशियोंको ही उत्तम तथा उनके साहित्य, संस्कृति, आदर्शों, रीति-रिवाजों और विचारोंको ही सर्वश्रेष्ठ मानने लगता है। उनकी पुरानी कथा-कहानियों और जातीय आदर्शोंको ही सर्वोत्तम गिनता है। मनोविज्ञानका यह नियम है कि बार-बार जिस बातका (चाहे वह गलत और निराधार ही क्यों न हो) उल्लेख किया जाता है, वही हमें सत्य प्रतीत होने लगती है। इस प्रकार दीर्घकालतक विदेशी भाषा और साहित्य पढ़ते-पढ़ते कोई भी जाति अपना स्वयंका जातीय गौरव और अतीत सांस्कृतिक स्वर्णिम वैभव भूल जाती है। इस प्रकार मानसिक गुलामी उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है।

भारतमें यह मानसिक दासता विदेशी भाषा और साहित्यके माध्यमसे बहुत दिनोंसे चली आ रही है। भाषाकी आड़में धर्म भी फैलाया जाता रहा है। खेद है कि भाषाओंकी ओटमें दूसरे धर्मोंका गुप्त प्रचार करनेवाले सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक तथ्यपर किसीने ध्यान नहीं दिया।

उर्दू तथा इस्लामकी गुलामी

भारतमें दिमागी गुलामीका प्रारम्भ उर्दू और इस्लाम-धर्मसे हुआ था। जब मुसल्मानोंने हिंदुओंकी पारस्परिक फूटके कारण भारतको जीत लिया तो उन्होंने भी उर्दू-भाषाके माध्यमसे हिंदू-राष्ट्रमें इस्लामका प्रचार किया था। उर्दू और फारसीका राज्य फैला। ये ही राज्य-भाषाएँ घोषित की गयीं। हिंदू-जनताको मार-कूट और आतंकद्वारा उर्दू पढ़नेपर जोर डाला गया। जिन्होंने उर्दू नहीं

पढ़ी, उन्हें सरकारी नौकरी और राज्यसे कोई प्रोत्साहन नहीं मिला। दूसरी ओर डर या लालचसे जिन हिंदुओंने उर्दू और फारसीका ज्ञान प्राप्त कर लिया, उन्हें राज्य-सरकारकी ओरसे प्रोत्साहन-स्वरूप अच्छी नौकरियाँ, भरपूर इनाम, सम्मान और सार्वजनिक प्रतिष्ठा प्राप्त हुई।

उर्दू और फारसीकी आड़ लेकर इस्लाम-धर्म फैलाया गया। चुपचाप अनेक हिंदुओंका धर्म परिवर्तन कर उन्हें मुसल्मान बनाया गया। मुसल्मानोंके आदर्शों और इस्लामी संस्कृतिका बड़ा प्रचार हुआ। उर्दूके बड़े-बड़े ग्रन्थ लिखे और लोकप्रिय बनाये गये। यह सब मुस्लिम जीवन-पद्धति, इस्लामके नियम, आदर्श, वेश-भूषा, सिद्धान्तों और आदर्शोंका प्रचार था।""एकाएक इस्लामने करवट ली।

अंग्रेजों और अंग्रेजी-भाषाकी गुलामी

जमाना बदला। इस बार एक दूसरी विदेशी जातिने हमें आ दबाया। भाषा, संस्कृति, वेष-भूषा और आदर्शोंमें फिर एक बड़ा तूफान आया।

उर्दू, फारसी और इस्लाम-धर्मका युग जैसे समाप्त हुआ और अंग्रेजी भाषा और साहित्यका नया युग प्रारम्भ हुआ। ईसाई धर्म-गुरुओंने अंग्रेजी-भाषा और साहित्यके माध्यमद्वारा ईसाई-धर्मका प्रचार-कार्य शुरू किया। लार्ड मैकालेने अंग्रेजीके प्रचार-प्रसारमें सर्वाधिक दिलचस्पी दिखायी। पहले अंग्रेजी पढ़ाकर क्लर्क बनाये गये, उन्हें अच्छी नौकरियाँ दी गयीं, पुरस्कार और सार्वजनिक प्रशंसा दे-देकर अंग्रेजीको सार्वजनिक मान्यता दी गयी और इस

प्रकार जब काफी लोग अंग्रेजी पढ़े-लिखे हो गये तो उसे राज्यभाषा बना दिया गया।

राज्याश्रय पाकर मानसिक दृष्टिसे भारतपर अंग्रेजीका राज्य छा गया। हम अंग्रेजोंका अनुकरण करने लगे, अंग्रेजी पोशाक पहनने और अंग्रेजी बोलनेमें गर्वका अनुभव करने लगे!

छोटी कक्षाओंमें अंग्रेजी कक्षा तीन और अंग्रेजीके माध्यमसे चलनेवाले स्कूलोंमें बच्चोंको अंग्रेजी पढ़ाना चालू किया गया। अंग्रेजीकी छायामें हिंदू बालकोंमें ईसाइयोंके धर्म, संस्कृति, देवता, रहन-सहनके तरीके, आदर्शों और जीवन-पद्धतियोंका गुप्तरूपसे प्रचार-प्रसार किया गया। बहुत-से हिंदुओं, विशेषतः अछूत वर्गके व्यक्तियोंने ईसाई-धर्म ही ग्रहण कर लिया। बच्चोंके लिये अनेक मिशनरी शिक्षण-संस्थाएँ चलीं। इनमें शिक्षा कम, ईसाई-धर्मके प्रचारका अधिक प्रबन्ध था। बच्चोंको बाइबिलकी सुन्दर प्रतियाँ मुफ्त दी जाती थीं और अनेक संस्थाओंमें, छोटी तथा बड़ी कक्षाओंमें ईसाई-धर्मके प्रारम्भिक संस्कार डालनेके लिये बाइबिल पढ़ायी जाती थी। धीरे-धीरे हिंदुस्तानी लोग अंग्रेजीको ही संसारकी सर्वश्रेष्ठ भाषा समझने लगे। कुछ तो सरकारी नौकरियोंके लोभसे, कुछ फैशन और अनुकरण-वृत्तिके कारण। हिंदुस्तानपर अंग्रेजी भाषाकी गुलामी छा गयी। विदेशी वस्तु चाहे कितनी ही बुरी क्यों न हो, दूरीके कारण उसके प्रति सहज आकर्षण होता है। अंग्रेजीके प्रति यही आकर्षण बढ़ा। अशिक्षित जनतापर अंग्रेजी ढंगसे रहने, अंग्रेजी पोशाक पहनने और अंग्रेजी बोलनेका बड़ा प्रभाव पड़ता रहा।

इसके विपरीत अंग्रेजीके मायाजालके कारण हिंदुस्तानियोंके मनपर अपने साहित्य, हिंदू-संस्कृति, वैदिक धर्म, भारतीय वेश-भूषा और संस्कृतिके प्रति हीनताकी भावनाएँ छा गयीं।

निष्कर्ष यह है कि भाषा, साहित्य और वेश-भूषाके साथ किसी भी देशका धर्म, संस्कृति और जातीय आदर्श जुड़े हुए रहते हैं। ये संस्कार कोमलहृदय बच्चोंके मनपर बड़ी आसानीसे बैठ जाते हैं। जब हमारे बच्चे अंग्रेजी भाषा और साहित्य पढ़ते हैं तो गुप्तरूपसे उनके मनपर अंग्रेजोंके बड़प्पनके विचार बैठ जाते हैं। हम ईसाई-धर्म, उनके देवी-देवता, भौतिकवाद, उच्छृङ्खलता, रीति-रिवाज, वासनालोलुपताके प्रशंसक बनते हैं। अंग्रेजीमें हम ईसाइयोंकी वीर-गाथाएँ पढ़ते हैं। उन्हें पढ़ते-पढ़ते हम उसी मानसिक वातावरणमें निवास करने लगते हैं। उनके ही आदर्श और विचार हमें श्रेष्ठ जँचते हैं। हिंदू-धर्म और भारतीय संस्कृतिकी अपेक्षा हमें उनका धर्म और संस्कृति ही श्रेष्ठ जँचती है। हम उन युद्धोंका हाल पढ़ते हैं, जिनमें वे विजयी हुए थे। इस प्रकार विदेशियोंके पौरुष, श्रेष्ठता और वीरताके भाव हमारे गुप्त मनपर मजबूतीसे जम जाते हैं और इस प्रकार एक तरहकी मानसिक गुलामी हमपर छा जाती है। यह मानसिक गुलामी आज इस हिंदुओंके देशपर छायी हुई है। इस केंचुलीको अविलम्ब त्याग देना चाहिये।

हिंदी और संस्कृत ही हमारे धर्मकी रक्षा कर सकती है

हिंदी और संस्कृत-भाषाओंके साथ हिंदू-धर्म, भारतीय संस्कृति तथा हिंदूजातिके पुरातन श्रेष्ठतम संस्कार जुड़े हुए हैं। संस्कृत हमारी

गौरवशाली प्रशस्त परम्पराओंकी प्रतिनिधि हैं। संस्कृतमें संसारका सर्वश्रेष्ठ साहित्य, आध्यात्मिक ज्ञान और मौलिक विचार-सम्पत्ति भरी हुई है। संस्कृतसे ही विश्वकी सब भाषाएँ निकली हैं। अध्यात्म, दर्शन और मनोविज्ञानकी ऊँचाई सब हमारे धर्म-ग्रन्थोंमें, जो संस्कृतमें हैं, भरी हुई है। दर्शनशास्त्रमें जितना ऊँचा भारत उठा है, संसारका अन्य कोई देश आजतक नहीं उठा है। हिंदुओंके पास आध्यात्मिक ज्ञानकी जो प्रशस्त और स्थायी सम्पदा है, हमारे वीरोंकी जो शौर्य-गाथाएँ हैं, हिंदूजातिके जो उच्चतम संस्कार हैं, वे सब संस्कृत और हिंदीमें संचित हैं।

हिंदू-धर्म, हिंदू-संस्कृति, भारतीय विचारधारा, अध्यात्म, नीति आदिकी रक्षा और प्रसारके लिये संस्कृत और हिंदीका व्यापक प्रचार-प्रसार हिंदुओंके इस देशके लिये सबसे बड़ी आवश्यकता है।

संस्कृत और हिंदी पढ़ना हमारे धर्मका अविभाज्य अङ्ग है। जो इन्हें नहीं जानता वह हिंदू कैसा? हिंदी देशमें भावात्मक एकता पैदा करके सारे राष्ट्रको एक सूत्रमें आबद्ध कर सकती है। संस्कृत और हिंदीके विद्वानोंका यह नैतिक कर्तव्य है कि दोनोंके विकास और उनके प्रचारका कार्य करें और उनके वाङ्मयकी पुरानी विचार-सम्पत्तिको जन-साधारणतक पहुँचानेका प्रयास करें। लोगोंका यह भ्रम दूर करना चाहिये कि संस्कृत भाषामें वेद-शास्त्रों और व्याकरणके अतिरिक्त अन्य जीवनोपयोगी साहित्यका अभाव है। संस्कृत वाङ्मयमें अनमोल साहित्यिक और दार्शनिक विचार-सम्पत्ति है। जो भाषा जन-साधारणके जितनी समीप रहती है, वह उतनी ही

विकसित और चिरंजीवी रहा करती है। इसके विपरीत जन-सम्पर्क छूट जानेपर वह अकालमें ही अतीतकी वस्तु बन जाती है। संयोगवश संस्कृत भाषाके साथ भी यही दुर्भाग्य रहा है। खेद है कि संसारके सर्वश्रेष्ठ साहित्यसे भरी-पूरी होनेपर भी वह एक अतीतकी मृत-भाषा मानी जाने लगी है, किंतु इस ओर कुछ समयसे लोगोंमें संस्कृतके अध्ययनकी रुचि बढ़ने लगी है। यह एक अच्छा लक्षण है, किंतु इस उगती हुई अभिरुचिकी रक्षा और विकास करनेके लिये उसे हिंदीकी सहायता और सहयोगकी आवश्यकता है। समग्र संस्कृत-साहित्य अब हिंदीके माध्यमसे देशके कोने-कोनेमें प्रचारित होना चाहिये। इस उगती हुई अभिरुचिकी रक्षा और विकास करनेके लिये संस्कृत और हिंदीके जानकार और विद्वानोंको अधिक परिश्रम करना चाहिये, तभी यह अभिरुचि स्थायी एवं उपयोगी हो सकती है।

ब्रिटिश गुलामीके कड़ुवे दिनोंमें अनिवार्य अंग्रेजीके अध्ययन और अध्यापनसे हिंदुस्तानके प्राचीन-गौरव, हिंदू-धर्म, हिंदू-आचार-विचार, हिंदू-विचारधारा और भारतीय संस्कृतिको बड़ी हानि पहुँची है। हम हिंदुओंकी प्रशस्त परम्पराओंको भूल पाश्चात्त्य देशोंके वेश, भाषा और भौतिकवादी दृष्टिकोणकी नकल करने लगे हैं। सांस्कृतिक जागृति और देशकी भावात्मक एकता उत्पन्न करनेके लिये हिंदीको अधिकाधिक अपनानेकी आज बड़ी भारी आवश्यकता है।

हम पाश्चात्त्य जीवन-पद्धति और विचारधाराका अन्धानुकरण न करें

यथासम्भव हम अपने देश, धर्म, भाषा और संस्कृतिके प्राचीन

गौरवको पुनः लानेका प्रयत्न करें। अपने देशकी सादगीसे रहें। कोई भी देश दूसरोंके अन्धानुकरणसे बड़ा नहीं बनता। अपनी ही विशेषता उत्पन्न करनी चाहिये। अपनी भाषा, संस्कृति और वेश-भूषासे ही देशका उत्थान सम्भव है। जार्ज बर्नार्ड शाने सत्य ही कहा है—

'ऐसा व्यक्ति, जिसका अपनी निजी भाषापर अधिकार नहीं हो, कभी भी दूसरी भाषामें कुशलता प्राप्त नहीं कर सकता।'

हिंदी भाषा हिंदुस्तानके ४३ प्रतिशत भारतवासियोंद्वारा प्रयुक्त होती है। यह उत्तरप्रदेश, राजस्थान, बिहार और मध्यप्रदेशकी प्रमुख भाषा है। इसके पीछे हिंदू-धर्म, भारतीय संस्कृति और हमारे देशके युग-युगके पवित्रतम संस्कार छिपे हुए हैं। इस भाषाका उद्गम संस्कृतसे होनेके कारण यह बँगला और मराठीके भी समीप है।

अतः प्रत्येक हिंदूको हिंदी भाषा और हिंदू वेश-भूषाको अपनानेमें गर्वका अनुभव करना चाहिये। इन तत्त्वोंके प्रचारसे हिंदू-धर्मका व्यापक प्रसार और भावात्मक एकताकी स्थापना हो सकती है। हिंदीका प्रचार हिंदुत्वका प्रसार है। हिंदू-धर्मकी समस्त उत्कृष्ट मान्यताएँ, जातीय आदर्श, महत्त्वाकाङ्क्षाएँ, प्रतिनिधि विचार, प्राचीन वैभव और भावी उन्नति इसी भाषाको व्यापक बनानेमें निहित हैं। प्रत्येक हिंदू अपना धर्म समझकर हिंदीमें प्रकाशित धार्मिक साहित्यका अध्ययन करे, परिवारमें धार्मिक पुस्तकालय स्थापित करे और हिंदी धार्मिक साहित्य खरीदकर दान करे।

संकटके समय आशा नहीं छोड़नी चाहिये

बलिष्ठता बाहरी नहीं, भीतरी जरूरी है

मार्क रूदरफोर्ड नामक लेखकने अपने जीवनचरितमें एक दुर्घटनाका उल्लेख किया है। बचपनके दिनोंकी बात है। एक बार मार्क रूदरफोर्ड समुद्र-तटपर खड़े थे। दूर समुद्रमें एक जहाज भी लंगर डाले खड़ा था। बालक रूदरफोर्डकी इच्छा हुई कि वह तैरकर उस जहाजका चक्कर लगा आये। उसने तैरनेमें अति कुशलता प्राप्त कर ली थी और दस फुट नीचे डुबकी लगाकर तहमेंसे पत्थर निकाल सकनेका उसे अभ्यास था। वह जवान लड़का था। जहाज तटसे दो सौ गज दूर लंगर डाले खड़ा था।

वह तैरकर जहाजतक सरलतासे पहुँच गया, किंतु ज्यों ही वह लौटने लगा, दुर्भाग्य कहिये या दुर्बुद्धि, उसके मनमें यह मूर्खतापूर्ण कायर और निराशाजनक विचार आया कि वापसीका वह फासला उसकी शारीरिक शक्तिकी अपेक्षा अधिक है और वह तटपर वापिस पहुँचनेसे पूर्व मर जायगा। उसमें इतनी शक्ति नहीं है कि दुबारा जहाँसे आया है, वहाँ सुरक्षित जा पहुँचे। अपनी कुकल्पनामें उसने अनुमान किया कि वह मर जायगा। उसने डूबनेसे पहले ही स्वयंको डूबा हुआ समझ लिया। मृत्युकी अन्तिम घड़ियाँ गिनने लगा! उसकी शक्ति क्षीण हो गयी।

परंतु मन फिर बदला। अन्धकारमय क्षितिजसे आशाकी क्षीण रश्मि उदित हुई।

उसने अब सोचा, 'मरना तो है ही, भयानक खतरा भी है,

किनारा धुँधला नजर आता है, डूबनेसे पहले क्यों न एक और संघर्ष कर लें। मनने यह भी कहा, मुझे अभीतक स्पष्ट याद है, जलसमाधि लेनेसे पूर्व मेरा यह आखिरी संघर्ष होगा—'एक वीरतापूर्ण प्रयत्न'—और मैंने अपने टूटे हुए साहसको बटोरा, नये साहससे फिर पूर्ण कोशिश की। मैंने ऐसे तरीकेसे प्रयत्न किया (पता नहीं, ईश्वरने कहाँसे मुझे वह साहस दे दिया था) मैं वर्णन नहीं कर सकता। मैंने अपनी इच्छा-शक्तिका पूरा जोर अपने भयपर लगा दिया।

एक ही पलमें वह भयानक क्षण समाप्त हो गया और मनमें यह विश्वास जम गया कि मैं बच सकता हूँ। ईश्वरकी गुप्त शक्ति मेरे साथ है। मुझे तैरना आता है। जब मैं तैरकर आया हूँ, तो वापिस भी जा सकता हूँ। मनमें धैर्य छा गया। मैंने आरामसे बाँहें फेंकनी शुरू कर दीं और समुद्रको थोड़ी देरमें ही पार कर तटपर पहुँच गया! भीतरसे ईश्वरीय शक्तिने मुझे बचाया।

इस दुर्घटनाका उल्लेख करना इसलिये महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि यह इस बातको दिखाती है कि धैर्य छोड़नेवाले व्यक्तिको यह कभी नहीं समझना चाहिये कि उसने जो कुछ भी वह कर सकता था, अन्तिम रूपसे, अपनी पूरी शक्तिसे कर लिया है। यह भी बात ध्यान देने योग्य है कि इस संकटका सामना मैंने एकाएक मनमें उत्पन्न आत्म-विश्वास और पूर्ण प्रयत्नसे किया। इससे मेरी विजय दसगुनी आसान हो गयी थी।

वास्तवमें सदा-सर्वदा संकटके समय साहस देनेके लिये

परमात्मा हमारे भीतर बैठा हुआ है। भीतरसे ही वह हमारी मुक्ति-का प्रयत्न करता रहता है।

ईश्वरीय सहायता अंदरसे मिला करती है

संकटके समय हम धैर्य और साहससे काम लें, पुरुषार्थ-की बात सोचें और कठिनाइयोंसे लड़ने और उन्हें परास्त करनेका चाव रक्खें, अपनी उत्तम शक्तियोंके ऊपर विश्वास रक्खें, तो सचमुच हम संकटको बिना हानिके पार कर सकते हैं।

बाल कितना छोटा-सा होता है, पर वस्तुतः वह अंदर गहरी जड़ें रखता है। उसी प्रकार मनुष्यके साहसकी गहरी जड़ें उसके विश्वासमें हैं। यह पराक्रम और पुरुषार्थ हमारे भीतर मौजूद है।

जो व्यक्ति बाहरसे बलवान् किंतु भीतरसे दुर्बल है, वह किसी आँधी-तूफानसे खोखले पेड़की तरह उखड़कर गिर जायगा और परिस्थितियाँ अनुकूल न हुईं तो कभी भी ऊपर न उठ सकेगा। किंतु जिस व्यक्तिमें भावात्मक बलिष्ठता होगी, हिम्मतकी पूँजी जमा रही होगी, उसे विपरीत परिस्थितियोंसे लड़नेमें कोई बड़ी परेशानीका अनुभव न होगा।

भीतरी बल (आत्मबल) सूर्यकी प्रखर तेजस्विता-जैसा है, जो घने बादलोंको चीरकर भी अपने अस्तित्वका परिचय देता रहता है। आत्मविश्वासके बराबर सहारा संसारकी और किसी सहायता और सुविधासे नहीं मिल सकता है।

दीनता और दुर्बलता दिखाकर या अपनेको कमजोर मानकर जो दूसरोंकी सहानुभूतिकी आशा रखते हैं, वे भ्रममें हैं।

कठिनाइयाँ जीवन-विकासके लिये अनिवार्य हैं

कार्लाइल नामक अंग्रेजीके विद्वान्‌ने बड़े अनुभवकी बात लिखी है, जिसका एक-एक शब्द नयी प्रेरणासे परिपूर्ण है—

मनुष्यको कठिनाइयोंसे द्वेष नहीं, प्रेम ही करना चाहिये। उन्हें जीवनरूपी पाठशालाके लिये जरूरी मानना चाहिये। कठिनाइयोंकी टक्करसे आदमीमें शक्ति आती है। अखाड़ेमें कुश्ती सिखाते हुए उस्ताद शिष्यको बार-बार पटकनी देकर गिराता है। चोटें लगती हैं, मोच आती है, झटके लगते हैं, धूल और पसीनेमें लथपथ हो जाता है, भयंकर थकान आती है, पर उसी श्रमसे आदमी मजबूत बनता है। उसके शरीरमें दम आता है। अङ्ग-प्रत्यङ्ग शक्तिशाली बनते हैं।

इसी प्रकार कठिनाइयाँ जीवनमें न आवें, आपत्तियोंका सामना न करना पड़े, मुसीबतोंसे टक्कर न हो, तो मनुष्यका जीवन नितान्त निष्क्रिय तथा निरुत्साहपूर्ण बन जाय। इसलिये जिंदगीको बनानेके लिये कठिनाइयोंको जीवन-विकासके लिये एक अनिवार्य उपाय मानकर उनका स्वागत करना चाहिये। उनकी चुनौती स्वीकार करनी चाहिये और एक आपत्तिको सौ कष्ट सहकर भी दूर करते रहना चाहिये। यही पुरुषार्थ है, यही मनुष्यता है और यही सफलता तथा उन्नतिका एकमात्र उपाय है।

'असमं क्षत्रमसमा मनीषा।' (ऋग्० १। ५४। ८)

अर्थात्‌ अतुलित शौर्य और असीम बुद्धि धारण करो। जहाँ अदम्य साहस और दूरदर्शिता है, वहाँ सब कुछ है।

अनुभवकी अमूल्य निधियाँ

धर्म हमारे दैनिक जीवनका साथ और पथ-प्रदर्शक है, प्रतिदिन और प्रतिपल व्यवहारमें आनेवाली जीवनपद्धति है। अनेक महान् व्यक्तियोंके जीवनमें धर्मने उन्हें पाप-पङ्कसे बचाया है। यहाँ कुछ उदाहरण दिये जाते हैं —

ईश्वर सब कुछ देखता है

मंगोलियामें चांगशेन नामक एक न्यायाधीश रहते थे। वे बड़े धार्मिक वृत्तियोंके पुरुष थे। वे धर्मको सदा दैनिक व्यवहारमें लाया करते थे। इस कारण अनेक बार उन्हें अभावग्रस्त जीवन भी व्यतीत करना पड़ता था।

एक दिनकी बात है—

उनके एक धनिक मित्र उनके पास आये। शिष्टाचारकी औपचारिक बातें होनेके बाद उन्होंने अशर्फियोंकी एक थैली निकाली और बड़े आदरसे उन्हें भेंट करते हुए कहा—

'हमारे और आपके अतिरिक्त इस धनराशिकी बात कोई नहीं जान सकेगा। कृपा कर आप इस थैलीको रखिये और मेरा काम कर दीजिये। भला, इसे कौन देखता है? कोई भी इस धनके विषयमें चर्चा नहीं करेगा और आपकी प्रतिष्ठाकी भी कोई हानि नहीं होगी। इस गुप्त बातसे निश्चिन्त रहिये। मुझसे यह तथ्य कहीं नहीं फूटेगा।'

धनका लोभ बड़े-बड़े व्यक्तियोंको धर्मके मार्गसे डिगा देता है। आये हुए पैसेको कौन छोड़ता है? और विशेषकर जब वह किसी विश्वस्त व्यक्तिके द्वारा दिया जाय।

वे महोदय यह मान बैठे थे कि रिश्वत स्वीकार कर ली जायगी तथा उनका अनैतिक कार्य चुपचाप हो जायगा।

पर न्यायाधीशके धर्मने अपनी आवाज ऊँची की। वे सदासे धर्मको दैनिक व्यवहारमें लानेके पक्षपाती रहे थे। उनकी अन्तरात्माने उन्हें नैतिक बल दिया और वे बोले—

'मित्र! यह मत कहो कि इस अनैतिक धनको कोई नहीं देखता! नैतिकता मानव-स्वभावका एक अनिवार्य अङ्ग है। मनुष्यकी गुप्त धर्मबुद्धिसे स्वयं उसे आन्तरिक तृप्ति और मनःशान्ति मिलती है। जिस दृष्टिसे हम दूसरोंके कार्योंकी आलोचना करते हैं, उसी कटु दृष्टिसे स्वयं अपनी भी आलोचना करनी चाहिये।

इस अनैतिक धनको मांसके नेत्र तो नहीं, पर घर और धरती देखते हैं। आकाशके सैकड़ों नेत्र हमारे गुप्त कार्योंको देखते हैं और सबका मालिक असंख्य नेत्रोंवाला परमेश्वर तो दिन-रात प्रतिपल हमारे बाह्य और आन्तरिक कार्योंको देखता रहता है। मैं यह अनैतिक धन कदापि न लूँगा। अपनी नैतिक बुद्धिके अनुसार ही आपके मुकदमेका निर्णय दूँगा।'

न्यायाधीशने अनैतिक धन नहीं लिया। धर्मकी ही विजय रही।

मैं धर्मबुद्धिकी अवहेलना नहीं करूँगा

<u>सन् १९१५ की एक घटना है—</u>

लोकमान्य तिलकका विचार विदेश जानेका हुआ। धन और यातायात-सम्बन्धी अनेक अड़चनें तो थीं ही, पर एक और अप्रत्याशित कठिनाई आ उपस्थित हुई।

बात यों हुई कि समुद्रयात्राके विरुद्ध तत्कालीन रूढ़ि खड़ी हो गयी। उन दिनों समुद्र-यात्रा धर्मके विरुद्ध मानी जाती थी। जो लोग मन कड़ा करके विदेश-यात्राको चले जाते थे, उनको जाति-च्युत कर दिया जाता था। इससे कोई विदेश-यात्राकी बात ही नहीं सोच पाता था।

तिलकने सोचा, 'उन्नति और देशकी प्रगतिके लिये विदेशोंमें जाकर देखना चाहिये कि उनकी उन्नतिका क्या रहस्य है। पुराने पण्डितोंसे यदि विदेश जानेकी अनुमति मिल जाय तो फिर कोई नैतिक अड़चन न रहेगी।'

यह सोचकर महामान्य तिलक काशी पहुँचे और वहाँके एक

प्रमुख महामहोपाध्यायसे प्रार्थना की कि 'समुद्र-यात्रासे धर्महानि न होनेकी कोई व्यवस्था वे दे दें तो बड़ा अच्छा हो।'

पण्डितजीने तिलककी प्रार्थनाको सुना। उन्होंने सोचा कि अच्छा अवसर है। इस मौकेपर तिलकसे रुपया निकालना चाहिये। वे कदाचित् पहले भी धर्मकी आड़में इसी प्रकार दूसरोंसे अपना स्वार्थ-साधन करते रहे थे। अब फिर रुपयेका लोभ सामने आया। उन्होंने समस्याका हल प्रस्तुत करते हुए कहा—

'यह यात्रा धर्मशास्त्रके विरुद्ध है। साधारण स्थितिमें हम किसीको आज्ञा नहीं देते; किंतु आप यदि प्रायश्चित्तरूपमें पाँच हज़ार रुपये व्यय कर सकें तो विदेश-यात्रा करने और धर्म भी बनाये रहनेकी आज्ञा मिल सकती है। कहिये, क्या आप इस राशिका प्रबन्ध कर सकेंगे?'

तिलक किसी भी शर्तपर विदेश जानेको प्रस्तुत थे। वे यह रुपया आसानीसे जुटा सकते थे। उनकी आर्थिक हालत भी ठीक थी। वे रुपयेकी व्यवस्था करके जब रुपये देने चलने लगे, तब एकाएक उनकी अन्तरात्माने झकझोरकर कहा—

'धर्म ईश्वरका विधान है। नैतिकता हमारे समाजका सुदृढ़ आधार है। यदि यों धर्मबुद्धिकी अवहेलना की जायगी तो समाजकी नैतिक व्यवस्था खण्ड-खण्ड हो जायगी। मुझे अपने स्वार्थवश यह अनैतिक कार्य नहीं करना चाहिये।'

उनका अचेतन मन बार-बार उन्हें नैतिक बुद्धिके विरुद्ध कार्य करनेपर धिक्कारने लगा। उनकी धर्मबुद्धि रुपये देकर धर्मको

अपने पक्षमें करनेके लिये धिक्कारने लगी। अपना काम उन्हें अनुचित दिखायी देने लगा। नैतिकताके विरुद्ध आचरण करनेपर उनका भीतरी मन उन्हें कोसने लगा। वे किसी भी प्रकार अपनी धर्मबुद्धिको चुप न कर सके।

अन्तमें उन्होंने यह निश्चय किया कि अधर्म और स्वार्थ-बुद्धिको अपने ऊपर हावी नहीं होने देंगे। धर्मको रुपयोंके द्वारा कलङ्कित नहीं करेंगे।

वे रुपया लिये उल्टे पैरों वापस लौट आये और बिना व्यवस्थाके ही कार्य चलाया। उन्होंने नैतिकताकी अवहेलना नहीं की और इससे उनके गुप्त मनमें बड़ी शान्ति रही।

सबसे बड़ा धर्म मानवताकी सेवा

कलकत्तेमें 'स्वामी रामकृष्ण-मठ'की स्थापना हो चुकी थी। उसके सारे भक्त संन्यास लेकर मठमें प्रवेश कर चुके थे। मठका आर्थिक प्रबन्ध मठके खर्चेके लिये लगी जमीनके लाभसे चलता था। संन्यासियोंको भजन-पूजनके अतिरिक्त और कोई कार्य न था।

संयोगसे तभी कलकत्तेमें प्लेगका प्रकोप हुआ।

लोग बुरी तरह बीमार होने और मरने लगे। स्वामी विवेकानन्दजीसे यह न देखा गया और उन्होंने धार्मिक मठको शुश्रूषा और चिकित्सा-शिबिरमें बदल दिया। सारे अध्यात्म-साधकोंको सेवा-कार्योंमें लगा दिया और कहा—

'बन्धुओ! आज धर्मका रूप बदल रहा है। भगवान्‌ने अपने सच्चे भक्तों और संन्यासियोंकी परीक्षा ली है। आज

मनुष्यता और महामारीके बीच संग्राम छिड़ गया है। आज मठके प्रत्येक संन्यासीको अपने धर्मकी परीक्षा देनी है, अपनी सचाईका प्रमाण देना है। रोगी, अनाथ, अपंग, दुर्बल तथा निस्सहायकी परिचर्या धर्मका अङ्ग है। रोगियोंकी इतनी सेवा और परिचर्या करो, इतनी सहानुभूति बरसाओ कि मठमें आया हुआ कोई भी रोगी मृत्युसे पराजित न होने पाये। धनकी कमी होनेपर मैं मठकी भूमि बेच दूँगा। चिन्ता न करना। सेवा धार्मिक कार्य है। रोगियोंकी सेवा ही प्रभुकी सेवा है।

स्वामी विवेकानन्दजीकी प्रभावोत्पादक पुकारपर मठके सब संन्यासी रोगियोंकी सेवामें धार्मिक कार्यकी तरह जुट गये।

धन नहीं—ज्ञान, भक्ति और विवेक चाहिये

स्वामी विवेकानन्दजी (उस समयके नरेन्द्र) के पिताने जिस बहुतायतसे धन कमाया, उससे अधिक तत्परतासे उसे खर्च भी कर डाला। नतीजा यह हुआ कि जब उनका स्वर्गवास हुआ, तब परिवारकी आर्थिक स्थिति डावाँडोल हो गयी, गुजारा चलना भी कठिन हो गया।

स्वामीजी (नरेन्द्र) उस समय बी० ए० पास कर चुके थे, पर दुर्भाग्यसे उन्हें बहुत प्रयास करनेपर भी कोई नौकरी नहीं मिल सकी। उनकी माँ और छोटे भाई-बहिनोंके भूखे रहनेकी नौबत आ गयी।

बी० ए० होकर भी आर्थिक मजबूरी थी। बड़ी विकट

परिस्थितिमें वे पिस रहे थे। आखिर करें तो क्या उपाय करें। प्रत्यक्ष कोई तरकीब नहीं सूझती थी।

आखिर विवश और परीशान होकर वे अपने गुरु श्रीरामकृष्ण परमहंसजीके पास गये और अपनी आर्थिक विवशताकी दर्दनाक हालत उनसे कह सुनायी।

श्रीरामकृष्णजीने बहुत सोचा। फिर उनसे कहा—

'आज तुम काली मातासे जो कुछ माँगोगे, वह सब मिल जायगा; क्योंकि तुम्हारी भक्ति सच्ची है। विश्वासमें ही बल है। श्रद्धा सदा-सर्वदा फलवती होती है। जाओ, माँग लो जाकर।'

स्वामी विवेकानन्दजी परीशान थे। मजबूरी क्या नहीं कराती ? क्षुधातुर आदमी कुछ-का-कुछ कर बैठता है, धर्म-अधर्मका विवेकतक प्रायः नष्ट हो जाता है।

स्वामीजीकी भक्ति निश्चय ही अटूट थी।

वे आधी रातके बाद रुपयेकी सहायताकी माँग करनेके लिये काली माताके मन्दिरमें गये।

ओफ! यह क्या हुआ! यह कैसा परिवर्तन!

अब स्थिति यह थी कि वे हाथ जोड़े खड़े हैं और जो कहना चाहते थे, वह एकाएक भूल गये हैं।

वे अपने लौकिक स्वार्थको विस्मृतकर यह शब्द बोलने लगे—

'माँ! मैं और कुछ नहीं चाहता। मुझे केवल ज्ञान दे। भक्ति दे! विवेक दे और सांसारिक प्रपञ्चोंसे वैराग्य दे।'

श्रीरामकृष्णजीको इस माँगपर आश्चर्य हो रहा था। यह भूख मिटानेको धन क्यों नहीं माँगता ? उन्होंने फिर उन्हें माताके पास भेजा।

एक बार नहीं, तीन बार भेजा—अपनी माँग प्रस्तुत करने और माँके द्वारा उसे पूर्ण होनेका विश्वास दिलाकर।

किंतु आप जानते हैं क्या हुआ ?

स्वामी विवेकानन्द एक बार भी माँसे रुपया-पैसा न माँग सके।

संसारसे अज्ञान दूर करना भी एक बड़ा धर्म है

स्वामी विवेकानन्दजीको अपने गुरुकी कृपासे ईश्वरीय दर्शनके साथ तत्त्वज्ञान प्राप्त हो गया था। वे काशीपुरके एक बागमें अपने गुरुकी परिचर्या कर रहे थे।

ज्ञान प्राप्त होते ही स्वामीजीके मनमें एक विचार आया—

'बस, अब मैं संसार त्यागकर एकमात्र समाधिस्थ होकर परमानन्दका अनुभव करता हुआ सम्पूर्ण जीवन एकान्त साधनामें बिताऊँगा।'

अन्तर्यामी गुरुने यह बात जान ली और कहा—

'विवेकानन्द ! तुम्हारा यह स्वार्थपूर्ण परमार्थ उचित नहीं। अभी तुम्हें छुट्टी नहीं है। समाज और संसारसे अज्ञान दूर करना भी धर्म है और यह व्यावहारिक धर्म-कार्य अब तुम्हें सम्पन्न करना है। एकान्तमें बैठकर आत्मसुखका आनन्द तुम्हें अभी नहीं लेना है। अभी अपनी विद्या-बुद्धिद्वारा नैतिक जागरण करो।'

अब विवेकानन्दजी क्या करते !

उन्होंने गुरुकी आज्ञाको शिरोधार्य किया। ब्रह्मानन्दमें लीन हो एकान्तमें बैठ जानेकी अपेक्षा लोक-सेवामें तन-मनसे लग गये।

धर्मने पापसे रक्षा की थी

महात्मा गांधी बचपनमें न जाने कैसे कुसङ्गतिमें पड़ गये। कुसङ्गति संक्रामक रोगकी तरह विषैली है। उसमें पड़कर मनुष्य प्रायः वे बुरे कार्य करनेपर उतारू हो जाता है, जो सम्भवतः वह साधारण जीवनमें नहीं करेगा।

युवक गांधी एक ऐसी कुविचारपूर्ण दूषित परिस्थितिमें पहुँच गये, जिसमें सिगरेट पीना, मांस खाना और पर-स्त्री-गमन-जैसा पाप कर सकते थे। दुष्ट मित्र उन्हें फुसलाकर एक वेश्याके यहाँ ले गया। वे एक बड़ी ही नाजुक परिस्थितिमें थे। साधारण संस्कारोंवाला मामूली युवक जरूर पथभ्रष्ट हो जाता, पर अकस्मात् गांधीजीके बचपनके धार्मिक सात्त्विक संस्कार जाग उठे। उन्हें इस पापसे बचानेके लिये उनकी धर्मबुद्धि ढालकी तरह रक्षाके लिये खड़ी हो गयी।

जिस प्रकार सख्त डालीको आसानीसे जिधर चाहें, उधर नहीं मोड़ा जा सकता, अथवा कच्चे बर्तनपर बने धब्बे पकनेपर नहीं मिटाये जा सकते, उसी प्रकार मनुष्यके बचपनके धार्मिक संस्कार भी सरलतासे नहीं मिटाये जा सकते। गांधीजीको बचपनसे ही सिखाया गया था कि सिगरेट, मांस-मदिरा और परस्त्री-गमन भयंकर पाप हैं। मनुष्यको इनसे सावधान रहना चाहिये।

गांधीजीकी अन्तरात्मा इस पापके लिये अंदरसे उनकी भर्त्सना

करने लगी। नतीजा यह हुआ कि वे पापसे बच गये। धार्मिक संस्कारोंकी शिक्षा-दीक्षा तथा अभ्यासने उन्हें व्यभिचारके पाप-पङ्कसे बचा लिया।

धर्मबुद्धि सदा हमें पापोंसे सावधान करती है। वह ईश्वरकी आवाज है, जो सदा मनुष्यको ठीक मार्गपर ही चलाती है।

दूसरोंकी सेवाका ध्यान

अहमदाबाद जेलसे छूटनेके बाद पण्डित नेहरूने एक सार्वजनिक सभामें बोलते हुए बताया कि वे निकट भविष्यमें मलाया जानेवाले हैं।

भाषण समाप्त होनेपर उनके पास एक पर्चा आया। उसमें लिखा था—'मेरा बेटा बीमार है। उसके इलाजके लिये अमुक दवा चाहिये। यह दवा मलायाके अतिरिक्त कहीं नहीं मिलती। आप मलाया जा रहे हैं। यदि वापसीमें आप यह दवा लेते आयें, तो बड़ी कृपा होगी।'

नीचे उस व्यक्तिने अपना पूरा पता लिख दिया था।

कहाँ भारत-जैसे देशका एक महान् नेता और कहाँ एक मामूली व्यक्तिका उनसे दवाई लानेके लिये आग्रह। कोई और होता तो वह पर्चेको मड़ोरकर यों ही फेंक देता। पर नेहरूजी दूसरोंकी सेवाको धर्मका एक व्यावहारिक अङ्ग समझते थे। जिससे जिसकी जितनी सेवा बने, उसे उतनी सेवा अवश्य करनी चाहिये। रोगियों, गुरुजनों, निर्बलों, वृद्धों और असहायोंकी सेवा धर्म है। मलायाके आवश्यक एवं व्यस्ततम कार्यक्रमोंके बीच नेहरूजी वह

दवा लाना न भूले और उसी हिफाजतसे रक्खे हुए मौखिक पर्चेके आधारपर भारत आकर दवा उस रोगीके पास भिजवा दी।

एक बार पण्डित नेहरू कमला नेहरू अस्पताल जा रहे थे। मार्गमें उनकी दृष्टि अपने पिताके समयकी अपङ्ग जमादारिनपर पड़ी। उस जमादारिनने नेहरूजीको गोद खिलाया था। वे तुरंत कार रुकवाकर उतर पड़े और दौड़कर उसके गलेसे लिपट गये।

गद्गद कण्ठसे पूछने लगे, 'मेरी लछमिनियाँ माई! अब तुम कैसी हो?'

जमादारिन प्यारमें आशीर्वाद देकर भावुकतामें रो पड़ी। पण्डितजीका आत्मभाव, परदुःखकातरता और सेवाभाव इतने बढ़े हुए थे कि वे सबका ध्यान रखते थे। उन्होंने जमादारिनके जीवनकी समुचित व्यवस्था कर दी।

सन् १९२९ की बात है—

महात्मा गांधीजीके सार्वदेशिक दौरेके समय श्रीप्रकाशजी और पण्डित नेहरू मसूरीके एक कमरेमें ठहरे हुए थे। एकाएक श्रीप्रकाशजीको सिरदर्दका दौरा पड़ गया। जब नेहरूजी दिनभरके कामसे थककर कमरेमें लौटे तो देखा कि श्रीप्रकाशजी आँखें बंद किये पड़े हैं और नौकर उनका सिर दबा रहा है।

पण्डित जवाहरलालने हाल पूछा। चिन्तित हो गये और सहायता-सेवाकी दृष्टिसे लगभग दो-डेढ़ मील चलकर एक केमिस्टकी दूकानसे सिरदर्द दूर करनेकी गोलियाँ लेकर आये और रोगी

श्रीप्रकाशजीको खिलायीं। इससे उनका दर्द कम हुआ और वे सुखकी नींद सो सके।

इसी प्रकार १९३३ में काँग्रेसकार्यकारिणीके एक सदस्य श्रीरामशरणको सिरदर्द हुआ। जब श्रीनेहरूको पता चला तो उनका सिर दबाते हुए दवा मलने लगे। बहुत कुछ मना करनेपर भी वे तबतक उनका सिर दबाते और दवा मलते रहे, जबतक कि रोगी महाशय सो नहीं गये।

ये घटनाएँ स्पष्ट करती हैं कि धर्मका एक व्यावहारिक पक्ष भी है, जो दैनिक जीवनमें प्रतिपल प्रतिपग काममें आनेवाला है। धर्म एक व्यावहारिक जीवन-पद्धति है। हमें अपने गुणोंका और आत्माका विकास उन्हें समाजके हितमें लगाकर ही करना चाहिये। गुणोंकी परख आपत्ति-कालमें ही होती है। कष्ट और कठिन परिस्थितियोंमें भी हम धर्मको धारण किये रहें। मनुष्यकी उन्नतिका यही मार्ग है।

मनुष्यमें सद्‌गुणोंकी खान भरी पड़ी है। ईश्वर अन्तरात्मामें बसे हुए हैं। आवश्यकता इस बातकी है कि हम उन्हें दैनिक जीवन और व्यवहारके द्वारा प्रत्यक्ष करें। हम श्रेष्ठ बनें तथा धर्मको धारण करें तो संसार श्रेष्ठ बनेगा। धर्म हमें अच्छा नागरिक बनाता है। आपमें ईश्वरत्व सो रहा है। भले कार्योंसे, सज्जनता और ईमानदारीसे उसे जाग्रत् कीजिये। धर्मको नित्यप्रतिके व्यवहारमें लाइये। वास्तवमें हमें क्रियात्मक धर्मकी आवश्यकता है। धर्मको जीकर प्रत्यक्ष कीजिये।

वे उनमें थे, जो जन्मते हैं, पर मरते नहीं

समय-समयपर मनुष्यसमाजमें ऐसी महान् विभूतियाँ चमकती रही हैं, जिन्हें गुदड़ीके लाल कहा जा सकता है। इन चमकते हीरोंके हाल आये दिन पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित होते रहते हैं। यहाँ भिन्न-भिन्न स्थानोंसे संकलित कुछ महकते जीवन-फूलोंकी प्रेरक घटनाएँ दी जा रही हैं, जो आज भी यह प्रमाणित करते हैं कि 'कीर्तिर्यस्य स जीवति', वे उनमें थे, जो जन्मते हैं, पर मरते नहीं—

१. सौ मोहरोंमें मैं बेशकीमती मानवताको न बेचूँगा

एक बार इटलीकी एक नदीमें ऐसी बाढ़ आयी कि मध्यके कुछ भागके अतिरिक्त, जिसपर एक मकान बना हुआ था, सारा-का-सारा पुल बह गया। उस मकानके दुखी आर्त मनुष्य खिड़कियोंसे आँक-झाँककर करुणा-व्यथित स्वरमें किनारे खड़े लोगोंको प्राण बचानेके लिये चीख-चीखकर पुकारने लगे। मकान-

का वह टूटा हुआ भाग बहनेको था। बाढ़के रूपमें मौत मुँह फैलाये बेचारोंको निगलनेको तैयार थी। भयावह दृश्य था!

………अब बहे! अब गये!! अब डूबे, अब मरे। मौत ………अट्टहास करती, भयानक आकृतिकी मृत्यु!!

नदीके तटपर दुखी दर्शकोंकी विशाल भीड़ खड़ी दर्दनाक दृश्य देख रही थी। सब उन्हें बचाना चाहते थे, पर अपनी जिंदगी तो सबको प्यारी है। कौन किसीके लिये व्यर्थ ही प्राण दे। दुनिया कितनी स्वार्थी है।

इतनेमें उस जन-समूहमें एक अमीर आदमी दयार्द्र हो उच्च स्वरमें बोला—

'यदि कोई आदमी उस पारके संकटमें फँसे आदमियोंको बचा दे, तो मैं उसे सौ मोहर इनाममें दूँगा। है कोई साहसी; जो इस इनामको जीते और इस बाढ़मेंसे इन अभागोंकी प्राण-रक्षा करे।'

एक गरीब युवक सुनता रहा। परोपकार उनके मनमें जगा। घोषणा फिर दुबारा दुहरायी गयी। उच्च स्वरमें दूर-दूरतक घोषित की गयी। उससे न रहा गया।

उस गरीब युवकने साहस किया। वह एक नाविक था, शरीरसे हृष्ट-पुष्ट और मानवताकी सहायताके लिये अदम्य साहस और उत्साह लिये वह नाव लेकर लहरोंकी परवा न करते हुए नदीके उस शेष भागतक चला गया। लोग उसके जीवनको संकटमें देखकर समझ रहे थे कि वह भी प्राण खो बैठेगा।

इनामका क्षुद्र मोह उसे सदा-सर्वदाके लिये दुनियासे बिदा कर देगा। पैसेका मोह अंधा है।

पर वह साहसी जीता। सैकड़ों मुसीबतें सहता मौतसे लड़ता और उसे परास्त करता, वह वीर अन्ततः उन संकटमें फँसे व्यक्तियोंको पुनः सुरक्षित तटतक ले आया।

अब सभी उसकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा कर रहे थे। अतिशयोक्तिपूर्ण शब्दोंमें प्रशंसा कर रहे थे। संकटसे बचे हुए व्यक्ति भी कृतज्ञतासे झुके हुए थे।

तब वह धनाढ्य व्यक्ति हर्षित मुद्रामें अपनी घोषणाके अनुसार उस निर्धन युवकको सौ मोहरें इनाममें देने लगा। सब समझ रहे थे कि इस बड़े इनामको पाकर वह गरीब युवक अपने भाग्यकी सराहना करेगा।

पर यह क्या!

उस युवकने सौ मोहरोंका वह इनाम लेनेसे इन्कार कर दिया।

अमीर व्यक्ति दम्भपूर्वक बोला---'तुम अपने प्राणोंकी परवा न कर मौतके मुँहमें जाकर इन मुसीबतमें फँसे आदमियोंको निकाल लाये हो। हर क्षण तुम्हारे प्राणोंके नष्ट होनेका डर था। तुम्हें अपनी इस मजदूरीको सहर्ष ले लेना चाहिये, यह लो अपनी सौ मोहरें। गिन लो, पूरी हैं न?'

इसपर उस नाविक युवकने जो कहा, वह मानवताकी धरोहर है। उसपर आज भी सबको गर्व होना चाहिये।

वह बोला—'मैं सौ मोहरें लेकर मानवताको नहीं बेचूँगा। मैंने धनके लालचमें इन बेचारोंको नहीं बचाया है। यह रकम इन्हीं बेसहारा आदमियोंको दे दीजिये; क्योंकि मेरी अपेक्षा इन्हें इनकी अधिक आवश्यकता है।'

सत्य ही कहा है—

वस्यो भूयाय वसुमान् यज्ञो वसु वंशिषीय वसुमान् भूयासं वसु मयि धेहि ॥

(अथर्ववेद १६ । ९ । ४)

हे मनुष्यो! ईश्वरपर पूर्ण आस्था रक्खो और इस संसारमें परोपकार करते हुए श्रेष्ठ पद प्राप्त करो। परोपकारकी पूँजी सदा अक्षय कीर्ति देनेवाली दैवी विभूति है। परोपकारी इस लोकमें प्रसन्न रहता है और मरनेके बाद सदा याद किया जाता है।

२. एक विधवाका अनुकरणीय त्याग

मुंगेरसे भागलपुर जानेवाली सड़कपर लगभग डेढ़ सौ वर्षका पुराना एक पक्का कुआँ है। इसे श्यामो पिसनहारीका कुआँ कहते हैं। कुएँके आसपास नीम, पीपल और गूलरके पेड़ हैं, जिनकी ठंडी छायामें यात्रियोंको विश्राम करनेके लिये अच्छा स्थान बन गया है। आजसे करीब १५० वर्ष पहले श्यामो नामक सत्तर वर्षीय बुढ़ियाने इसे बनवाया था। इसका नाम आजतक लोगोंकी जबानपर चला आता है। इसकी कहानी कुछ इस प्रकार है—

जब श्यामो केवल १३ वर्षकी थी तो विवाहके एक वर्षके भीतर ही विधवा हो गयी थी। ससुरालमें उसका तिरस्कार किया गया और

उसे गालियाँ दी गयीं। वह फिर वापिस बापके पास आ गयी। कुछ दिन तो माँ-बाप जीवित रहे, पर उनका स्वर्गवास हो जानेपर सब कुछ भार उसीपर आ गया। श्यामोने सोचा—

'युवावस्था बैठे रहनेसे नहीं, मेहनत-मजदूरी और काम करनेसे कटेगी। श्रमकी रोटी खाना ही मनुष्यका धर्म है। जबतक हाथ-पाँव चलते हैं, कुछ-न-कुछ करना ही चाहिये। धर्मपर डटे रहना, उन्हींके लिये सम्भव होता है, जो अपने शरीर और मनको काम-धंधेमें जुटाये रहते हैं। फालतू बैठे रहने-वाले मनुष्यके दिमागमें वासना और पापके विचार आते हैं। उनका रास्ता भटक जानेका भी डर बना रहता है। मैं परिश्रम कर अपने हाथोंकी रोटी कमाकर खाऊँगी और कुछ परोपकारका कार्य भी करूँगी।'

बस, उसका संकल्प बन गया। सत्संकल्पमें परमेश्वरका निवास होता है।

उसने श्रमका तपस्यामय जीवन अपनाया। विधवा युवती प्रातःकाल दो घंटे रात रहे उठती और दिन निकलनेतक पाँच सेर आटा पीस लेती। फिर प्याऊपर काम करती। घास काटकर बेचती। जो भी काम मिलता, उसीको मनोयोगपूर्वक करती रहती। किसीका भोजन बना देती, तो कभी किसीके कपड़े धो देती; सफाईमें सहायता दे देती। दोपहरमें सुस्ताकर फिर आटा पीसना प्रारम्भ करती। फिर तीसरे पहर चर्खा चलाकर सूत कातती। खूब श्रमकी आदत पड़ गयी। जैसा काम मिला वह करती और पैसे इकट्ठी करती रही।

जीवनभरमें उसने ५००) रुपये कमाये। सोचा कि इन्हे किसी धर्मके काममें लगाना चाहिये। आज जहाँ पक्की सड़क है पहले यहाँ कच्चा रास्ता था। पास कोई जल पीनेका स्थान न था। यात्रियोंको इसकी बड़ी कठिनाई रहती थी। उसने अपने जीवनभरकी सारी संचित कमाई वहाँ अच्छा पक्का कुआँ बनवानेमें लगा दी। उन दिनों सस्तेका जमाना था। इतनी थोड़ी-सी पूँजीमें वह कुआँ बन गया। आज भी वह कुआँ उस विधवा स्त्रीकी धर्म-परायणता, परिश्रमशीलता, संयम और अपूर्व त्यागका स्मरण बना हुआ है।

क्या हम इस प्रकारका साहस कर कोई पुस्तकालय, धर्मशाला या प्याऊ इत्यादि नहीं बनवा सकते?

दिवंगत श्यामोकी आत्मा लोगोंको परमार्थ और उदारताका उपदेश देती है। भले ही उसे कोई न सुने! वह कहती है कि हम चाहे जिस स्थितिमें हों सत्कर्म करें, दानशील बनें और सुपथसे कभी विचलित न हों।

३. उसकी कीर्ति आज भी महक रही है!

अम्बाला पैसेंजर भटिंडाके पासकी पुलियापरसे गुजरी तो अचानक विस्फारित नेत्रोंसे इंजन-ड्राइवर श्रीदौलतरामने देखा कि सामनेकी पुलिया टूटी हुई है। यदि ट्रेन उसपरसे गुजरेगी, तो भयानक नुकसान होगा और हजारों व्यक्ति मक्खियों-की मौत मर जायँगे। उसका हृदय मानवीय दया और करुणासे

अभिभूत हो उठा। वह ट्रेनको इस भयानक दुर्घटनाको सहन नहीं कर सकता था; पर वह क्या करे?

मृत्युका ताण्डव उसके सामने था। वह कोई योजना सोच रहा था।

उसने पलक मारते सोचा, तुरंत निर्णय किया। क्षणभरमें ही उसने अपनी देह और प्राणोंका पूरा बल लगाकर बैकुअम ब्रेक दबाया। यही वह सोच सका।

इंजन एक बड़े झटकेके साथ ठहर गया। गाड़ियोंमें झटके लगे, मुसाफिर गिरे, कोई इधर लुढ़का तो कोई उधर! किंतु सौभाग्यसे मरा कोई नहीं!

कम-से-कम दो हजार आदमी मरनेसे बच गये। यह सबसे बड़ा पुण्य कार्य था। पर दौलतरामका क्या हुआ?

इंजनका झटका इतना भयंकर था कि उसने दौलतराम-को ब्रेकमें बुरी तरह उलझा दिया। वह देरतक उसीमें फँसा रहा....और हाय! उसीमें उसके प्राण-पखेरू उड़ गये! पर मानवता-का फूल असमय ही मुरझा कर धूलमें गिर पड़ा!!

निश्चय ही दौलतरामकी मृत्यु एक शहीदकी मृत्यु है! वह उनमें एक था, जो जन्मते हैं, पर अपनी कीर्ति चिरस्थायी छोड़ जाते हैं। दौलतरामका बलिदान आज भी अमर है। वह मानवताके अँधेरे-पथको आलोकित करनेवाला है।

४. युद्धके भयावने अँधियारेमें महकती मानवता!

दूसरे महायुद्धकी बात है—

एक जापानी सैनिक गम्भीर रूपसे घायल हो गया। उसके रक्त बह रहा था, धीरे-धीरे कमजोरी आ रही थी और चेहरा मुर्झाया जा रहा था। मौतकी काली छाया लम्बी होकर उसपर पड़ रही थी। यह स्पष्ट था कि अब वह इस दुनियामें कुछ ही क्षणोंका मेहमान था।

एक भारतीय सैनिककी प्रसुप्त मानवता अचानक उस युद्ध-भूमिमें भी जाग्रत् हो उठी। उसने सोचा शत्रु है तो क्या! अब इन मरते हुए क्षणोंमें तो इस सैनिकपर दया ही दिखानी चाहिये। मृत्युके इन आखिरी क्षणोंमें शत्रुता कैसी!'

उसने अपनी बोतलसे चाय निकाली और एक छोटे गिलास-में भरकर वह उस घायल सैनिकको पिलाने चला। उसने धीरे-से बड़े प्रेमपूर्वक उसका सिर अपनी गोदमें रक्खा, चायका प्याला उसके मुँहसे लगाया। बोला—'मेरे मित्र! बुद्धके देशके इस सैनिकके हाथों युद्धके मोर्चेपर वीरता देखी, अब प्यारके हाथों चाय पिओ।'

किंतु हाय! क्या? यह कैसी बर्बरता! मानवीयताके हृदयमें भयंकर आघात!

उस दुष्ट जापानीने दयाका बदला यह दिया कि अपना चाकू निकालकर उस भारतीय सैनिककी रानमें घोंप दिया। भारतीय सैनिकके रक्त बहने लगा।

अब दोनों फिर गिर पड़े। भारतीय सैनिकके घात तो लगा, पर जापानी सिपाहीकी कमजोरीके कारण घात घातक न हुआ।

कुछ घंटों बाद जापानी घायल सिपाही भारतीय अस्पताल लाया गया। भारतीय सिपाहीकी भी मरहम पट्टी हो गयी। जब वह ठीक हो गया, तो वही हिंदुस्तानी सैनिक दुबारा चायका प्याला लेकर गया और उसे प्रेमपूर्वक पिलाकर ही लौटा।

जापानी सिपाही अब पश्चात्तापसे जल रहा था। उसे अपने कियेपर बड़ी आत्मग्लानि हो रही थी।

जापानी सिपाहीने कहा—'दोस्त! मैं अब समझा कि बुद्धका जन्म तुम्हारे ही भारतदेशमें क्यों हुआ था!'

मानवता जीवनकी रातरानी है, जो भयावने अँधियारेमें भी महकती है, गमकती है।

५. वह जो अपनी दयालुता और साहसके कारण असाधारण हो उठा!

रेलवेका एक साधारण कर्मचारी गेटमैन पन्नालाल पाठक था। उसका काम रेलगाड़ी आनेके समय मुख्य सड़कका द्वार बंद करना था। इस छोटेसे काममें भला कौन परोपकारका काम हो सकता है? आप कहेंगे, 'इसमें कुछ भी परोपकारका काम नहीं हो सकता।'

पर आपका अनुमान ठीक नहीं है।

बड़ौदा-मथुरा पैसेंजर ट्रेन रतलाम स्टेशनपर आ रही थी। सिगनल हो गया था। पन्नालाल ड्यूटीके अनुसार सड़कका फाटक बंद करके एक ओर हो गया था। रातके आठ बजे थे। संयोगसे

तीन मजदूर स्त्रियाँ दिनभर काम करके वापस घर लौट रही थीं, थकी-माँदी और अपने बच्चोंको देखनेके लिये उत्सुक ! गाड़ी कुछ फासलेपर थी । उन्होंने सोचा जल्दीसे फाटकके पाससे निकलकर लाइन पार कर लेंगी । वे धीरेसे तारसे निकलीं । संयोगसे कँटीले तारमें उनका कपड़ा अटक गया और वे बुरी स्थितिमें फँसी रह गयीं ।

किसी प्रकार सुलझकर वे पटरीपर आयी ही थीं कि रेलगाड़ीकी धड़धड़ाहट सुनकर बुरी तरह घबरा गयीं । साहस जाता रहा । रेलगाड़ीका इंजन उन्हें पीसकर चकनाचूर कर देनेके लिये उनके सामने था ।

पन्नालालने यह सब देखा और प्रबल साहसके साथ कूद-कर लाइनपर आ गया ।

उसने एक ही साँसमें उन दोनों महिलाओंको अपनी भुजा-में दबाया और फौरन लाइनसे बाहर खींच लाया ।

अब गाड़ी एकदम सामने थी, मृत्युका दृश्य था । फिर भी उसने साहस किया और तीसरी मजदूरिनको बचानेके लिये कूदा, पर हाय !

क्रुद्ध इंजनने उसे एक भयंकर टक्कर देकर दूर फेंक दिया और तीसरी महिलाका शरीर पीसता-काटता हुआ, वह निर्मम इंजन धड़-धड़ाता हुआ आगे बढ़ गया ।

पन्नालाल इस सब संघर्षसे मूर्छित हो गया और लगा कि वह अब इस दुनियामें नहीं रहेगा !

पर अस्पतालमें उसकी विशेषरूपसे देखभाल की गयी। डाक्टरोंने इस मानवताके सिरमौरको मौतके मुँहसे खींच लेनेकी बड़ी कोशिश की। ईश्वर भले कामोंमें सदा सहायक होता है। भाग्यसे वह स्वस्थ हो गया।

मेजपर होशमें आते ही उसके मुँहसे जो शब्द निकले वह यह थे—

'उस तीसरी बहिनका क्या हुआ?'

वाह रे मनुष्य! मृत्युके इन क्षणोंमें भी अपनी नहीं, उस गरीब मजदूर स्त्रीकी ही चिन्तामें मग्न था उसका मानस!

मनुष्यकी सोयी हुई मानवता कभी भी जाग्रत् होकर परोपकारके अद्भुत कर्म करा सकती है। वे कार्य जो मनुष्य किसी भी सांसारिक लोभके वशमें होकर नहीं करता, अन्तरात्माके दैवी प्रभावमें एकाएक कर बैठता है। उसके अंदर सोया हुआ ईश्वर जागकर उसे परोपकारके शुभ कार्योंकी ओर तीव्रतासे प्रेरित करता है।

अद्या नो देव सवितः प्रजावत् सावीः सौभगम्।
परा दुःष्वप्न्यं सुव॥ (ऋग्वेद ५। ८२। ४)

याद रखिये, जो ईश्वरकी आराधनाके साथ-साथ पुरुषार्थ और परोपकार करते हैं, उनके दुःख और दारिद्र्य दूर होते हैं और ऐश्वर्य बढ़ता है।

मनुष्यमें ईश्वरकी झाँकी

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥
(गीता ५ । १८)

वह दयावान् महापुरुष—

बड़े आदमी अपनी विशेषता छोटी-छोटी बातोंमें प्रकट कर देते हैं । तीक्ष्णबुद्धिवाले व्यक्ति इन विशेषताओंको देखकर पहचान लेते हैं कि यह आदमी भविष्यमें बड़ी उन्नति करनेवाला है ।

× × ×

प्रातःकालका समय है । दिनके कोई सात बजे हैं । लोग सुबहकी सैरको जा रहे हैं । एक युवक भी विचारोंमें डूबा हुआ मस्त चालसे टहलता चला जा रहा है ।

उसका ध्यान सड़कके एक किनारेकी ओर जाता है । यह क्या है ? उफ ! कैसा घिनौना दृश्य है यह !

एक बीमार कुत्ता है। उसके कानके पास एक घाव है। शायद बेचारा किसीकी निर्मम लकड़ीकी मारका शिकार हुआ है? रक्त बह रहा है। मक्खियाँ भिनभिना रही हैं। दुर्गन्धि उड़ रही है। वह पीड़ासे व्याकुल होकर कानको बार-बार फड़फड़ाता है, मक्खियाँ कुछ देरके लिये इधर-उधर उड़ती हैं, पर फिर बैठकर घावको पुनः गंदा करने और खून चूसने लगती हैं।

युवक एक क्षण उस कुत्तेकी पीड़ाका अनुमान करता रहा! ओफ! कितना दर्दनाक दृश्य है! यह कुत्ता न बोल सकता है, न हकीम-डाक्टरसे मरहम-पट्टी करा सकता है। इसका दुःख देखनेवाला है ही कौन? युवकके मनमें भगवान् जगे।

वह सैरसे लौट पड़ा। अब उसके कदम समीपके वैद्यके औषधालयकी ओर तेजीसे पड़ रहे थे।

'वैद्यजी! एक बीमारके लिये मरहम-पट्टी करानेकी जरूरत है? रोगीकी दशा चिन्ताजनक है!' वह कातर स्वरमें बोला।

आदमीकी आशा लगाये हुए वैद्यने उत्सुकतापूर्वक पूछा, 'कहिये, कहिये क्या बात है? घरपर कौन बीमार है?'

युवक बोला—

'घरका तो कोई बीमार नहीं है, पर जो बीमार है, उसे भी मैं परिवारके सदस्यसे कम नहीं मानता।'

वैद्यजीने पूछा, 'आखिर कौन है?'

युवकने करुणाजनक स्वरमें कहा, 'एक अनाथ कुत्तेके कानके

पास घावमें कीड़े पड़ गये हैं। वह पीड़ासे बुरी तरह बेचैन है। एक क्षण भी चैनसे नहीं बैठ सकता। बेचैनीसे बार-बार पागल-जैसा हो, कान फटफटा रहा है। मैं उसकी चिन्ताजनक हालतसे बड़ा दुखी और चिन्तित हूँ·········आप दया करके शीघ्र ही कोई दवा दे दीजिये।'

ओफ़! तो बस इतनी-सी बातके लिये आप परेशान हैं,—'वैद्यजी बोले, 'एक नाचीज कुत्तेके लिये तूफान मचाये हैं! मैं तो आपकी व्याकुल मुखमुद्रासे घबरा उठा था।'

उन्होंने एक दवा दे दी।

फिर हँसकर बोले, 'मेरे दोस्त, परोपकारमें अपनेको सुरक्षित रखना·········जानवर आखिर जानवर ही है। पीड़ाकी अवस्थामें कुत्ता लगभग आधा पागल—बेचैन रहता है·········हम तो मरीज आदमियोंको मुश्किलसे दवाइयाँ लगाते हैं। बीमार और घायल कुत्तेको दवा लगाना कोई आसान काम नहीं है।'

वैद्य कहे जा रहे थे। धुनके पक्के उस युवकने इधर कोई ध्यान नहीं दिया। वह दौड़ा-दौड़ा कुत्तेके पास आया। घायल कुत्ता अब और भी अधिक बेचैन था। मक्खियोंने काट-काटकर उसे बुरी तरह परेशान कर रक्खा था। रास्तेसे और भी लोग आ-जा रहे थे। वे उसे रास्ता चलते घृणापूर्वक देखते और नाक-भौं सिकोड़कर तिरस्कारकी बचती नजरें डालकर जल्दीसे आगे बढ़ जाते! युवकने न बदबूसे घृणाकर नाक दबायी, न उसके काटनेसे भयभीत ही हुआ।

उसने साहसपूर्वक एक बाँसमें कपड़ा लपेटकर उसे दवामें भिगोकर घावपर धीरेसे स्पर्श किया। कुत्तेके घावपर तेज दवाने कुछ तेजी दिखायी, तो वह तिलमिलाया। उसे काटनेकी भी कोशिश की, किंतु साहसी युवक सेवामें डटा रहा, उसने उसकी कोई परवा नहीं की। वह अपने परोपकारके काममें तल्लीन रहा।

बीमार कुत्तेको कुछ शान्ति, कुछ लाभका अनुभव हुआ। दवाईके असरसे घावमें ठंडक पहुँची और उसकी बदबूसे मक्खियाँ भी उड़ गयीं। उसे आराम मिला।

अब वह शान्तिपूर्वक लेटा था और युवक उसके अधिक पास आकर अच्छी तरह दवाई लगा रहा था। कुत्ता पूँछ हिला-हिलाकर अपनी मूक कृतज्ञता प्रकट कर रहा था। वह समझ गया था कि यह व्यक्ति पूर्वजन्मका कोई देवता ही था। उसने उसे मौतसे बचा लिया था।

जहाँ और सफेदपोश लोगोंने घायल और तड़पते कुत्तेकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया, वहाँ इस युवकका हृदय करुणासे द्रवित हो उठा था।

क्या आप जानते हैं कि इस आदमीका क्या नाम था? यह थे 'महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय', जिन्होंने भारतमें हिंदूधर्म, भारतीय संस्कृति और विद्याके क्षेत्रोंमें युगान्तर किया और देशको शिक्षित करनेमें जीवनका बड़ा भाग लगाया था।

बड़ोंका बड़प्पन शुरूसे ही प्रकट होने लगता है।

दूसरोंके लिये प्राण न्योछावर करनेवाला युवक!

अमेरिका! एक नदीका व्यस्त किनारा! जागृति और हलका आवागमन! प्रातःकालका समय है। नदी-किनारे लोग स्नानके लिये आ-जा रहे हैं। कुछ सैर करते-करते किनारेपर बैठकर जलका आनन्द ले रहे हैं और उठती हुई लहरों तथा उछलती हुई मछलियोंकी किलोलें देख रहे हैं। वातावरणमें शान्ति है, हवामें मस्ती और ताजगी।

'बचाओ, अरे कोई मेरे बच्चेको बचाओ!' एक ओरसे कातर स्त्रीका करुण स्वर सुन पड़ा। सबका ध्यान उधर खिंच गया। कोई माता रो-रोकर नदीकी ओर इशारा कर रही थी। दुर्भाग्यसे उसका

बच्चा नदीमें गिर गया था और जलकी सतहपर 'अब डूबा, अब डूबा !' कर रहा था।

माताकी आर्त पुकार अबतक उस नदीपर चारों ओर फैल गयी थी। लोग उसे न सँभाल सके। वे भागे-भागे दुर्घटना-स्थलपर आ इकट्ठे हुए। अब वहाँ भीड़ एकत्रित हो चुकी थी। सबमें घबराहट थी।

'बचाओ, हाय, मेरा लाल डूब रहा है। हाय, हाय, वह मर जायगा। अरे, कोई तो हिम्मत करो। बच्चेको पानीसे निकालो।' माता करुण चीत्कार कर रही थी।

अनेक लोग खड़े तमाशा-सा देख रहे थे, किंतु किसीको भी नदीमें कूदकर बच्चेको बचा लानेका साहस न था। सबको अपनी जिंदगी प्यारी थी। कोई क्यों किसीके बच्चेके लिये मरे। कोई डूबता है, तो डूबे !

'बचाओ, हाय, वह डूबनेको है ! रक्षा करो, बचाओ।' तभी एक अठारह-उन्नीस वर्षका युवक भीड़ चीरता हुआ वायुवेगसे नदीके तटतक पहुँचा और धम्मसे बालकके पास निशाना बाँधकर कूद पड़ा। सब आश्चर्यमें थे। यह क्या हुआ ?

क्या इसे उस नदीके विशाल प्रवाहका कोई भय नहीं ? क्या इसे अपने जीवनका मोह नहीं ? क्या यह जल्दबाजी और तीव्र आवेगोंका शिकार है ? कौन जाने सरिताका प्रवाह ही इसे निगल ले !

अब सब उस युवकका तैरना देख रहे हैं। कई बार वह

युवक भवँरमें फँसा जान पड़ता है। अनेक बार उसकी नाक और मुँहमें बुरी तरह पानी भरता दिखायी देता है। कई बार तो वह कठोर छिपी हुई चट्टानोंसे टकराते-टकराते कठिनाईसे बचता है। वह डुबकी लगाकर बच्चेको खोज रहा है।

उसे बच्चेको ढूँढते-ढूँढते काफी विलम्ब हो गया है। सबके उत्सुक नेत्र घटनास्थलपर युवकको खोज रहे हैं। वह जलके भीतरसे नहीं निकला है। कहाँ गया वह ?

कहीं उसकी जल-समाधि तो नहीं हो गयी ? ऐसा दीखता है कि उसके लौटनेकी कोई आशा नहीं है। शायद वह सदा-सर्वदाके लिये दुनियासे चला गया।

किंतु कुछ क्षणके बाद !

उसके सिरके काले बाल जलके ऊपर थोड़े-थोड़े नजर आते हैं। लीजिये, वह अब सतहके ऊपर तैरता दिखायी दे रहा है। पाँव हिलते हुए स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहे हैं। वह किनारेकी ओर आ रहा है।

अरे ! उसके हाथोंमें मूर्छित बच्चा भी है। थोड़ी ही देर बाद सब देखते हैं कि युवक मूर्छित बच्चेको उसकी रोती हुई माताके सामने रख रहा है।

'यह डरके मारे बेहोश है। कुछ पानी पी गया है। अभी ठीक हो जायगा। सँभालिये, आपका पुत्र बच गया है।' माता कृतज्ञताभरे नेत्रोंसे युवकको निहार रही है। बच्चा अस्पताल ले

जाया गया और भाग्यसे उसकी जान बच गयी ! वह युवकके साहस और उद्योगसे मौतके मुँहमें जाकर भी लौट आया ! किसे पता था कि बच्चा इस दुर्घटनासे बच सकेगा ? ईश्वरकी कृपा असीम है !

दूसरोंके लिये अपने प्राणोंको न्यौछावर करनेवाले इस युवकको क्या आप जानते हैं ?

वह था अमेरिका-जैसे विशाल देशका भूतपूर्व प्रेसीडेंट जार्ज वाशिंगटन !

ये पायतो मामतेयं ते अग्ने, पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन् ।
ररक्ष तान्त्सुकृतो विश्ववेदा, दिप्सन्त इन्द्रियवो नाह दे भुः ॥
(ऋग्वेद १ । १४७ । ३)

याद रखिये, इस संसारमें मनुष्यको परोपकार और परमार्थके कार्योंमें निन्दा, लाञ्छन, उपहास आदिका भय नहीं करना चाहिये । लोग क्या कहते हैं, इसकी ओर ध्यान न दीजिये ।

ऐसे परोपकारी और दूसरोंका दुःख-दर्द दूर करनेवाले व्यक्तियोंकी रक्षा स्वयं परमात्मा करता है । अतः निश्चिन्त होकर सदा-सर्वदा लोक-कल्याणके उदात्त कार्योंमें संलग्न रहना चाहिये । इसीमें मनुष्यका बड़प्पन निहित है ।

ईश्वर-दर्शनके अन्य आधार मठ-मन्दिरोंमें खोजते फिरनेकी अपेक्षा यह अधिक सरल और उपयोगी है कि उसे मनुष्यकी आत्मामें खोजा जाय ।

परिश्रम और पुरुषार्थके सहारे मजदूरका पुत्र विद्वान् बना

उसके पिता दो-तीन रुपये मासिकके मजदूर थे ! जिंदगी नाना प्रकारकी आर्थिक और सामाजिक मजबूरियोंसे भरी हुई थी। कठिनतासे भरपेट भोजन मिल पाता था। वस्त्र मिल गये, यही क्या कम है ? जूता, टोपी तो उसके लिये विलासकी सामग्री थी। जब भोजन ही पेट भर न मिले, तो मिठाई या खीर-पूरी, चाट-पकौड़ी—ये सब तो स्वप्नकी ही बातें समझिये !

बालक धीरे-धीरे उसी दमघोंटू निर्धनताके कठोर वातावरणमें बड़ा होने लगा। घरका निर्वाह ही कठिनतासे होता था। फिर, वह पिता अपने प्यारे पुत्रको शिक्षित करनेकी बात ही क्योंकर सोच सकता था ?

किंतु वह मजदूर पिता धनिक व्यक्तियोंके फैशनेबल पुत्रोंको उत्तम वस्त्र पहने, सूट-बूटमें शानदार बस्ता लिये या साइकल-मोटरोंमें बैठ पढ़ने जाते देखता तो उसकी इच्छा जरूर होती कि उसका बच्चा भी पढ़-लिखकर योग्य बने, दुनियाका ज्ञान-विज्ञान अपने अंदर धारण करे और शिष्ट समाजमें आदरका पात्र बने।

पर हाय री आर्थिक विवशता ! कहाँसे वह स्कूलकी फीस दे ! पुस्तकोंका खर्च चलाये ! वस्त्रोंका प्रबन्ध करे ! और जब उसका पुत्र दूसरोंके बच्चोंकी तरह कुछ जेब-खर्च, चाट-पानीका खर्चा माँगेगा, तो वह उसे क्या उत्तर देगा !

पिता यही सब कुछ सोचता और अपनी महत्त्वाकाङ्क्षाको मनमें सँजोये रहता ।

अब वह लड़का कुछ सयाना हो चुका था । वह गाँवके और लड़कोंको बगलमें बस्ता दबाये पढ़ने जाते देखता, तो अपने पिताका पल्ला पकड़ लेता । नेत्रोंमें आँसू लाकर रो-रोकर कहता—

'बापू ! गाँवके सब लड़के किताबें, स्लेट-पेन्सिल लेकर पढ़ने जाते हैं । मैं भी जाऊँगा । मुझे भी किताब-स्लेट ला दो । मैं भी पढ़-लिखकर बड़ा आदमी बनूँगा । मैं भी कुर्सीपर बैठकर बाबूका काम करूँगा । पढ़-लिखकर ही तो आदमी प्रसिद्ध बनता है । मैं खूब मन लगाकर पढूँगा और विद्वान् बन जाऊँगा ।'

पिता डबडबायी आँखोंसे लड़केको देखता । ममत्वसे उसके सिरपर हाथ फेरता । फिर प्यारसे उसके आँसू पोंछते हुए अपनी गरीबी और लाचारीकी बात स्पष्ट करता हुआ कहता—

'बेटा ! तुझमें पढ़ने-लिखनेकी लगन है । तेरा मन पुस्तकोंसे स्वयं ज्ञान पानेको ललचाता है, ये बड़प्पनके लक्षण हैं । तेरे पुराने संस्कार बड़े ही ऊँचे और सात्त्विक हैं । कितना अच्छा होता, यदि तू किसी अमीर व्यक्तिका पुत्र होता । हाय ! तू इस गरीबके

घर क्यों पैदा हुआ ! तेरे भाग्यमें बड़ा बनना होता, तो तू मेरे-जैसे निर्धनका पुत्र न होता।.........हाय ! मेरी गरीबी, जो मैं अपने लालके लिये पढ़नेका मामूली प्रबन्ध भी नहीं कर पा रहा हूँ।'

यह कहते-कहते भावुक पिताकी अश्रुधारा बहने लगती। सीना जोर-जोरसे धड़कने लगता ! वह अपने प्यारे पुत्रको स्नेह और ममतासे सीनेसे चिपकाये रहता। जब भावनाका उद्वेग कुछ शान्त होता तो उससे कहता—

'बेटा ! निराश मत हो ! सभीके दिन एक-से नहीं रहते। कुछ और बड़े होकर हाथ-पाँवसे मेहनत-मजदूरी करनेकी सोचना, जिससे पहले पेट-भराई तो हो सके। फिर समय निकालकर पढ़ भी लेना। अभी मेरे पास पैसेका कुछ भी प्रबन्ध नहीं है। पढ़ाई-लिखाईके बारेमें अभी सोचना व्यर्थ-सी बात है।'

पिताकी दुनियादारीकी बातें सुनकर लड़का मन मसोसकर रह जाता। कम उम्रका बच्चा, अबोध बालक कर भी क्या सकता था ?

लेकिन पढ़-लिखकर विद्वान् बननेकी गुप्त अभिलाषा उसके मनमें गहरी जड़ पकड़े रही.........क्रमशः विकसित होती रही।

घरकी विकट स्थिति और गरीबीमें भी पिताका शुष्क जवाब पाकर भी उसका उत्साह कम नहीं हुआ ! वह उपयुक्त अवसरकी खोजमें लगा रहा ! लगनके साथ ही उसमें विनयशीलता और शिष्टता पर्याप्त थी। सबसे मधुर बोलता था। इस मृदु व्यवहारने उसके अनेक मित्र बना दिये। उसने ऐसे अच्छे सज्जन छात्रोंसे

मित्रता की, जो उसे फुरसतके समय अपनी किताबोंसे पढ़ने देते थे। यही नहीं, वे जो बड़ी-बड़ी फीसें देकर स्कूलमें पढ़-लिखकर आते थे, वह इस गरीब बालकको भी कुछ-कुछ पढ़ा देते थे।

जब दूसरे अमीर लड़के खेलते थे, तो यह लड़का गलीमें लगे म्युनिसपैलिटीके लैम्पकी मद्धिम रोशनीमें पढ़ा करता था।

उसके पास स्लेट नहीं थी। पेन्सिल नहीं थी। वह कोयलेसे जमीनपर लिखकर अभ्यास किया करता था। किसीने दया करके उसे एक पेन्सिल दे दी, तो वह सड़कोंमें पड़े हुए कागजके रद्दी टुकड़ोंपर लिख-लिखकर वर्णमालाके अक्षर सीखने लगा। अनेक शब्द और वाक्य उसने जबानी याद कर लिये। उसे पाठ्य पुस्तकके कई पाठ और कहानियाँ कण्ठस्थ हो गयीं।

पिता विद्याके प्रति उसकी लगन देखकर मन-ही-मन अपनी निर्धनताको कोसने लगा। बालककी तेज बुद्धि और कठोर श्रम देखकर पुत्रको सुशिक्षित बनानेके लिये उसका हृदय भी अधीर हो उठा!

यह उस बालककी जिंदगीका प्रथम अध्याय था।

जिंदगीने दूसरी करवट ली। जीवनका नया पृष्ठ बदला। उसके गरीब पिताने अधिक कमाईके लिये एक योजना बनायी।

एक दिन अधिक कमानेके प्रयत्नमें वह इस बालकको लेकर गाँवसे समीपके बड़े शहर कलकत्ताकी ओर चल दिया। रेलगाड़ीके लिये पैसा पास नहीं था। पैदल ही सफर शुरू कर दिया।

रास्तेमें एक जगह सुस्तानेके लिये रुके।

थके हुए पिताने कहा, 'न जाने हम कितनी दूर सफर कर आये हैं ?'

अनायास ही लड़केने जवाब दिया, 'नौं मील पिताजी !'

पिता आश्चर्यमें डूब गया !

'इस लड़केको यह कैसे मालूम हुआ ?' वह सोच रहा था।

लड़केने स्वयं ही स्पष्टीकरण करते हुए बतलाया, 'पिताजी ! पासके मीलके पत्थरपर नौ लिखा हुआ है।'

उत्तरका स्पष्टीकरण बालककी कुशाग्र-बुद्धिका द्योतक था। पिता यह देखकर हर्ष-विभोर हो उठा।

बालक ईश्वरचन्द्रने पिताके साथ चलते-चलते अंग्रेजीके अङ्कोंका ज्ञान कर लिया। अपने पुत्रकी इस तीव्रबुद्धिके कारण वे फिर सोच-विचारमें पड़ गये और उसे लेकर लौट पड़े।

रास्तेभर सोचते आते थे, 'यदि ऐसे जिज्ञासु और उत्साही पुत्रको गरीबीके कारण उच्च अध्ययनसे वञ्चित किया, तो बच्चेके प्रति बड़ा भारी अपराध होगा। मैं संकल्प करता हूँ कि एक वक्त ही खाऊँगा, सारे घरको आधा पेट रक्खूँगा, किंतु ईश्वरचन्द्रको पाठशाला अवश्य भेजूँगा।'

यही संकल्प बच्चेकी उन्नतिका आधार बन गया।

घर आकर उन्होंने ईश्वरचन्द्रको गाँवकी पाठशालामें भरती करा दिया। लड़केने तन्मयतापूर्वक खूब मनोयोगसे पढ़ा। अपनी पुस्तकोंका उच्चतम ज्ञान प्राप्त कर लिया। इस स्कूलमें वह सर्वश्रेष्ठ छात्र निकला। सब अध्यापकोंने उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। अब इस स्कूलकी पढ़ाई समाप्त हो चुकी थी।

गाँवसे आगे पढ़ाना गरीब पिताके लिये असम्भव था। अतः आगे पढ़ानेसे इनकार करना पड़ा; क्योंकि वह पढ़ाईका खर्चा किसी प्रकार भी नहीं दे सकते थे।

इसपर ईश्वरचन्द्रने प्रार्थना की कि उसे किसी विद्यालयमें दाखिल करा दें, फीस और पढ़ाईका खर्चा वह स्वयं मेहनत-मजदूरी करके चला लेगा। वह शहरमें स्वयं मजदूरी तलाश कर लेगा।

पिताने उसकी बात मान ली और उसे कलकत्ताके एक संस्कृत विद्यालयमें भरती करा दिया। महाविद्यालयमें ईश्वरचन्द्रने अपने मनोयोग, सेवा और लगनके बलपर शिक्षकोंको यहाँतक प्रसन्न कर लिया कि उनकी फीस माफ हो गयी। पुस्तकोंके लिये वे अपने सहपाठियोंके साझीदार हो गये थे।

अपनी इस व्यवस्थासे वे उत्तरोत्तर अपनी योग्यता बढ़ाते गये। लगातार ऊँचे ही उठते गये। उन्नीस वर्षकी आयुतक पहुँचते-पहुँचते उन्होंने व्याकरण, साहित्य, अलङ्कार, स्मृति तथा वेदान्त शास्त्रोंमें निपुणता प्राप्त कर ली। वे देशके बड़े विद्वान् बने।

उनकी असन्दिग्ध विद्वत्ता तथा उच्च आचरणसे प्रभावित होकर विद्वानोंकी एक सभाने उन्हें मानपत्रके साथ 'विद्यासागर'की उपाधिसे विभूषित किया और उनके मूल्याङ्कनमें अनुरोधपूर्वक फोर्ट विलियम कालेजमें संस्कृतके प्रोफेसर नियुक्त हुए।

परिश्रम और पुरुषार्थका सहारा लेनेसे मजदूरका पुत्र भारतका एक ऐतिहासिक व्यक्ति बन गया!

मनुष्यके भीतरसे ईश्वरकी झलकियाँ !

पुरुष एवेदꣳ सर्वम् । (ऋग्वेद १० । ९० । २)

अर्थात् यह सम्पूर्ण विश्व परमात्माका ही रूप है । संसारको परमात्माका प्रत्यक्ष स्वरूप मानकर इसकी सेवा करनी चाहिये ।

ईश्वर मनुष्यके मनमें विद्यमान है और अनेक बार सत्प्रवृत्तियोंके रूपमें वह चमका करता है । ईश्वरने मानव प्राणीके निर्माणमें जो असाधारण श्रम किया है, उसकी सार्थकता तभी है, जब वह दिव्य प्रयोजनों और परोपकारमें संलग्न रहे, जिनके लिये उसका सृजन किया गया है । इस संसारको सुरम्य और सुव्यवस्थित बनानेमें निराकार परमेश्वरको एक साकार आकृतिकी जरूरत थी, जो मनुष्यके रूपमें पूर्ण होती है ।

समय-समयपर हमारे समाजमें, दैनिक नित्यप्रतिके जीवनमें ही ऐसे उदाहरण मिलते हैं, जिनसे प्रत्यक्ष होता है कि ईश्वर

हमारे अंदर मौजूद है और उच्च कार्य कराता है । यहाँ ऐसे ही कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं ।

रोगीको बचानेके लिये प्राणदान

"गोरखपुरमें उत्तर-पूर्वी रेलवेके सेन्ट्रल अस्पतालके सर्जन डा० सुधीरगोपाल झिंगरनने हालमें ही एक रोगीकी जान बचानेके लिये अपने प्राणोंकी आहुति दे दी। बात यों हुई कि उस रोगीका ऑपरेशन किया गया था। रोगी पहलेसे ही दुर्बल था और उसमें रक्तकी कमी थी। उसके रक्तका मिलान किया गया, अनेक व्यक्तियोंके रक्तकी परीक्षा करनेपर ज्ञात हुआ कि कोई भी उसके रक्तसे मिलान नहीं खाता है। संयोगसे स्वयं सर्जन सुधीरगोपालने अपने रक्तका परीक्षण कराया, तो वह रोगीके रक्तसे मिल गया। डाक्टर साहबका ही रक्त बढ़ाकर उस रोगीको बचाया जा सकता था; दूसरा कोई मार्ग न था। अब क्या किया जाय ?

डाक्टर साहब विचार करने लगे, 'हमें अपने भौतिक स्वार्थोंकी संकीर्णतासे ऊपर उठनेके लिये यह सोचना ही होगा कि हमें मनुष्यकी योनि पारमार्थिक साधनाओं, आध्यात्मिक विचारों, परोपकार, सेवा और ऊँचे आदर्शोंके लिये मिली है। यदि विश्व-हितके लिये हम कुछ नहीं करते, तो हमारा मानव-जीवन बेकार है। हमें शरीर-निर्वाह तथा परिवार-पालनके अलावा ईश्वरके व्यक्त एवं विराट् स्वरूप विश्व-हितके लिये भी कुछ करना चाहिये।'

यह सोचकर डाक्टर सुधीरगोपाल रोगीको रक्तदान देनेके लिये तैयार हो गये। एक शीशी रक्तके बाद दूसरी शीशी

रक्तकी और जरूरत पड़ गयी। डाक्टर साहब पुनः रक्त निकाल रहे थे कि कुछ ऐसी प्रतिक्रिया हो गयी कि उसी दिन रात्रिको अनेक उपचार करनेके बावजूद भी उनका देहान्त हो गया। ईश्वरका श्रम सार्थक हुआ। वह दैवी ज्योति बुझ गयी, पर शत-शत आत्माओंको मनुष्य-जन्मकी जिम्मेदारी सिखा गयी।

वृद्धाका नेत्र-दान

इलाहाबादमें एक ७० वर्षीय बंगाली वृद्धाकी आँखें दो अन्धोंको सफलतापूर्वक लगा दी गयी हैं। मरनेसे पूर्व वृद्धाने अपनी दोनों आँखें अस्पतालको दानस्वरूप देनेकी वसीयत लिखी थी। उसने लिखाया था, 'मैं चाहती हूँ कि मेरे शरीरका कोई भी हिस्सा यदि परोपकारमें दूसरेके काम आ सके, तो मेरा जीवन सफल है। ईश्वरने आदमीको जो असीम प्रतिभा, दिव्य ज्ञान, अन्तरात्मा दी है, उसके पीछे यही प्रयोजन है कि वह अन्तिम श्वासतक परोपकारमें लगा रहे। आप मेरी ये आँखें सुरक्षित रक्खें और किसी जरूरतमन्द युवक-युवतीके लगा दें और ईश्वरका श्रम सार्थक करें।'

अस्पतालके डाक्टरने एक आँख एक दशवर्षीया अन्धी लड़की एवं दूसरी एक २२ वर्षीय नवयुवकके लगायी है। दोनोंको दीखने लगा है।

इसी प्रकारका एक उदाहरण और है। बम्बई नगरकी एक छः वर्षीया कुमारी जोत्स्ना बेन पटेलने दो व्यक्तियोंको मरणोपरान्त नेत्र दान किये। इस लड़कीकी मृत्यु ७ दिसम्बर

१९६५ को शहरके अस्पतालमें हुई थी। लड़कीके माता-पिताने शीघ्र ही सरकारी नेत्र-बैंकको उसके नेत्र दानमें दे दिये। इसके फलस्वरूप एक अन्धे लड़केकी पुतलियाँ बदल दी गयीं तथा एक अन्य व्यक्तिकी विटियस ट्रांसप्लान्टेशनके लिये शल्यक्रिया की गयी।

नागपुरका एक समाचार इस प्रकार है—

स्थानीय मेडिकल कालेजमें एक ६० वर्षीय वृद्धद्वारा दानमें दी गयी आँखें एक ३० वर्षीया युवतीकी आँखोंमें लगा दी गयीं। इस युवतीकी आँखें ५ वर्षकी अवस्थामें ही चेचककी बीमारीके कारण खराब हो गयी थीं।

अभावग्रस्त जीवनमें अनुकरणीय आदर्श

अभावग्रस्त कठिनाइयोंमें फँसे हुए, अनेक उत्तरदायित्वोंके बोझसे दबे हुए व्यक्तियोंमेंसे भी ईश्वर झलका है।

मुजफ्फरनगरके डी० ए० वी० कालेजके अध्यापकों तथा कर्मचारियोंने अपने एक दिवङ्गत अध्यापकके निःसहाय परिवारकी सहायताके लिये जिस अनुपम त्यागका आदर्श प्रस्तुत किया है, वह निश्चय ही सबके लिये अनुकरणीय है।

कालेजके अर्थशास्त्रविभागके अध्यक्ष श्रीसीतारामकी गत २७ जुलाई १९६५ को मृत्यु हो गयी। श्रीसीतारामकी विधवा बहू, दो पुत्र और चार पुत्रियोंके लिये कोई सहारा नहीं रहा। छोटे बच्चे, कमानेवाला मृत्युके कराल ग्रासमें समा गया। दो पुत्रियोंकी शादी तो तुरंत ही होनी चाहिये।

ऐसी आर्थिक तंगी और वैवाहिक कठिनाईमें दिवङ्गत प्राध्यापककी विधवाको जो कठिनाई हो सकती है, उसका अनुमान लगाना कठिन नहीं है। अध्यापकोंकी आर्थिक हालत कितनी गिरी हुई होती है, यह किसीसे छिपी नहीं है। उनकी कमाई हाथसे उदरतक ही सीमित रहती है। ऐसे बिरले ही होते हैं, जो अपने पीछे कुछ धन छोड़ जाते हैं। फिर जिनका परिवार बड़ा हो, उनकी मुसीबतोंका तो अन्त ही नहीं।

कॉलेजके कर्मचारियोंमेंसे ईश्वर चमका। उनकी अन्तरात्माने कहा, 'तुम्हें अपने स्वर्गीय साथीके परिवारकी हर प्रकार सहायता करनी चाहिये।' सबने मुसीबतमें फँसे परिवारकी सहायताका फैसला किया।

आप जानते हैं, वह फैसला क्या था?

सबने निर्णय किया कि सब कर्मचारी, जिसमें चपरासी, फर्राश, भंगीतक शामिल हैं, तीन वर्षतक अपनी मँहगाईका भत्ता जमा करते रहेंगे। इस प्रकार जो धन एकत्रित होगा, उससे इस परिवारकी सेवा-सहायता, विवाह इत्यादि किये जायँगे।

जिन कर्मचारियों और अध्यापकोंने यह व्रत लिया है, उन्हें स्वयं कितनी कठिनाई होगी, इसका अनुमान लगा सकना कठिन नहीं है; किंतु स्वयं कष्ट उठाकर जो दूसरोंकी कठिनाइयोंको आसान करनेकी कोशिश करते हैं, मानवता उन्हींको अपना आदर्श मानती है और उन्हींसे प्रेरणा लेती है

रिक्शाचालककी ईमानदारी

फरीदकोटका एक समाचार है। इक्कीस वर्षीय रिक्शा चलानेवाले रामचन्द्रने शनिवारको पूरा दिन उस मुसाफिरकी खोजमें लगा दिया, जो जल्दीमें भूलसे अपनी अटैची रिक्शेमें भूलकर कामपर तेजीसे निकल गया था। उसमें पैंतालीस हजारके जेवर आदि थे। वह चाहता तो यह सब धन हड़प कर सकता था, पर वह मनुष्य-जन्मकी नैतिक जिम्मेदारीको समझता था और उसे पूरा करनेमें ही सफलता मानता था। अन्तमें अटैचीको खोल खतपर लिखे एक पतेकी सहायतासे रिक्शाचालकने जेवरोंके मालिकका पता लगा लिया और अबोहर जाकर वह अटैची असली हालतमें सौंप दी। जेवरोंके मालिकने रिक्शाचालकको पाँच सौ रुपयेका पुरस्कार देना चाहा। पहले तो उसने लेनेसे इन्कार कर दिया। अधिक आग्रहके बाद उसने वह राशि लेकर जवाहरलाल नेहरू-स्मारक कोषको दे दी।

आदमीमें ईश्वर बैठा हुआ सही रास्ता दिखाता रहता है। आन्तरिक अभिलाषा तीव्र हो और उसके लिये आवश्यकता, दृढ़ता एवं प्रयत्नशीलता विद्यमान रहे, तो परोपकारका रास्ता मिल ही जाता है।

भूलका प्रायश्चित्त

कटककी एक घटना अखबारोंमें छपी है।

यहाँके एक छात्रद्वारा अपनी भूलका अनोखे ढंगसे प्रायश्चित्त किये जानेकी एक घटना घटित हुई है। घटना इस प्रकार है—

शेखबाजारका ८वीं कक्षाका एक छात्र शहरसे स्टेशनतक रिक्शासे आया। रिक्शा-भाड़ेके बारह आने देनेके लिये उस छात्रने एक रुपयेका नोट रिक्शावालेको दिया, लेकिन रिक्शावालेके पास चार आने वापस देनेके लिये न होनेके कारण उसने वह नोट लौटा दिया। छात्रने उसे यह कहकर कि 'अभी रेजगारी लाता हूँ। कुछ देर ठहरो।'—वह स्टेशनके भीतर चला गया और बुकस्टालपर पत्र-पत्रिकाएँ पढ़नेमें इतना तल्लीन हो गया कि उसे याद ही न रहा कि रिक्शेवालेको मजदूरीके पैसे भी देने हैं।

करीब आध घंटे पश्चात् जैसे ही उसे याद आया, बुकस्टालसे रेजगारी लेकर वह भागा-भागा स्टेशनके बाहर आया, तो दुर्भाग्यसे रिक्शावाला न मिला। छात्रकी अन्तरात्माने उसे बुरी तरह विक्षुब्ध कर दिया। वह सोचने लगा, 'हाय! मुझसे कैसा पाप हो गया, मैंने एक गरीब मजदूरकी मजदूरी दबा ली। उस गरीबकी रोटी छीन ली। उफ्! वह भूखा होगा।' दुखी होकर छात्र उसे इधर-उधर ढूँढ़ने लगा। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते काफी रात व्यतीत हो गयी। फिर भी वह न मिला तो पासमें ही मोटर-स्टैंडके पास आकर सिसकियाँ भर-भरकर रोने लगा। लोगोंने जब उसके रोनेका कारण पूछा, तो उसने सारी बातें बता दीं और वह कहने लगा कि 'मेरी गलतीसे एक गरीब रिक्शेवालेकी बारह आनेकी मजदूरी मारी गयी। मैं उसका प्रायश्चित्त कर रहा हूँ।'

लोगोंके समझाने-बुझानेपर वह आँखोंमें अश्रु लिये एक अन्य रिक्शासे अपने घर चला गया, लेकिन जानेसे पूर्व वह बारह आने अपंग भिखारियोंको बाँट गया।

सच है, आन्तरिक अभिलाषा तीव्र हो और उसके लिये दृढ़ता और प्रयत्नशीलता विद्यमान रहे, तो परोपकारका मार्ग मिल ही जाता है। कोई ऐसा तरीका निकल आता है, जिससे दूसरोंकी कुछ सहायता-सेवा हो सकती है।

परोपकारके लिये बलिदान

जबलपुर छिन्दवाड़ा जिलेके आनन्दराव नामक एक व्यक्तिको डूबते बालककी प्राणरक्षामें अपना बलिदान करनेके लिये मरणोत्तर राष्ट्रपति-पदक प्रदान किया गया है।

बताया जाता है कि छिन्दवाड़ा जिलेके बैरागढ़ गाँवमें लोहेके कमजोर ढक्कनसे ढके हुए अनाजके एक गहरे गड्ढेपर एक दस वर्षीय बालक खेल रहा था। वह ढक्कन उसका भार सहन न कर सकनेके कारण एकाएक टूट गया और बालक उस गड्ढेमें गिर पड़ा। उस गड्ढेमें काफी ऊँचाईतक पानी भरा हुआ था। पास ही स्वर्गीय श्रीआनन्दराव खड़े थे। बालककी प्राणरक्षाके लिये उन्होंने अपनी जानकी परवा नहीं की और वे स्वयं उस गड्ढेमें कूद गये। यद्यपि वे अपने इस उद्देश्यमें सफल हुए, परंतु बाहर निकलनेके पहले ही उस गड्ढेकी जहरीली हवा और गैसके कारण दम घुटनेसे उनकी मृत्यु हो गयी। इस महान् और परोपकारी कार्यके लिये भारत-सरकारने सराहना की है और राष्ट्रपति-पदक प्रदान किया है।

इसी प्रकारका एक समाचार इस प्रकार है—

नयी दिल्ली। तीन स्त्रियोंको डूबनेसे बचाकर अपना जीवन

बलिदान कर देनेवाले दिल्लीके १६ वर्षीय वीर बालक सुभासचन्द्रके पिता श्रीआर० आर० खुरानाको चीफ कमिश्नरने अपने निवास-स्थानपर आयोजित एक समारोहमें पुत्रका मरणोत्तर जीवनरक्षा-पदक (प्रथम श्रेणी) भेंट किया।

पूरी घटना इस तरह है। दरियागंजके कमर्शल हायर-सेकेंड्री स्कूलका विद्यार्थी सुभासचन्द्र ८ नवम्बर १९६२ को अपने तीन मित्रोंके साथ कुदसिया घाटके निकट घूम रहा था कि घाटकी ओरसे चिल्लानेकी आवाज आयी। ये तुरंत दौड़ते हुए घाटपर पहुँचे। उन्हें मालूम हुआ कि स्नान कर रहीं कुछ स्त्रियाँ भँवरमें फँस गयी हैं। सुभास तुरंत जूते उतारकर कपड़ोंसहित यमुना नदीमें कूद गया। तीनों डूबती स्त्रियोंको तो उसने बचा लिया, किंतु स्वयंको न बचा पाया और यमुनाकी गोदमें समा गया। परोपकारी बालककी जब यह कहानी उस समारोहमें सुनायी गयी, तो उसके पिताका भाल गर्वसे ऊँचा उठ गया।

मनुष्यके भीतर देवत्व है और वह अनेक बार इस प्रकार झलकता रहता है। परोपकारसे मनुष्यका देवत्व अधिकाधिक विकसित होगा। इस दृष्टिकोणको अपनाकर मनुष्य देवता बनता है, शान्ति पाता है, यशस्वी बनता है और लोक-परलोकमें सुख पाता है।

बिना कर्मचारीका डाकखाना

राजकोट (सौराष्ट्र) के एक गाँवमें बिना व्यक्तिके डाकखानेका परीक्षण सफलतापूर्वक किया जा रहा है। जूनागढ़के उस गाँवमें एक बक्समें कार्ड और लिफाफे रक्खे हैं और जिस ग्रामीणको जरूरत

पड़ती हैं, उसमेंसे कार्ड-लिफाफे निकालकर उतने ही पैसे उसमें डाल देता है। इस ईमानदारीके कारण वह डाकखाना मजेमें चल रहा है। अभीतक एक पैसेका भी घाटा नहीं हुआ है। परमार्थवृत्तियोंको विकसित करनेसे मनुष्य जीते-जी देवत्वकी ओर बढ़ता है और स्वर्ग-जैसा भव्य वातावरण उपस्थित करता है।

नियमोंके विरुद्ध मैं कुछ नहीं कर सकता

महात्मा सुकरातको प्राण-दण्ड हुआ। लोग उनकी विचारधाराको ठीक प्रकार समझ नहीं पाये थे। दुनियामें मूढ़मतिवाले भी काफी हैं। उनके कारण प्राणदण्डका आदेश पाये हुए कैदीके रूपमें सुकरात कारावासमें थे।

उनके परम शिष्य क्रीटोने उन्हें बचानेकी युक्ति सोची। वे उचित-अनुचित किसी भी तरह उन्हें बचा लेना चाहते थे। क्रीटो रिश्वत देकर जेलमें चुपकेसे घुस आये और सुकरातके सम्मुख हाथ जोड़कर बोले—

'आपकी प्राणरक्षाका सारा प्रबन्ध हो चुका है। देर न कीजिये और चुपचाप जेलसे भाग चलिये। बाहर आपको बचाकर सुरक्षित ले चलनेकी सारी व्यवस्था पूर्ण है। किसीको पता भी न चलेगा कि आप कब और कैसे जेलसे गायब हो गये! आपको किसी दूसरे देशमें पहुँचा दिया जायगा। मेरी जीवनभरकी जो कुछ भी कमाई है, सब आपको भेंट है। बस, आपका जीवन चाहिये।'

सुकरातके सामने जीवन-रक्षाका एक स्वर्णिम अवसर था। कौन ऐसा मानव है जिसे प्राण प्यारे नहीं होते ! उचित-अनुचित हर तरीकेसे आदमी प्राणरक्षा चाहता है।

पर सुकरातने उस सुझावपर गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया, 'मैं ऐसे अनुचित प्रस्तावको स्वीकार नहीं कर सकता। जिस देशकी मिट्टीमें मैं पैदा हुआ हूँ, जहाँ मेरे माता-पिता रहे हैं, जहाँकी हवामें साँस लेकर और जहाँके पानीमें मैं पला हूँ, उस देशके नियमोंके विरुद्ध कार्य करना मैं परमात्माके प्रति धोखा मानता हूँ।'

वास्तवमें आध्यात्मिक उत्कर्षका आधार कोई पूजा-पद्धति, कर्मकाण्ड या अभ्यास-साधन नहीं, वरं दैवी गुणोंका व्यवहार, ईमानदारी और अनुशासनप्रियता ही हो सकती है। ईश्वर-प्राप्ति एवं स्वर्ग, मुक्ति, आत्मशान्ति-जैसी सिद्धियोंको प्राप्त करनेकी अनिवार्य शर्तें संयम, सदाचार एवं उदारता ही होती हैं। उन्हें पूरी किये बिना कोई व्यक्ति आत्मकल्याणका अधिकारी नहीं बन सकता।

अपना शव भी दान

हैदराबादमें गुडरके एक एडवोकेट श्री एड० वी० नरसिंहराव अभीतक रोगियोंको बचानेके लिये चालीस बार रक्तदान दे चुके हैं, लेकिन त्याग और बलिदानकी यह परम्परा अभी बंद नहीं हुई है। वे मानवताकी सेवामें ही ईश्वरकी सेवा मानते हैं। मनुष्य-जीवनको सार्थक करना चाहते हैं। अतः अब उन्होंने अपनी वसीयतमें अपना शव ओसमानिया जनरल अस्पतालके सुपरिन्टेन्डेन्टके नाम

कर दिया है। उन्होंने यह भी कहा है कि मेरी मृत्युके बाद मेरी आँखें किसी जरूरतमन्दके लिये सुरक्षित रख ली जायँ।

वृद्ध विधवाका सर्वस्व-दान

श्रीमती चोहारिया बाई नामक एक वृद्ध विधवाने बिलासपुर जिलेमें अपने गाँव सिवनीमें लड़कियोंका एक स्कूल बनानेके लिये राज्य-सरकारको अपनी सारी जायदाद दानमें दे दी है।

विधवाने यह भेंट मध्यप्रदेशके उपवित्तमन्त्री श्रीएम० पी० दुबेको उस समय दी, जब वे गाँवमें एक सार्वजनिक सभामें भाषण दे रहे थे। जब स्थानीय नेता उपमन्त्री महोदयका स्वागत कर रहे थे, यह वृद्धा मञ्चपर चढ़ गयी और पंद्रह सौ रुपये नकद तथा सात सौ रुपयेकी कीमतके अपनी भूमिके कागजात उन्हें दिये। उसने जल्दी ही पाँच सौ रुपये और देनेका वचन भी दिया। इस वृद्धाने उपमन्त्रीसे अनुरोध किया कि स्कूलका निर्माण जल्द होना चाहिये, जिससे कि वह उसे अपने जीवनकालमें ही फलता-फूलता देख सके। वह कहती है, ज्ञानकी वृद्धि और प्रसारमें ही ईश्वरकी भक्ति संनिहित है। दूसरोंको ज्ञान-प्राप्तिका अवसर देना ही सच्ची पूजा है।

चपरासीकी कर्तव्यपरायणता

बुलन्दशहरके श्रीदुर्गाप्रसाद नामक एक स्कूलचपरासीको डकैतोंने बहुत पीटा और सब नकदी लूट ली। जब वे उससे साइकिल छीनने लगे, तब वह अड़ गया। वह साइकिल स्कूलकी सम्पत्ति थी और इस प्रकार सार्वजनिक सम्पत्तिकी रक्षा करना उसका धर्म था, पवित्र कर्तव्य था। उसने वह साइकिल तबतक न

दी जबतक कि डकैतोंने उसे गोली मारकर धराशायी ही न कर दिया। यह चपरासी बुलन्दशहरके शर्मा हायर सेकेन्डरी स्कूलमें नौकर था।

वह अपने गाँवको जरूरी कामसे जा रहा था कि रास्तेमें डकैतोंने उसे घेर लिया। चपरासीके पास जो नकदी थी, वह तो उन्होंने छीन ली। जब वे उससे साइकिल छीनने लगे, तो उसने विनीत स्वरमें कहा, 'तुम मेरी सब चीजें ले सकते हो, परंतु स्कूलकी चीज मैं किसी भी दशामें नहीं दे सकता; क्योंकि यह सार्वजनिक सम्पत्ति है। मैं उसकी सुरक्षाको सबसे बड़ी बात समझता हूँ।'

कर्तव्यपालन ईश्वरकी सर्वश्रेष्ठ पूजा है। उपकारशील मनुष्यके हृदयमें सदैव सत्कर्मोंके स्रोत फूटते हैं; क्योंकि उसके मनमें ईश्वर जड़रूपमें विद्यमान रहते हैं।

प्रजापतिः···बहुधा वि जायते। (अथर्ववेद १०।८।१३)

अर्थात् इस विश्वमें परमात्मा ही अनेक रूपोंसे जन्म ले रहा है। संसारके सब प्राणधारी परमात्माकी प्रतिमूर्तियाँ हैं।

याद रखिये—

मर्त्या ह्वाअग्ने देवा आसुः।

(शत० ब्राह्मण ११।१।२।१२)

अर्थात् इस दुनियामें मनुष्य शुभ कार्य करके ही देव बनते हैं। जैसे भी बन पड़े शुभ कर्म करो और इसी शरीरसे भू-सुरका पद प्राप्त करो। धर्मकर्तव्योंका पालन करनेवाले ही देवता हैं।

त्याग और अनुराग

पुण्यका उत्तम फल अवश्य मिलता है

इस समस्त संसारमें ईश्वरका एक गुप्त नैतिक शासन-विधान निरन्तर चल रहा है। मनुष्यमें ईश्वरत्व प्रचुरतासे मौजूद है तथा वह उससे भले काम कराता रहता है। ईश्वरके इस नैतिक शासन-विधानके अनुसार जीवन चलानेवाला मनुष्य आरोग्यवान्, प्रतिभावान् और सुखी एवं पूर्ण तृप्त रहता है, इसके विपरीत पापके दूषित मार्गपर चलनेवाला मनुष्य आन्तरिक जीवनमें घोर अशान्ति, आत्मभर्त्सना और क्लेशका अनुभव करता है।

प्रो० लालजीराम शुक्लके शब्दोंमें, 'मनुष्य ईश्वरके नैतिक नियमके विरुद्ध आवेश, स्वार्थवश अथवा अज्ञानवश आचरण करता है, परंतु इससे उसे अपने इस दूषित आचरणके लिये ईश्वरकी ओरसे सजा भुगतनी पड़ती है। इस कष्टको भुगतनेके बाद वह

पुण्यके सन्मार्गपर आ जाता है। पुण्यके लिये सुख, तृप्ति और आत्मसंतोष तथा पापके लिये रोग, शोक और असंतोष यह एक वास्तविक तथ्य है। यह नियम विवेकपूर्ण है।'

अनेक व्यक्तियोंके जीवनमें उपर्युक्त नैतिक नियमकी सचाई स्पष्ट हुई है। नैतिक आचरणसे उन्हें अद्भुत लाभ हुए हैं। यहाँ ऐसे व्यक्तियोंके कुछ अनुभव उन्हींके शब्दोंमें उद्धृत किये जाते हैं—

पुण्यके कारण फाँसीसे बचा

श्रीगोपाल नेवटियाजीने रामलाल नाईके सम्बन्धमें कुछ अनुभव इन शब्दोंमें लिखे हैं—

'उस दिन जब रामलाल नाईने मालिश करते हुए पूछा—'क्यों बाबूजी, बम्बईवाला वह मुकदमा फैसल हो गया?'

मैं जरा चौंका! कहाँ बम्बई और कहाँ यह देहात। मेरे जवाब देनेसे पहले ही वह फिर बोल पड़ा—

'देख लीजियेगा बाबूजी, जूरी उसे बेगुनाह करार दे देंगे; पर मैंने जजकी आँखें देखी हैं। वह उसे नहीं छोड़ेगा।'

नाईकी बात नाईकी ठहरी। कैसा जज, कैसी जजकी आँखें और उन्हें देखनेवाला यह रामलाल? पर बात रुकी नहीं, आगे बढ़ी—

'बाबूजी, बम्बईवालेने तो गोली चलायी, लेकिन मैंने तो तलवार चलायी थी, दो वारमें तीन टूक……।'

यह सुनना था कि मैं उछलकर उठ बैठा।

वह बोला—'बाबूजी, अब चौंकिये मत। रामलाल अब कातिल नहीं, हजूरका खिदमतगार है! हाँ, हाथ जरूर वे ही हैं, जिनसे कभी तलवार चलायी थी।'

मनमें तो आया कि पूछ लूँ, 'किसको, कब और क्यों मारा था?' पर सुननेका रसभंग करना उचित न समझा। रामलाल अपनी कहानी आगे कहता गया—

'मेरे मुकदमेमें भी हजारों गाँववाले अदालतके दालानमें इकट्ठे होते और मिन्नतें करते थे कि मैं कानूनकी गिरफ्तसे छूट जाऊँ। पर हजूर जिस दिन अदालतमें पाँव रक्खा और जज साहबसे आँखें मिलीं, तो समझ गया कि उनसे असली बात छिपी नहीं है। हुआ भी यही, मुझे कत्लके कारण फाँसीकी सजा हो गयी है।'

यह सुनकर मेरे आश्चर्यका ठिकाना न रहा; क्योंकि फाँसीका सजायाफ्ता रामलाल मेरे सम्मुख सशरीर मौजूद था। मेरी उत्सुकताका अनुमान लगाकर वह खुद ही कहने लगा—

'बाबूजी, इसमें अचरजकी कोई बात नहीं। यह सब मेरे पुराने किये गये पुण्यका ही फल है। किया हुआ परोपकार ही सच्चा धर्म है। भगवान् हमारी हर अच्छाई और पुण्यका अच्छा बदला चुकाता है। हम चाहे छिपकर भी कोई भला काम करें, पुण्य कार्य एक बैंकमें जमाशुदा रकमकी तरह जमा रहता है और संकटके समय कवचकी तरह काम आता है। ईश्वर हमारे सभी कामोंका अच्छा या बुरा बदला चुकाता है—

राम झरोखे बैठिके, सबको मुजरा लेय।
जाकी जैसी चाकरी, वाको वैसो देय॥

यह राम नैतिक नियमका दूसरा नाम है। जबसे मैंने होश सँभाला था, तबसे परोपकार और दूसरोंकी भरपूर सेवा-सहायताकी ओर मेरी दृष्टि रहती थी। आस-पास कोई मेला-ठेला हो, मैंने दिन-रात एक-एक करके सारे-सारे दिन प्यासोंको पानी पिलाया है। भूखोंको अपने पाससे चना-चबेना बाँटा है, भिखारियोंको वस्त्र दिये हैं, पशुओंकी चिकित्सा करायी है, हरे पेड़को नहीं काटा है, कोई अनुचित काम नहीं किया है, उन सब पुण्यके कामोंका ही संचित फल है कि यह रामलाल फाँसीपर लटकनेसे बच गया।'

रामलालकी आपबीतीमें मुझे रस आ रहा था। वह कुछ रुककर फिर बोला—

'सिर्फ फाँसीसे ही नहीं छूटा, २५सालकी जेलसे भी छूट आया। सब इस पुण्यका ही प्रताप था और····और····बाबूजी, कहो तो उसका राज भी बताऊँ?'

मुझे तो पहले ही इन अनुभवोंमें जासूसी कहानीका मजा आ रहा था। सो स्वीकृतिकी गर्दन हिला दी। रामलाल उत्साहित होकर फिर बताने लगा—

'अब आप देखिये, पुण्य कहाँतक इकट्ठा रहता और तकलीफमें कैसे आदमीकी मदद करता है। फाँसीकी बात सुनकर घरवाली बहुत रोई-पीटी, पर हजूर मेरे चेहरेपर रंजकी एक भी शिकन नहीं थी। मैं जानता था कि ईश्वरका भक्त जो संयोगसे मुसीबतमें

फँस गया था, बेमौत नहीं मर सकता। फिर फाँसीकी तो बात ही क्या ? जेलमें मैंने फाँसीके सजायाफ्तोंको देखा है, अपीलके फैसले-तक उनकी नरकसे भी बदतर हालत हो जाती है। एक कोठरीमें ही खाना-पीना, टट्टी-पेशाब सब और सबसे खराब बात थी—चौबीसों घंटे सिरपर नंगी तलवारका लटकना। पर सच मानो मालिक, रामलालको ईश्वरके नैतिक नियमपर पूरा भरोसा था कि फाँसी हरगिज़ नहीं हो सकती और हुआ भी ऐसा ही। अपील हुई और फाँसीसे हटकर मुझे पचीस वर्षकी कैद मिली। ईश्वरने जिंदगी कायम रक्खी।'

'पचीस साल ! अभी तो········तो क्या यह सजा भी माफ हो गयी ?'

'नहीं सरकार, वहाँ भी मेरे पुराने संचित पुण्य कर्मोंने ही साथ दिया। नैतिक नियमके अनुसार जिंदगी चलानेका यही गुप्त लाभ मुझे मिल रहा था। दो ही साल बाद लड़ाई छिड़ गयी और हुक्म आया कि जो कैदी जंगमें जाना चाहेंगे उनकी सजा माफ हो जायगी। बस, फिर क्या चाहिये था ? मुझ-जैसे सैकड़ों कैदियोंकी अच्छी खासी फौज बन गयी। कहाँ वह लंबी कैद, बेड़ी, चक्की और मुसीबतें और कहाँ यह फौजी वर्दी, खाना, खुली हवा और अलमस्ती। यह सब पुण्यका ही फल था। ईश्वरका नैतिक नियम ही इस प्रकारकी परिस्थितियोंमें रक्षा करता है।

मैंने फौजमें रहकर बहुतसे मुल्क देखे। ठेठ अमेरिका तक

हो आया, पर देखिये ईश्वरकी गुप्त सहायता। मैं एक कोठरीका कैदी, दुनियाकी सैर कर रहा था!'

मैंने पूछा—'रामलाल, तुमने कहीं लड़ाई भी लड़ी ?'

वह बोला—'बाबूजी, बस, यही एक हविस बाकी रह गयी। लड़ाईमें तलवार तो क्या बंदूकका कुन्दा भी किसीके जिस्मसे छुआनेका मौका नहीं आया। वह तो हथगोलों और बमगोलोंकी लड़ाई थी। बंदूक चलानेकी बारी भी सिर्फ एक बार आयी, जब रोलकालके वक्त अचानक कहींसे गोली आकर जाँघमें घुस गयी।'

यह कहते-कहते रामलालकी छाती फूल उठी। मैंने उसपर प्रशंसात्मक दृष्टि डाली। वह कहता गया—

'गोली लगी, पर मैं होशमें ही था। यों घायल होनेपर मौत नजर आने लगती है, पर सच कहूँ बाबूजी, मुझे विश्वास था कि भगवान् मुझे उस परेशानीसे भी बचानेकी कोई तरकीब कर रहा था। फिर ऐसी परिस्थिति सचमुच निकल आयी। मुझे तो यही लगा, भला जिसने फाँसीके फंदेसे छुड़ा लिया और २५ सालकी जेलसे रिहा कर दिया, वह संचित पुण्य इस बार भी जरूर मेरी मदद करेगा और बाबूजी आप देख रहे हैं, मैं उस भगवान्‌की सहायताकी वजहसे ही आपके सामने जीता-जागता बैठा हूँ।'

देहातके एक मामूली नाईका जीवन इतना घटनापूर्ण हो सकता है, यह मेरी कल्पनासे बाहरकी बात थी; लेकिन पुण्यका

प्रताप-जैसी बात सही थी। बीमारीके कारण रामलालको फौजसे भी डिस्चार्ज कर दिया गया था।

इस अनुभवसे स्पष्ट है कि मनुष्यके भले कार्योंसे जो पुण्य मिलता है, उसका लाभ जिंदगीभर मिलता रहता है। धर्मबुद्धिके अनुसार जिया गया जीवन आत्मबल देता है।

ईश्वरीय ज्ञान जिस अन्तःकरणमें प्रकाशित होता है, उसे अपनी मलिनताएँ तुरंत दिखायी पड़ती हैं और यह भावना उत्पन्न होती है कि इन्हें जितनी जल्दी हटाया जा सकता हो, हटा दिया जाय। जहाँ प्रकाश रहेगा, वहाँ अन्धकारकी गुजर नहीं। इसी प्रकार जहाँ धर्मबुद्धि रहेगी, वहाँ गुप्त सहायता जरूर रहेगी। ईश्वर-भक्तिका अर्थ है कि प्राणिमात्रके प्रति प्रेम-भावना, परोपकार, सेवाभाव! सब जीवोंमें समाये हुए ईश्वरसे प्रेम करने और नैतिक-विधान पालन करनेका तरीका यही हो सकता है कि प्राणिमात्रके दुःख दूर करने और उन्हें सुखी बनानेके लिये अपनेसे जो कुछ हो सके, उसको अधिक तत्परतासे करते रहा जाय। धर्म जीभतक सीमित रहनेवाली वस्तु न होकर कर्मके द्वारा प्रकट करनेकी वस्तु है।

डैडी, वहाँ यात्रियोंको सही रास्ता बताने बैठते थे

सुश्री सुनन्दा (बम्बई) ने पाश्चात्त्य देशोंमें मिला एक संस्मरण इस प्रकार लिखा है—

'इस साल गरमीमें मैं 'स्विट्जरलैण्ड' गयी थी। लुगानोंमें जहाँ हमने रहनेके लिये मकान लिया था, उसके निकटसे ही सीधी सड़क सेंट गाटहार्ड दर्रेको जाती थी; लेकिन जहाँसे सड़क और सड़क

कहीं अन्यत्र जाती थी—पहाड़ोंमें। बहुधा यात्री गलतीसे उस दूसरी सड़कपर निकल जाते रहे होंगे। पर हमारी बगलमें ही एक वृद्ध सज्जन रहते थे।

घरमें वे और उनकी बेटी लीना—दो ही व्यक्ति थे। किसी दुर्घटनामें वे सज्जन अपने चलने-फिरनेकी शक्ति खो बैठे थे। अतः कहीं भी आने-जानेके लिये उन्हें पहियेदार कुर्सीका सहारा लेना पड़ता था। वे बड़े परोपकारी और सेवाभावी व्यक्ति थे। इस शरीरसे जो कुछ सेवा हो जाय, दूसरेको कुछ भी लाभ पहुँचाया जाय, इसे धर्म मानते थे। इस सेवाभावके कारण वे प्रतिदिन बड़े तड़के उठते और अपनी कुर्सी स्वयं लुढ़काते वहाँ ले आते, जहाँसे सड़क दो दिशाओंमें बँट गयी थी। वहीं एक पेड़की छायामें वे दिन-ढले तक बैठे किताब पढ़ते रहते। लीना उनके लिये चाय-नाश्ता वगैरह वहीं ले जाती।

मेरी जिज्ञासा जब प्रबल हो उठी, तो मैंने एक दिन लीनासे पूछा—'वृद्ध डैडी आराम न कर सड़कके किनारे क्यों बैठते हैं?'

वह सुनकर एक क्षण मौन रही। फिर बोली, 'डैडीमें मनुष्यमात्रकी सेवा करनेकी प्रबल मानवीय भावना है। उनके पाँव बेकार हैं फिर भी वे अधिक-से-अधिक यात्रियोंकी सहायता करना चाहते हैं। अपने कल्याणकी, अपने सुख और स्वार्थकी पूर्ति संसारके सभी प्राणी स्वतः कर लेते हैं, किंतु डैडी यह मानते हैं कि मनुष्यको सबसे अधिक विचारशील तथा विवेकवान् होनेका अवसर उपलब्ध होता है, उसका सदुपयोग इसीमें है कि वह विश्व-हितमें

अपनेको लगा दे। सबकी भलाईकी भावनाएँ रक्खे। डैडी वहाँ यात्रियोंको सही रास्ता बतानेको बैठते हैं। अगर कोई यात्री गलत सड़कपर मुड़ जाता है, तो उसे सही रास्ता बतला देते हैं।'

उनका कहना है—'अपने इस बेकार जीवनको इस ढंगसे भी दूसरोंके लिये उपयोगी बना सका, तो मैं सुखपूर्वक जी सकूँगा। हम जो कहते हैं, पहले उसे अपने खुदके व्यवहारमें आने दें, तो उसकी अच्छी प्रतिक्रिया तो स्वयं होगी! पुचकारनेसे पशु और पक्षी भी आत्मीयता प्रकट करने लगते हैं, फिर इस मनुष्यका तो क्या कहा जाय? यह तो आत्मीयताके लिये सदा अपनी झोली फैलाये रहता है। आप दूसरोंके साथ नेकीका व्यवहार कीजिये, इसमें आपकी भलाई पहले है। परोपकारके नामपर खर्च किया हुआ आपका प्रत्येक कण असंख्यगुणा होकर लौटेगा। इस रास्ता बतानेके कार्यसे मेरी आत्माको सुख, शान्ति और संतोषका अनुभव होता है।'

मिचिगन, स्वीडन, ब्राजील आदि देशोंसे उन्हें कुछ पत्र भी मिले हैं, जिनमें रास्ता बतानेके लिये उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट की है। डैडी उन पत्रोंको अपनी अमूल्य निधि मानते हैं।

यह कहते-कहते लीनाकी आवाज भर्रा गयी और मैं पेड़के नीचे बैठकर रास्ता बतलानेवाले उस पुरुषकी समाज-सेवा-भावना-को देखकर दंग रह गयी।

इस संस्मरणसे यह स्पष्ट होता है कि मनुष्य सच्चा आदमी बनकर जिये, यही बहुत है। मनुष्यका सच्चा गौरव इस बातमें है कि उसे मानवीय सद्गुणोंसे सम्पन्न, सभ्य, सुसंस्कृत एवं सज्जन

कहा जाय। मनुष्यकी महत्त्वाकाङ्क्षा यह होनी चाहिये कि उसके पास मानवीय सद्गुणोंका भण्डार अधिकाधिक मात्रामें विकसित रहे। किसीकी प्रगति, सम्पन्नता एवं बुद्धिमत्ताकी सर्वोत्तम कसौटी यह है कि वह पाशविक दोष—दुर्गुणोंको परास्त करता हुआ, अच्छे दिव्य मानवीय सद्गुणोंको बढ़ावे और जीवन-क्रमको आदर्श एवं अनुकरणीय बनावे। मानवीय पुरुषार्थोंमें सबसे बड़ा पुरुषार्थ आत्म-निर्माण ही है। जनताकी सेवासे बढ़कर मनुष्य-जीवनकी सफलता और कुछ नहीं हो सकती।

अपराधीकी अजीब परोपकार-भावना

बरमिंघमका एक समाचार है। एक अपराधीने, जिसका नाम विलियम बोवेन था, १९६१ में अपनी पत्नीकी हत्या कर दी थी। लगभग ५ साल मुकदमा चलनेके बाद अदालतद्वारा वह हत्याका अपराधी ठहराया गया, जिसके परिणामस्वरूप उसे प्राणदण्डकी सजा सुनायी गयी।

प्राणदण्डसे पूर्व अपराधीसे उसकी अन्तिम इच्छा पूछी गयी, तो उसने कहा, 'मेरा दुर्भाग्य है कि जीते-जी मैं कोई पुण्य कार्य न कर सका, पर मरनेसे पहले मेरी धर्मबुद्धि जाग्रत् हो उठी है और मैं कोई परोपकारका काम करना चाहता हूँ, जिससे सुखपूर्वक मर सकूँ। मरनेसे पहले मैं ऐसा काम करना चाहता हूँ जो एक उदाहरण बन सकूँ और जो मेरे-जैसे अन्य अभागोंको प्रेरणा दे सके। मैंने यह निश्चय किया है कि मेरी दोनों आँखें निकालकर उनको किन्हीं अंधोंको देकर दृष्टिमान् बना दिया जाय। मुझे

खेद है कि मेरे शरीरके अन्य अङ्ग किसीके कुछ काम नहीं आ सकते, नहीं तो मैं वे भी दे देता ।'

अभियुक्तकी अन्तिम इच्छाके अनुसार उसकी दोनों आँखें निकाल ली गयीं और बादमें बिजलीकी कुर्सीपर बिठाकर प्राणदण्ड दे दिया गया । उन दोनों नेत्रोंको नेत्र-चिकित्सकोंने एक अंधे वृद्ध और एक अंधी किशोरीको एक-एक आँख लगाकर दृष्टिवाला बना दिया है ।

एक पुण्यात्मा रिक्शावाला

रुड़कीका एक समाचार इस प्रकार है । एक अध्यापककी माता सख्त बीमार हो गयी । वे गरीब चिकित्साके लिये जल्दीसे एक डाक्टरको बुला लाये । परंतु दुर्भाग्यसे डाक्टरके पहुँचनेसे पहले ही अध्यापककी वृद्धा माताजी चल बसीं । अध्यापकने डाक्टरसे क्षमा माँगी और कहा कि 'आपको यहाँ आनेमें बड़ा कष्ट हुआ है ।'

डाक्टरने उत्तर दिया, 'कोई बात नहीं । बस, आप तो यहाँ आनेकी मेरी फीस पाँच रुपये दे दीजिये ।' बिना चिकित्साके ही फीस ! कातर और दयाकी भीख माँगती हुई निगाहसे अध्यापकने डाक्टरको देखा । उसके घरके अंदरसे बच्चों और पत्नीके रोनेकी कारुणिक ध्वनि आ रही थी । पर डाक्टर ५) रु० लेकर ही वहाँसे हटा । उसे तनिक भी दया न आयी ।

अध्यापक डाक्टरको रिक्शामें लाया था । उसने रिक्शा-वालेको आठ आने मजदूरी दी, पर उसने यह रकम लेनेसें इन्कार कर दिया । जाते हुए वह प्रेमपूर्ण स्वरमें बोला—

'आपकी माँ मरे और मैं आपसे पैसे लूँ। मैं डाक्टर नहीं हूँ, गरीब रिक्शावाला हूँ। आदमी ही संकटके समय आदमीके काम आता है। मेरे दिलकी जगह पत्थर नहीं लगा है।'

अध्यापकने उससे कहा—'आपने तो मजदूरी की है। पसीना बहाया है, मेहनत की है, इसीलिये आप मजदूरीके हकदार हैं। आपको मजदूरी लेना उचित है। ले लीजिये।'

लेकिन रिक्शावाला बिना पैसे लिये ही चला गया।

भौतिकवादी दृष्टिकोणवाला डाक्टर घृणाका और आध्यात्मिक दृष्टिकोणवाला रिक्शावाला हमारे लिये अनुकरणीय उदाहरण हैं। धर्म वह है, जो मनुष्यसमाजको सुव्यवस्थित, सुनियन्त्रित और सुविकसित रखनेमें सहायता करे। पर खेद है कि आज उसे वह प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं हो रही, जो वास्तवमें होनी चाहिये। जबतक मनुष्यके कण-कणमें व्याप्त आत्मभावका विकास नहीं होता, तबतक कानूनी व्यवस्थाएँ चाहे कितनी भी कठोर क्यों न हों, मनुष्यकी बुराइयाँ कम नहीं हो सकतीं। ईश्वरके नैतिक विधानमें विश्वास करने और उसे चलानेमें ही हमें गर्वका अनुभव करना चाहिये। हम सद्गुण विकसित करते रहें।

ईश्वरत्वके सद्गुणोंको अपने आचरणमें विकसित करनेसे ही हमारा समाज उन्नति कर सकता है। स्मृतियोंमें धर्मके जो लक्षण बतलाये गये हैं, उनमें त्याग, क्षमा, दया, समता, सेवा और परोपकारको ही सर्वश्रेष्ठ माना गया। ये दिव्य सम्पदाएँ जहाँ व्यक्तिगत जीवनमें शान्ति और संतोष प्रदान करनेवाली हैं, वहाँ

उनका आचरण भी समाजमें ही हो सकता है। फलस्वरूप सामाजिक जीवनमें भी वैसे ही सत्परिणाम दिखायी देना स्वाभाविक है।

पुण्यकर्म सत्त्वकी संशुद्धिपर निर्भर हैं। मन और बुद्धिमें जितनी निर्मलता होती है उतने ही स्वच्छ कर्म होते हैं। जिसका स्वभाव अच्छा बन जाता है, उससे परिस्थितियोंके बन्धनोंमें पड़कर भी बुरे कर्म नहीं होते।

प्रायः साधारण आदमी सोचता है कि बुरा काम करके पूजा-पाठ, जप-तप, यज्ञ-व्रत, देवदर्शन आदि कर लेनेसे उसका फल नहीं भोगना पड़ता। पर यह निश्चित है कि पुण्य और पापके फल भोगने ही पड़ते हैं। यह दूसरी बात है कि कभी अच्छाइयाँ बुराइयोंको दबा लेती हैं और कभी बुराइयाँ अच्छाइयोंको दबा लेती हैं। गुण अधिक होते हैं तो पाप कम हो जाते हैं। दुर्गुण अधिक होते हैं तो पाप बढ़ने लगते हैं।

मनुष्यमें अच्छाई भी होती है और बुराई भी। महाभारतके स्वाध्यायसे पता लगता है कि दुर्योधन, कर्ण आदिमें जहाँ बुराइयाँ थीं, वहाँ अच्छाइयाँ भी थीं। बुराईकी मात्रा अधिक होनेसे कौरव पराजित हो गये। अच्छाईकी मात्रा बहुत अधिक होनेसे पाण्डवों-को विजय मिली।

सबसे बड़ी अच्छाई है गुरुदेव, भगवान् या परमेश्वरकी शरणमें जाना और उनकी आज्ञाका पालन करना। जिसमें यह अच्छाई होती है, परमात्मा उसकी सब बुराइयोंको दूर कर देता है।

अपना हाथ जगन्नाथ !

आप समझते हैं कि हमारी सहायता दूसरे करते हैं, तब ही हम जीवनपथपर अग्रसर हो सकते हैं । हम दूसरोंके आश्रित हैं । हमें उनका सहयोग और सहायता चाहिये । वास्तवमें यह विचार एकदम गलत है !

ईश्वरने मनुष्यको स्वयंमें पूर्ण बनाया है । उसमें उन तत्त्वोंका प्रचुरतासे समावेश किया गया है, जिनसे जीवनमें प्रगति और उन्नति होती है । मनुष्यके मस्तिष्क और आत्मामें अद्भुत मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक शक्तियाँ भरी पड़ी हैं । उसके उन्नतिशील विचारोंमें जीवननिर्माणकी प्रचुर सामग्री भरी पड़ी है ।

इन शक्तियोंकी भिन्न-भिन्न दिशाएँ हैं । आप जो चाहें, जिधर चाहें, वही मार्ग पकड़ सकते हैं । साहस और शौर्य, धैर्य और संघर्ष, परिश्रम और उद्योग, भक्ति और विद्या इत्यादि विचारोंकी भिन्न-भिन्न दिशाएँ हैं । जो व्यक्ति जिधरको चल पड़ा, उधर ही अपने विचारबलसे उन्नति करता जाता है । इसका जीवनके क्रियात्मक क्षेत्रमें प्रयोग करके लाभ उठाता है ।

हमारा अज्ञान

कभी-कभी आदमीको बहुत दिनोंतक अपनी शक्तियोंका ज्ञान नहीं होता । इस सद्ज्ञानके अभावमें वह हवामें उड़नेवाले पत्तेकी तरह इधर-उधर निरुद्देश्य उड़ता रहता है । फिर एकाएक किसीके सम्पर्क अथवा सत्संगसे उसमें अपनी शक्तियोंके प्रति विश्वास पैदा होता है और वह काफी उम्रके पक जानेपर अपनी उन्नति प्रारम्भ कर देता है ।

जो अपने शरीर, मन और आत्मामें छिपी हुई शक्तियोंके प्रति ध्यान नहीं देते, वे जीवनभर दीन, दुखी और निर्बल ही पड़े रहते हैं। आजन्म लोग उनकी ओर ध्यान नहीं देते हैं। ऐसे असंख्य व्यक्ति इस दुनियामें जन्मे और पशु-पक्षियोंकी तरह जीवनको नष्ट कर मिट्टीमें मिल गये। धरतीके समस्त भोग पुरुषार्थी और वीर पुरुषोंके लिये बने हैं। कायरों और आलसियोंके लिये दुनियामें कुछ नहीं है।

हम बड़े-बड़े वैज्ञानिकोंकी सफलतापर आश्चर्य करते हैं। उनके द्वारा बनाये हुए आविष्कारोंपर चकित और विस्मित हो जाते हैं। धनकुबेरोंकी गगनचुम्बी अट्टालिकाएँ देखकर दाँतोंतले अँगुली दवाते हैं। कलाकारोंकी कलाका प्रदर्शन देखकर हर्षसे ताली पीटते हैं। विशाल शैलश्रृङ्गोंपर चढ़नेवाले पुरुषोंके करिश्मोंपर देरतक विचार करते रह जाते हैं। पाश्चात्त्य देशोंने जलयान और वायुयानके क्षेत्रोंमें मछली और पक्षियोंको पीछे छोड़ दिया है। आदमी आज चन्द्रमामें पहुँच रहा है। यह सब मनुष्यके पौरुषके ही अद्भुत चमत्कार हैं।

आज हमारा देश कायरता और आलस्यसे भर गया है। हमें आजाद हुए इतने दिन हो गये, पर हमने वह उन्नति नहीं की, जो वस्तुतः हमें कर लेनी चाहिये थी। हमने अपने देशकी अशिक्षा, मूढ़ता और गरीबीको दूर नहीं किया है। हमने खेतोंसे वह उपज उत्पन्न नहीं की है, जो हमें कर लेनी चाहिये थी। हमने विज्ञान और ज्ञानके क्षेत्रोंमें उन्नति नहीं की है। इस सबका स्पष्ट अर्थ है कि हम काफी दर्जोंमें पुरुषार्थी और परिश्रमी नहीं हैं।

वेदमें एक बड़ी उपयोगी उक्ति है—

कृतं मे दक्षिणे हस्ते, जयो मे सव्य आहितः।
गोजिद् भूयासमश्वजिद् धनंजयो हिरण्यजित् ॥
(ऋग्० ७।५०।८)

अर्थात्—'हे मनुष्य ! तू अपने दाहिने हाथसे पुरुषार्थ कर और विश्वास रख, बायेंसे सफलता निश्चित है। गोधन, अश्वधन और स्वर्ण इत्यादि अमूल्य वस्तुओंको तू अपने पुरुषार्थ और परिश्रमसे प्राप्त कर।'

यही हमारी सबसे बड़ी कमी है। हम कहते हैं कि जीवनमें हम कुछ न कर सके। हमें किसी भी क्षेत्रमें उल्लेखनीय उन्नति नहीं मिली। हम असफलतासे परेशान हैं। इसका कारण यह है कि हमने पुरुषार्थको अपने जीवनका अङ्ग नहीं बनाया है। हमारा जीवन और हमारा देश आलस्य और अकर्मण्यताके कारण उतनी उन्नति नहीं कर सका है, जितनी हमें वास्तवमें करनी चाहिये थी।

असहाय और निराशाके क्षणोंमें आपके गुप्त मनमें छिपा हुआ पुरुषार्थ ही सच्चा सहायक सिद्ध होता है। जब मनुष्य स्वयं अपनी सहायताको जुट जाता है, दूसरेका आसरा नहीं देखता, तब निश्चय ही वह सफलताके द्वारपर आ खड़ा होता है।

आप पुरुषार्थी बनें। नये साहससे कार्य और योजनाओंको अपने हाथमें लें। आपने अपने कार्यका जो क्षेत्र चुना है, उसमें साहसिकताका परिचय दें। निश्चय ही आप कायर या कापुरुष नहीं हैं।

याद रखिये, आपमें सैकड़ों प्रकारकी शक्तियाँ भरी पड़ी हैं। जीवन और समाजको उन्नतिकी दिशाओंमें बदलनेके लिये आपके

पास बहुत सामग्री है। साहस, शौर्य, उद्यम, परिश्रम, उद्योग, धैर्य और संघर्षकी शक्तियाँ आप खुद दृढ़ निश्चयसे अपने अंदर पैदा करते हैं और इनके प्रयोगसे जीवनके क्रियात्मक क्षेत्रमें लाभ उठाते हैं। यदि आप इन दिव्य शक्तियोंकी ओर ध्यान न देंगे, तो आजन्म दीन-दुर्बल ही बने रहेंगे। धरतीका भोग वीर पुरुषोंके लिये है। दुनियामें धन, सम्पदा, सम्मान, उच्चस्थिति सब कुछ है, पर उसके लिये मनुष्यकी कर्मठता भी तो जागे!

पौरुष न जागा, तो हाथ कुछ न लगेगा। पौरुष नामक तेजस्वी तत्त्वको चरित्रमें धारण करनेवाला ही सच्चे अर्थोंमें पुरुष कहलाता है, बिना पौरुषके आदमीकी शक्लमें हम सियार और चूहे-सरीखे हैं।

अपनी छिपी हुई गुप्त मौलिक शक्तिको खोज निकालिये। यह मालूम कीजिये कि किन-किन कार्योंको आप दूसरोंकी अपेक्षा श्रेष्ठतर और कलात्मक ढंगसे कर सकते हैं? किनमें आप दूसरोंसे ऊँचे और बढ़िया हैं? आपकी क्या-क्या विशेषताएँ हैं? दूसरोंके सहारे बैठे रहना निकम्मापन है। ईश्वरकी सहायता तभी आपको मिलेगी, जब आप स्वावलम्बी बनेंगे। खुद अपने हाथसे कार्य करेंगे। अपने पाँवोंपर खड़ा होकर ही मनुष्य उन्नति कर सकता है, पुरुष कहलानेके नाते पुरुषार्थ आपके जीवनकी पहली आवश्यकता है। कहा है—रुहो रुरोह रोहितः। (अथर्ववेद १३। ३। २६)

अर्थात्—उन्नति उसकी होती है, जो प्रयत्नशील है। भाग्यके भरोसे बैठे रहनेवाले आलसी हमेशा दीन-हीन ही रहेंगे।

आप एक महान् व्यक्ति हैं

हमारे शरीर, मन तथा परिस्थितियोंके सम्बन्धमें हमारी बहुत-सी क्रियाएँ हमारी प्रत्यक्ष इच्छाके बिना ही अज्ञातरूपसे हुआ करती हैं। जिन क्रियाओंको हम समझते हैं कि हम अपनी इच्छासे ही करते हैं, वे भी प्रायः किसी-न-किसी आवेगके वश ही की जाती हैं।

जब कोई गवैया किसी बाजेको अच्छी तरह सीख लेता है, तो फिर उसे इस बातकी आवश्यकता ही नहीं रहती कि उस बाजेको बजाते समय अपनी प्रत्येक अँगुलीकी गतिपर ध्यान दे। यदि उसका चित्त उन शब्दोंमें लगा हुआ हो, जिन्हें वह बाजेपर गा रहा है, तो उसकी अँगुलियाँ स्वयमेव ही ऐसी योग्य गतिसे बाजेपर पड़ेंगी कि उसमेंसे रागके अनुकूल ही स्वर-ताल निकलेंगे। ऐसी ही गति हमारी सब क्रियाओंकी होती है। यह सब कार्य हमारे गुप्त मनद्वारा होता है। किसी सुपरिचित कार्यके करते समय बाह्य मन भ्रमण भी करने लगता है, तो भी गुप्त मनके प्रभावसे चुपचाप क्रिया स्वयं होती रहती है।

अपने जीवनमें हम प्रतिक्षण कुछ-न-कुछ नया कार्य करते रहते हैं, जिनका हमें ज्ञान भी नहीं होता। उनमेंसे कुछ आदतें तो अच्छी होती हैं और कुछ बुरी। पहले तो उनका ज्ञान न होनेसे उनका प्रभाव बहुत थोड़ा होता है, पर समय पाकर जब वे गहरी जड़ें कर लेती हैं तो उनसे छुटकारा पाना कठिन हो जाता है। पान खाने, बीड़ी-सिगरेट पीने, माँस-भक्षण, सिनेमा देखनेका गंदा व्यसन, कड़े-रूखे और अभिमान भरे वचन आदि आदतें, मित्रोंमें तथा समाज-

में अति सूक्ष्म रूपोंमें शुरू होती हैं, किंतु समय पाकर वे गहराई-से जीवनमें जड़ पकड़ लेती हैं। बच्चोंमें चोरी-अपराधकी वृत्ति या युवकोंमें व्यभिचारकी दुष्ट प्रवृत्तियाँ धीरे-धीरे जमकर बढ़ती जाती हैं। पहले छोटेसे कार्यसे एक गंदी आदत या विषैले विचारका प्रारम्भ होता है, पर उसीके बढ़ जानेपर उससे छुटकारा पाना असम्भव-सा हो जाता है।

उन्नति करना अपने वशकी बात है। अच्छे विचारों, अच्छी आदतों या शुभ संकल्पोंको ग्रहण करना हमारे वशकी बात है। दैवी-वृत्तियाँ जब सोने लगती हैं, तभी दुष्ट आसुरी-वृत्तियाँ जागती हैं। असुर हमारे अंदर सोये पड़े रहते हैं, या यों कहिये कि हमारे मनमें बसने और सदा जाग्रत् रहनेवाले देवता उन्हें दबाये रहते हैं। दैवी-वृत्तियाँ उन विषैले राक्षसों-को दबाये या शक्तिहीन बनाये रहती हैं। यदि हम वास्तविक सुख-शान्ति चाहें तो हमें दैवी-वृत्तियों-जैसे प्रेम, दया, सहानुभूति, सेवा, त्याग, विनय आदिको सतत जाग्रत और विकासोन्मुख रखना चाहिये। यदि शुद्ध वृत्तियाँ या आपके मनोराज्यमें सोये हुए देवता लगातार जागते रहें, अपना देवोचित कार्य सजगतासे करते रहें तो असुर-वृत्तियोंको पनपनेका अवसर ही नहीं प्राप्त होता और मनुष्य भव्य मार्गोंमें बढ़ता चला जाता है। शुभ संकल्पोंको ग्रहणकर कार्यरूपमें परिणत करना हमारे हाथमें है। यदि हम सदैव सावधान रहें और विवेकसे अच्छी आदतों-को ही चुनें तो बहुत कुछ उन्नति कर सकते हैं। हम अपना

चरित्र जैसा चाहें, बना सकते हैं। सत् संकल्पकी शक्ति स्वाभाविक रूपसे मनुष्यमें छिपी हुई है। स्वयं आपमें भी दैवीशक्ति है। इसको खोजकर और इसको उन्नत कर निरन्तर इसका उपयोग कर हम इसे जितना चाहें बढ़ा सकते हैं।

दिव्य शक्तियोंके उपयोगसे उन्हें विकसित कीजिये—याद रखिये, आपकी शक्तियाँ उत्तरोत्तर उपयोगसे ही बढ़ती हैं। यदि उनसे काम न लिया जाय, तो वे सोने या क्षय होने लगती हैं। प्रत्येक कार्यका कारण विचार है। हम अपने मानसिक साम्राज्यके स्वतन्त्र राजा हैं।

यह मानसिक राज्य भी कैसा विचित्र राज्य है। इसमें विचित्र कल्पनाएँ और दुनियाँभरकी देखी, सुनी तथा बिन देखी सभी बातें होती हैं। इस राज्यमें स्वयं आपके अतिरिक्त किसी दूसरेकी पहुँच नहीं है। यह राज्य ऐसा है कि जहाँ किसी स्थूलकी गति नहीं है। यह राज्य शून्यमें स्थापित है और वह शून्य साकार—गणितका शून्य नहीं, परंतु निराकार है! वहाँ वायुकी भी पहुँच नहीं है।

अपने मानसिक, कल्पनात्मक राज्यमें आप पूर्ण स्वतन्त्र हैं और सब नियमोंके निर्माता आप स्वयं ही हैं। सब कुछ आप ही हैं। असम्भवको सम्भव बना सकते हैं। यह आपका ऐसा गुप्त राज्य है, जिसे न तो कोई देख सकता है और न कोई जान सकता है तथा न आपके विचारोंसे किसी व्यक्तिको किसी प्रकारकी आपत्ति हो सकती है।

स्मरण रखिये, कठिनाई और सरलता, असफलता और सफलता, लाभ और हानि, उन्नति और अवनति—सब आपके मनके अनुसार ही आपके जीवनमें प्रतिबिम्बित होती हैं।

निराश कभी मत होइये! उन्नतिके लिये, अच्छी आदतोंके लिये, अपने शुभ संकल्पोंकी सिद्धिके लिये सतत प्रयत्न करते रहिये। बार-बार प्रयत्न करनेसे ही आपको उत्साह मिलेगा—सफलता मिलेगी। आपके कठिन कार्य सरल होते जायँगे। प्रत्येक प्रयत्न, आपकी प्रत्येक छोटी-सी सफलता आपका आत्मबल बढ़ानेवाली है। भविष्यमें आप कठिनतर कार्य भी हँसते-हँसते कर सकेंगे। जीवनमें सबसे आवश्यक अपने शुभ संकल्पोंकी सिद्धिके लिये सावधान रहकर प्रयत्न करते रहना ही है। इस आत्मबलकी आवश्यकता युवकोंको ही नहीं, किंतु वृद्धोंके लिये भी है।

सफलता एक आदत है

सफलता एक आदत है। छोटेपनसे ही सफलताकी आदत बनाइये। मनुष्यके मनमें ऐसी अद्भुत शक्तियोंका भण्डार है, जिसकी कल्पना स्वयं मनुष्य नहीं कर सकता। नैपोलियन बोनापार्ट संसारका एक वीर शक्तिशाली व्यक्ति समझा जाता है। वह एक निर्भीक नेता था। उसके वीरतापूर्ण साहसिक कार्योंके कारण ही संसारके इतिहासमें उसका नाम अमर हो गया है, किंतु जब हम उसके प्रारम्भिक जीवन-पर ध्यान देते हैं तो हमें आश्चर्य होता है कि किस प्रकार नैपोलियन इतनी उन्नति कर सका।

'क्या वह किसी धनी पूँजीपतिका पुत्र था?'

'बिलकुल नहीं ; उसका जन्म कोर्सिका नामक द्वीपमें एक गरीब परिवारमें हुआ था।'

'क्या उसे शिक्षा और जीवनकी सुविधाएँ प्राप्त थीं ?'

'नहीं, बेचारे नैपोलियनकी शिक्षाकी कुछ भी व्यवस्था न हो सकी थी।'

'क्या बचपनमें वह आराम और शानसे रहा ?'

'नहीं, उसका बचपन अन्धकारमय था। वह अपने बाल्यकालसे ही मन्दबुद्धिवाला लड़का समझा जाता था। उस समय उसका स्वास्थ्य भी ठीक नहीं था। साथ-ही-साथ वह अत्यन्त दुर्बल एवं कृश शरीरका व्यक्ति था।

इतनी मुसीबतों, कठिनाइयों, विरोधोंके बावजूद अपने आत्मबल और उच्च संकल्पशक्तियोंके बलपर नैपोलियनने उन्नति की थी। वह गरीब, अल्पशिक्षित होकर भी फ्रांसका शासक बना। यह शासक अपने बचपनके नैपोलियनसे बिलकुल भिन्न था। नैपोलियन एक साधारण सैनिकसे फ्रांसका सेनापति बना। अनेक यूरोपीय देशोंको पराजित करके उसने अपने राज्यमें मिलाया। उसकी आश्चर्यजनक उन्नतिका कारण उसका आत्म-विश्वास था। वह अपने मनोराज्यमें सदा यही सोचा करता था कि वही संसारका एक वीर पुरुष है। उसे बचपनसे ही अपनी वीरता और महानतापर विश्वास जम गया था। उसका कहना था कि संकल्पबलकी सहायतासे संसारमें कोई वस्तु असम्भव नहीं है। वह प्रारम्भसे ही अपने मनोराज्यमें विश्वपर शासन करनेका स्वप्न देखता था।

आप भी अपनी महानतामें अखण्ड विश्वास रखिये—अपनी महाननामें सदा विश्वास रखिये। मनुष्यके मनमें ऐसी अद्भुत शक्तियोंका भण्डार है, जिसकी कल्पना स्वयं मनुष्य भी नहीं कर सकता।

मनकी प्रधानता होनेके कारण ही इस शरीरका नाम मनुष्य है। विकसित मनवाले व्यक्तिको ही मनुष्य कहना चाहिये। जीवनमें प्रत्येकपर मनका प्रभाव देखा जाता है। मनुष्य अपने विचारोंके कारण ही बन्धन अथवा मोक्षमें पड़ता है। विचारोंको एक उद्देश्यपर केन्द्रित करनेसे ही शक्ति उत्पन्न होती है। अतः जैसे विचारोंका मनन, चिन्तन या मनमें निवास होगा, वैसी ही इच्छाशक्ति उत्पन्न होगी।

यदि आपके विचार नीचे स्तरके, विषय-वासना, व्यर्थ खेल-कूद, मनोरञ्जन, सैर-सपाटा,—क्षणिक आनन्दके हैं, तो शक्ति भी वैसे ही होगी। जिनके विचार क्षण-क्षण बदलते रहते हैं, वे भला कैसे आगे बढ़ेंगे।

आप दुर्बल शरीर नहीं, सर्वशक्तिमान् आत्मा हैं। जहाँ विचार दृढ़ और संशयरहित है, वहाँ शक्ति प्रबल और तीव्र होती है। विचारोंमें स्थिरता और टिकाऊपन दृढ़ता और श्रद्धासे होता है।

जरा विचार कीजिये आप कौन हैं? क्या आप शरीर हैं? क्या आप हाड़, मांस, रक्त, चमड़ा आदि दुर्गन्धयुक्त घृणोत्पादक पदार्थोंसे बने हुए पुतले हैं? नहीं, आप हाड़, मांस, रक्त कुछ नहीं हैं। आप एक देव-मूर्ति हैं। जब शरीरपर कोई थप्पड़ मारता है, तब आप कहते हैं कि मुझे मारा।

यह भूल करते हैं। विचारें, तो आपको मालूम होगा कि आप शरीर नहीं हैं, किंतु स्वयं विचार हैं। स्वयं शक्ति हैं। आप वैसे ही हैं, जैसा आप वस्तुतः विचार करते हैं। यदि आप अपने-आपको केवल शरीर समझते हैं तो शरीरमात्र हैं। यदि आप अपने-आपको आत्मा, महान् आत्मा, उन्नत महत्तर आत्मा, सर्वशक्तिमान् आत्मा समझते हैं, तो वास्तवमें सर्वशक्तिमान्, सर्वगुणसम्पन्न, योद्धा, धीर-वीर नर-पुंगव हैं। आप दिव्य-मूर्ति हैं। अपने संकल्पसे आप जो चाहें बन सकते हैं।

आप बलवान्, स्वस्थ, तेजस्वी होनेके जन्मसिद्ध प्रकृत अधिकारी हैं। कभी मत कहिये कि मैं दुखी हूँ, अशक्त हूँ, गरीब हूँ, वृद्ध हूँ, बीमार हूँ, निर्बल हूँ और ज्वर-ग्रस्त हूँ। ये सब बातें ऊपरी हैं—शरीरसम्बन्धी हैं।

आप शरीरसे ऊँचे हैं—बुद्धि हैं, बुद्धिसे भी परे आत्मा हैं। दैवीशक्तिके नायक हैं। सबके स्वामी हैं। मनपर पूर्ण अधिकार कीजिये। उसे बलवान् बनाइये। शरीर भी मनकी आज्ञा मानेगा। फिर दुःख, चिन्ता, निर्बलता, वृद्धावस्था या असफलताका अस्तित्व न रहेगा। निर्बलता छोड़ दीजिये। भ्रमके अन्धकारसे ज्ञानके प्रकाशमें जागिये।

यह 'अगर मगर' 'यदि ऐसा होता, तो मैं भी उन्नति करता।' 'मेरी सिफ़ारिश होती तो मैं तरक्की करता'.......'मगर ऐसा नहीं हुआ' योग्यताकी कोई पूछ नहीं, आदि कायरपनके शब्दोंका व्यवहार अपनी बातोंमें कदापि न कीजिये। ये शब्द आपको निर्बल बनाते हैं। हृदय और मनमें दुःख, शोक, रोग,

पीड़ा, हानि तथा निराशा, निर्बलता एवं आपत्तिकी बातोंको स्थान मत दीजिये। इनसे आपकी सामर्थ्य शिथिल होती है, अधिकार भ्रष्ट होता है और आप दासताको प्राप्त होते हैं।

लोक-लज्जाको अपने ऊँचे ध्येयकी पूर्तिके आगे मत लाइये। यह विचार आपको उन्नति करनेसे रोकता है। आपके पैर पकड़ लेता है। 'लोग हँसेंगे, टीका-टिप्पणी करेंगे, जगत्-हँसाई होगी, निन्दा होगी।' इसकी परवा मत कीजिये। उन्नतिका मार्ग कठोर और दुःसह होता है। संसारको पसंद नहीं आता। संसारके लोग उस व्यक्तिसे ईर्ष्या करते हैं, जो उन्नति कर रहा है। यदि आप जगत्की व्यर्थ बातोंकी परवा करेंगे, तो सदैवके लिये निराशाके गड्ढेमें गिरकर सदा एक ही स्थितिमें सड़ते रहेंगे। कूपमण्डूक बनकर बाहरका संसार न देख सकेंगे। ये दुर्बलताके विचार आपकी संकल्पशक्तिकी परीक्षाके लिये आते हैं। अतः इनसे विचलित न होकर अपनी दृढ़ताका परिचय दीजिये। असमर्थता मत दिखाइये। दृढ़ प्रतिज्ञा, आत्म-विश्वास और निरन्तर अभ्याससे असाध्य भी सुसाध्य हो जायगा। भगवान्की अहैतुकी कृपा और आत्मशक्तिपर विश्वास करके सतत आगे बढ़ते रहिये।

आत्माका तिरस्कार न होने दें, आत्माकी अवज्ञा न होने दें। अपने अन्तर्वासी, आत्मदीपकी सदा प्रज्वलित शिखाको मन्द न होने दें।

हम मानव संसारके कोलाहलमें इस अमृतवाणीको सुनकर भी अनसुना कर देते हैं।

शुभ विचारोंमें नवनिर्माणकी शक्ति है

अच्छे विचारोंसे मनुष्यके गुप्त मन, उसके वर्तमान जीवन और उज्ज्वल भविष्यका निर्माण होता है। जो मनोकामनाएँ गुप्त मनमें रहती हैं, हम चुपचाप जिन कल्पनाओंमें रमण करते रहते हैं, वे निश्चय ही पूर्ण होकर रहती हैं।

इसके विपरीत आत्महीनता, चिन्ता, भय और निराशाके विचारोंसे मनुष्यकी उत्पादक शक्तिका क्षय होता है। वर्तमान जीवन नरक-तुल्य बन जाता है। आत्महत्याएँ और दिलके दौरे होते हैं। जीते-जी मनुष्य मरेके बराबर रहता है।

उत्तम पवित्र विचारोंसे जो लाभ तथा हानिकर विचारोंसे जो हानि होती है, उसका ज्ञान साधारण मनुष्योंको बहुत कम होता है और विशेषकर अपढ़ लोगोंमें तो उसका ज्ञान शून्यके बराबर होता है। इसीलिये संसारमें असंख्य लोग जीवनमें परेशानीका अनुभव कर रहे हैं।

यदि लोगोंको शुभ विचार करनेका ढंग मालूम हो जाय और लोग पौज़िटिव तरीके (हितैषी-रूपमें) से सोचने-विचारने लगें, तो यही कठोर दीखनेवाला संसार सुखोंका भण्डार बन जाय। रोना-पीटना, चिन्ता, उद्वेग, भय, क्लेश, निराशा आदि मनोविकार मिट जायँ और आदिकर्ता ईश्वरका समग्र सुख-समृद्धि-भण्डार मनुष्योंके हाथ लग जाय।

विचार ही सृजनात्मक शक्ति है। सुरुचि, सुमति आदि

सद्विचारके ही नाम हैं। यह उच्चविचार, अपने हितका विचार ही समस्त भावी उन्नतिका आधार है।

'विचार' न दीखकर भी सब कुछ है। यही मनुष्यके मस्तिष्कका सर्वश्रेष्ठ अङ्ग है। सब मूल्यवान् मानसिक सम्पदा है। 'विचार' फालतू बात नहीं है, वह एक संज्ञा है, सृजनात्मक शक्ति है, उन्नतिका रूप है। उसमें क्रियाशील जीवन है। वह स्वयं ही जीवन है। वह सत्य है।

विचार ही मनुष्यका आदि-रूप है। जलमें लकड़ी, पत्थर-गोली आदि फेंकनेसे जैसा आघात होता है, जैसा रूप बनता है, जो असर होता है, वैसा ही तथा उससे भी अधिक तेज आघात विचारोंको चारों ओर वाणीद्वारा (भाषण-लेखन) फेंकनेसे होता है। दृढ़ शुभ विचार उत्तम वातावरणकी सृष्टि करते हैं। उनकी पहुँच-में जो भी आ जाता है, उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रहता।

विचारोंमें नये जीवन, नये समाज और नये विश्वकी रचना करनेकी अद्भुत शक्ति है। जब नये विचारोंको समाज ग्रहण कर लेता है तो उन्हींके अनुसार नयी पीढ़ीका जीवन चलने लगता है। जिसका मन नयेके प्रति उत्साहपूर्ण रहता है और मनमें बड़े होनेकी तीव्र लालसा होती है, जो व्यक्ति बड़ा अधिकारी, लेखक या वक्ता अथवा नायक होना चाहता है, जिसका मन सदैव शून्यमें—अपने मानसिक राज्यमें बड़ी-बड़ी वस्तुओं, ऊँचे-ऊँचे आदर्शोंकी रचना किया करता है, वास्तवमें विचार-बलसे वह एक दिन सचमुच ही बड़ा हो जाता है—यह सभी विचारशीलोंके अनुभवमें आयी हुई

बात है। जितने लोग साधारण स्थितिसे ऊँचे उठे हैं या जिन्होंने अमर नाम कमाया है, उन सभीने उन्नतिशील सद्विचारोंकी मुख्यता प्रत्येक कार्यमें बनायी है।

सालोमन नामक एक बड़े विद्वान्‌के कथनमें भारी सत्यता है। वे कहते हैं कि—'मनुष्य अपने मनमें जैसे स्थायी भाव रखता है, नित्य-प्रति जैसा सोचा करता है, वह क्रमशः वैसा ही बनता जाता है। प्रत्येक विचार उसके मनके सूक्ष्म केन्द्रोंका निर्माण करता है।'

परंतु इस विचार-शक्तिका एक दुरुपयोग भी है। वह है शेखचिल्लीकी तरह अनाप-शनाप कल्पनाओंमें निमग्न रहना और ठोस काम कुछ भी न करना। व्यर्थकी बड़ी-बड़ी बातें करनेसे और खाली हाथ बैठे रहनेसे कोई उन्नति नहीं होती। जो सोचें, वह करें। कर्ममें पूरे सच्चे, खरा सोना रहें। आपके कथनमें संकल्पकी सत्यता हो। कर्मकी पृष्ठभूमि हो। हाथ-पाँव साथ-साथ उठें। शरीर क्रियाशील रहे।

रचना करनेकी शक्ति उन्हीं विचारोंमें होती है, जिनमें सच्चा विश्वास, दृढ़ श्रद्धा और सतत अनवरत कर्म रहता है।

बाइबिलमें सत्य ही लिखा है—**According to your faith, be it unto you.** जितने अंशोंमें आपका सक्रिय विश्वास है, उतने ही अंशोंमें आप वास्तवमें 'आप' हैं। इससे स्पष्ट होता है कि शुद्ध और उच्च-क्रियाशील (**Active**) विचारोंमें ही जीवन-निर्माणकी शक्ति है।

शुद्ध और उच्च विचारोंके अतिरिक्त दृढ़ श्रद्धाकी भी जरूरत है। यदि एक विद्यार्थीका मन सदैव नौकरी करनेके विचारोंमें लगा रहे, तो वह आगेके जीवनमें नौकरी ही करेगा, परंतु यदि किसी उच्चाभिलाषीके मनमें ऊँचे परोपकारमय कार्य करनेकी भव्य भावनाएँ आती हैं, तो वह विचार-बलके कारण भविष्यमें अवश्य किसी अच्छे कामका स्वामी बनेगा और अनेक मनुष्योंपर शासन करेगा।

शुभ विचारोंसे रोगी स्वस्थ हुए

एक समाचार-पत्रमें यह समाचार था कि एक मानसोपचारकने रोगियोंके मनमें शुभ विचारोंको जमा कर दो सौसे अधिक रोगियों-को स्वस्थ कर दिया।

इसका रहस्य यह है कि रोगीको या किसीको भी जैसे विचारोंका बार-बार दृढ़तासे उपदेश दिया जायगा, वैसा ही कार्य उस रोगीके गुप्त मनद्वारा शरीरसे प्रारम्भ हो जायगा। मानसिक दृष्टिसे निर्बल रोगियोंको स्वास्थ्य, आनन्द, साहस, पौरुष, वीरता, प्रसन्नता आदिके विचार बार-बार सुनाये जाते थे। इसलिये उनका मन बीमारी और कमजोरीके विचारोंको छोड़कर स्वास्थ्य, आनन्द, प्रसन्नता आदिके गुणकारी विचारोंको ग्रहण करता था। परिणाम यह हुआ कि वे अपनेको स्वस्थ और सशक्त समझने लगे। इसलिये धीरे-धीरे उन्होंने स्वास्थ्य, आनन्द और शक्ति प्राप्त की।

देखिये, उचित और स्वस्थ विचारोंका कितना अद्भुत कार्य है।

यह तो साधारण श्रेणीके विचारोंका जादू है। जब आप विचार-विज्ञानका गूढ़ अभ्यास करेंगे और प्रत्येक कार्यका प्रतिक्षण निरीक्षण करेंगे तो आपको इन विचारोंकी सत्यता मालूम होगी और आप कहने लगेंगे कि वास्तवमें 'विचार' ही मनुष्यकी सबसे बड़ी उर्वरा सृजनात्मक शक्ति है।

हमारे मिलने-जुलनेमें भी विचारोंका बड़ा कार्य होता है। जो लोग प्रसन्न-चित्त और आनन्दी स्वभावके होते हैं, सदा आनन्दमें मस्त रहते हैं, चिन्ता नहीं करते, विपत्ति या बड़ी कठिनाई आने-पर भी शुभ विचारोंमें ही लीन रहते हैं और मुसीबतोंमें भी हँसते रहते हैं। उनसे कोई भी जब मिलता है चाहे वह कैसा भी उदास, खिन्न तथा चिन्ताग्रस्त, विपत्तिसंतप्त हो, प्रसन्न मुँहको देखकर अवश्य प्रसन्न हो जाता है। अपना दुःख-दर्द भूल जाता है और हँसी-खेलमें उनकी बातोंमें ही मग्न हो जाता है।

प्रसन्न विचारवाले लोग जहाँ जाते हैं, सर्वत्र आनन्दकी ही वर्षा करते हैं।

इनके विपरीत ऐसे लोग भी हैं, जिनका मुँह क्रोध, ईर्ष्या, कपट या उद्वेगमें हमेशा फूला रहता है। चेहरा बदसूरत रहता है और उदास विषादभरे विचारोंसे उनके चारों ओर उदासीका कड़वा विषैला वातावरण छाया रहता है। उनके पास कोई भी आदमी नहीं जाना चाहता और न कोई बातें करना ही चाहता है। उनका मुखमण्डल विषैले मनोविकारोंके कारण ही मलिन रहता है। ये सर्वत्र दुःख-रोग-शोक ही पैदा करते रहते हैं।

संसारमें ऐसे मनुष्योंकी आवश्यकता है, जिनका हृदय पवित्र त्यागमय प्रेमसे पूर्ण हो और जो सबके लिये आनन्दके स्रोत हों, जिनसे दुखी और शोकसंतप्त समाजमें आनन्द और उल्लासके प्रेम-साम्राज्य का विस्तार हो।

परमात्माका भण्डार आपके ही अंदर है, फिर आप प्रेम, सुख और आनन्दकी भीख बाहर दूसरोंसे क्यों माँगते फिरते हैं? मनुष्यकी सहायताके भिखारी क्यों बनते हैं?

ईश्वरके विपुल भण्डारमें सब वस्तुएँ उसीकी हैं, फिर सीधे ईश्वरसे ही क्यों नहीं माँगते हैं? उसकी देनेकी शक्तिमें क्यों नहीं विश्वास करते?

कारण यह है कि बचपनसे ही आपको इस बातकी शिक्षा नहीं दी गयी है और संसारके निर्बल और कर्महीन लोगोंकी देखा-देखी आप भी ऐसा ही करने लगे हैं?

आपमें आत्मविश्वासकी अतीव आवश्यकता है। यह आत्म-विश्वास ही आपमें ईश्वरका निवास है।

आप प्रश्न करेंगे, 'क्या ईश्वर छप्पर फाड़कर दे देगा?' हमारा उत्तर है, 'हाँ, देगा।' आप आत्मश्रद्धाको अपने मनमें स्थान दें।

उदाहरण देनेके लिये ऐसे बहुत-से उदाहरण हैं, पर आप स्वयं करके देख लें। गीताका यह श्लोक फिर याद कर लें—

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः॥

और बाइबिलमें कई स्थानोंपर कहा गया है कि 'यदि तू मेरे नामपर माँगेगा, तो मैं अवश्य दूँगा।'

फिर आया है कि 'यदि तू माँगता है, तो विश्वास कर कि तू पायेगा और यह भी अनुभव कर कि तू पा गया। तू अवश्य पा जायगा।'

परंतु दुःख इस बातका है कि हम अपना आत्मबल नहीं जगाते, पूरी तरह अपनी दिव्य शक्तियोंमें विश्वास नहीं करते, इसलिये दुखी रहते हैं।

आप सही विचार किया करें

विचारशक्तिके विषयमें बहुत-सी पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं और लिखी भी जा रही हैं, परंतु ऐसा लगता है कि अभीतक कुछ भी नहीं लिखा गया है। हम देखते हैं कि यह शक्ति सबके पास है, परंतु वे उसका उतना श्रेष्ठ और उपयोगी प्रयोग नहीं कर रहे हैं, जितना वास्तवमें उन्हें करना चाहिये। 'दिया तले अन्धेरा'—इसीका नाम है।

अपने उच्चतम आदर्शों, सर्वश्रेष्ठ स्वप्नों, उन्नतिशील विचारोंको मनमें रखिये। इन आदर्शोंको सुरक्षित रखिये। इन्हें अपने दैनिक जीवन और कार्योंमें प्रत्यक्ष उतारनेकी कोशिश कीजिये। यदि आप सुन्दर विचारोंपर दृढ़ रहेंगे, तो इन्हीं उच्च विचारोंके अनुसार आपका भावी जीवन बन जायगा।

स्वस्थ मन—सृजनात्मक उपयोगी और हितैषी विचार रखनेवाला मन ही आपके जीवनका निर्माता है। उत्तम मनसे ही

उन्नतिशील जीवनकी नयी दिशाएँ बनती हैं और अच्छे-बुरे कर्मोंका फल भी मनके कारण ही शरीर भोगता है। मनसे पराजय, कायरता, हीनत्व और चिन्ताके विचार निकाल दीजिये। पराजयसे मत डरिये। हर पराजयको आपमें नयी शक्ति भरनी चाहिये। पराजय नया साहस देनेवाली होनी चाहिये। उपयोगी पराजय वही है, जो मनुष्योंमें नवीन शक्ति और उत्साहका संचार करती है और विजयके लिये मार्ग सुगम बना देती है।

परंतु सब कुछ एक ही दिनमें जल्दी-जल्दी कर डालनेका प्रयत्न मत कीजिये। धीरे-धीरे शान्त संतुलित मनसे ही कार्य कीजिये। आपका उत्साह निरन्तर बना रहना चाहिये। वह कदापि शिथिल नहीं होना चाहिये। पहले खूब विचार कर लीजिये कि आप एक उन्नत आत्मा और पौरुषपूर्ण व्यक्ति हैं। कार्य करनेमें पूर्ण समर्थ हैं। आप विजयकी साक्षात् मूर्ति हैं। इस प्रकारके विचारोंको अपने स्वभावका एक स्थायी अङ्ग बना लीजिये। कुछ समयमें कठिन कार्य स्वभावतः सरल मालूम पड़ने लगेंगे।

अपने संकल्पोंको दृढ़ बनाइये। यही दृढ़ता सिद्धिकी आधार-शिला है। जैसा करेंगे, वैसा भरेंगे। पुरुषार्थी व्यक्तियोंके अनुसार यदि दृढ़तापूर्वक कार्य करेंगे, तो निश्चय ही जीतकर रहेंगे। अपनी गुप्त शक्तियाँ चुपचाप बढ़ाते रहिये। यदि आप सफल नहीं होते, तो प्रकृतिपर अथवा परिस्थितिपर या किसी व्यक्तिपर व्यर्थ ही दोषारोपण मत कीजिये।

विश्वास रखिये, आपका सर्वोत्तम समय भविष्यमें आनेवाला है

आप शायद यह समझे बैठे हैं कि आपका सर्वोत्तम समय व्यतीत हो चुका है और जीवनमें आपको जो सबसे बड़ी सफलताएँ मिलनी थीं वे मिल चुकी हैं।

यह एक भ्रान्त धारणा है। इसे त्यागकर आप नया आशा-वादी दृष्टिकोण अपनाइये।

मनुष्यका जीवन बहुत लम्बा है। उसमें प्रतिदिन और प्रतिपल नयी-नयी सफलताएँ मिलती रहती हैं। कोई अलक्षित हाथ प्रतिक्षण नयी प्रगतिकी प्रेरणा देता रहता है।

जीवन एक बड़ी पुस्तककी तरह है, जिसका एक-एक पृष्ठ क्रमशः खुलता जाता है। पता नहीं, इसका कितना विस्तार है। यह आगे कितना चलना है! इसकी मंजिल कितनी लम्बी है!

एक दिनकी घटना सुनिये। हम पोस्टआफिसमें बैठे हुए थे कि एक तीस-पैंतीस वर्षीय युवक वहाँ अपनी सेविंग्स पास-बुकमेंसे जमा की हुई रकम निकालने आये। उनके मुखपर चिन्ता, उदासी और घोर निराशा थी। चेहरेका रंग पीला-सा पड़ रहा था।

यों ही बातें शुरू हो गयीं। हमने हैरानीसे पूछा 'क्यों भाई! खाता क्यों बंद कर रहे हैं?' उन्होंने अपना म्लान चेहरा हमारी ओर मोड़ा। निराश आँखोंसे वे बोले, 'डाक्टर साहब! क्या बतायें। मुसीबतमें फँसे हैं।' मैंने कहा 'क्या किसी मुकदमेमें फँस गये हैं?'

वे बोले, 'अजी, जीवनभर मैंने कचहरीकी शक्ल नहीं देखी। यहाँ दूसरी ही मुसीबत है।'

मैं हैरान था। मनमें नाना प्रकारके तर्क-वितर्क उत्पन्न हो रहे थे कि स्वयं उन्होंने ही अपनी दर्दभरी गाथा सुनानी प्रारम्भ की।

वे बोले, 'पिछले सालसे मैं डाक्टरोंकी सलाह ले रहा हूँ। मेरे पेटमें भारीपन और कभी-कभी दर्द रहता था। कई डाक्टरोंको दिखलाया; पर अन्तिम डाक्टरने यह बताया है कि मुझे अपेन्डेसाइटस नामक रोग हो गया है। मेरी आँतका आखिरी भाग सड़ गया है। उसीके कारण पेटमें भारीपन, पुराना कब्ज और दर्द रहता है। ऑपरेशनद्वारा उस आँतके उस भागको काटकर निकाला जायगा।

इस पेटके ऑपरेशनको मैं सालभरसे टालता आया हूँ। अब डाक्टर साहब कहते हैं कि फौरन ऑपरेशन कराओ; अन्यथा मृत्यु निश्चित है। मेरी पत्नी और बच्चे बड़े परेशान हैं। कल ऑपरेशन कराना चाहता हूँ। सोचता हूँ आपरेशनके बाद बचूँ, न बचूँ। बादमें पत्नी और बच्चे खराब होंगे। जो कुछ जमा-पूँजी है, सब निकाल-कर उनके सुपुर्द कर दूँ और फिर शान्तिसे मृत्युके लिये तैयार रहूँ।' यह कहते-कहते युवकके नेत्रोंमें आँसू आ गये। मैं भी एक बार तो हैरान हो उठा। फिर बोला, 'आपने किसी औरको भी पेट दिखाया है?'

वे बोले, 'सबसे योग्य डाक्टरोंको दिखा चुका हूँ। मामूली वैद्योंपर मेरी आस्था नहीं है। मेडिकल साइंस इतना विकसित है। फिर संदेहकी गुंजाइश ही कहाँ!'

मैं—'आप ईश्वर और प्राकृतिक चिकित्सामें विश्वास करते हैं?'

वे—'नहीं, मैं उसी बातमें विश्वास करता हूँ जो तर्कसे साबित हो। अतः, जसे मेरी बुद्धि समझ सके और मस्तिष्क ग्रहण कर सके।'

मैं—'ईश्वरके लिये आप कल ऑपरेशन मत कराइये और मुझे एक सप्ताह अपनी चिकित्सा कर लेने दीजिये। जब मरना ही है, तब एक सप्ताह और इस दुनियाकी रोशनी और हवाका आनन्द ले लीजिये।'

वे कुछ प्रभावित हुए। मैंने उनसे कहा, "आत्माका निकट सम्बन्ध ईश्वरसे है। अतः आप निर्विकार हैं, यह मान लीजिये। अप्राकृतिक रहन-सहन और दूषित नास्तिक विचारधारासे आपने ईश्वरके शरीरको रोगोंका घर मान लिया है।

"अब आप ब्राह्ममुहूर्तमें जागिये और अपना ध्यान रोगविकार-रहित शुद्ध-बुद्ध, निर्मल निर्विकार ईश्वरपर लगाइये। मन-ही-मन कहिये—'मैं पूर्ण स्वस्थ हूँ, नीरोग हूँ। किसी दूषित विकारका तनिक भी अंश मुझमें नहीं है। ईश्वरीय शक्ति मुझमें जाग्रत् हो रही है और वह मेरे सब विकारोंको दूर कर रही है। मेरा सारा शरीर पूर्ण स्वस्थ है। रोगरहित है। रोगसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। मैं तो शुद्ध निर्विकार शरीरवाला व्यक्ति हूँ। मैं स्वस्थ हूँ। मेरा उदर पाचनका कार्य उचित रीतिसे कर रहा है। उसके संचित विकार दूर हो गये हैं।'

"यह तो मानसिक चिकित्सा रही। इससे आपका खोया हुआ आत्मविश्वास जाग्रत् हो जायगा और ईश्वरीय शक्तिका अद्भुत चमत्कार शरीरमें प्रकट होगा।

"दूसरा क्रम प्राकृतिक चिकित्साका है। आप एक क्लर्क हैं। आठ-दस घंटे कुर्सीपर बैठे कमर झुकाकर काम करते हैं। इसलिये आपको जीर्ण कब्ज हो गया है। आप दुगुना जल पीजिये। फलाहार, विशेषरूपसे फलोंका रस अधिक-से-अधिक लीजिये; चूस-

चूसकर आम और टमाटर खाइये । अन्तिम बात यह है कि प्रातः दो घंटे नियमितरूपसे टहलिये । हाथ-पाँवसे काम कीजिये । बस; शरीरका कायाकल्प हो जायगा ।'

आध्यात्मिक चिकित्साका कुछ ऐसा असर हुआ और ईश्वरकी कुछ ऐसी कृपा हुई कि वे महाशय स्वस्थ होने लगे । एक सप्ताहमें पेटका भारीपन कम हो गया । जीर्ण इकट्ठे मलको दूर करनेके लिये एनिमाका प्रयोग भी चालू रक्खा गया । आज उनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा है । वे नवजीवन पा गये हैं और उनका एपिन्डिसाइटिसका वहम दूर हो गया है ।

अब वे विचारधारामें भी पूर्ण आस्तिक हो गये हैं । ईश्वर-प्रार्थना और जल-चिकित्सामें उनका पूर्ण विश्वास है । मैं उनसे अब भी कहा करता हूँ, 'आपके जीवनका सर्वोत्तम समय और सबसे बड़ी सफलता भविष्यमें अभी आनेवाली है ।'

वे प्रायः उत्तर देते हैं—'मैंने ईश्वरकी शक्तिका अनुभव किया है और स्वस्थ जीवन पा लिया है । यही क्या कम है ! जिस शक्तिको तर्कद्वारा मुझे कोई न समझा सका था, वह श्रद्धाद्वारा मुझमें प्रकट हो गयी है ।' कभी-कभी जिसे हम जीवनका अन्त मान लेते हैं, वह हमारी आनेवाली नयी सफलताका प्रारम्भ होता है । अतः कभी भी निराश नहीं होना चाहिये ।

आत्मशक्तिका अक्षय भण्डार

जब आप किसी सुन्दर मधुसिक्त डालीपर विहँसते-किलकते सुवासित पुष्पको देखते हैं तो मन-ही-मन आपके हृदयमें यह इच्छा उठती है कि 'क्या ही अच्छा होता, यदि हम भी ऐसे ही सरल सुन्दर और आकर्षक रहे होते ! हममें भी ऐसा ही रंग होता; ऐसी ही गुणोंकी सुवास होती; हम भी ऐसे ही सरल और स्निग्ध होते; हम भी ऐसा ही निश्चिन्त आडम्बररहित जीवन व्यतीत करते ।'

जब आप मयूरके पंखोंकी चटकीली रंगीनी देखते हैं।

उसे नृत्यमें आत्म-विभोर देखते हैं, तो आपकी अनायास ही यह इच्छा होती है कि 'काश, हम भी ऐसा ही विमोहक नृत्य कर पाते, मस्तीसे दूसरोंको आकर्षित कर पाते। हमारे पाँवोंकी थिरकन हमारे हृदयकी भावनाओंकी गहरी और सच्ची अभिव्यञ्जना कर पाती। हमारे मुखसे निकले हुए गीतोंमेंसे हमारा हर्ष-विषाद, घृणा-प्रेम, आशा-निराशा इत्यादि गुम्फित हो जाता।'

जब हम किसी भक्त कवि या कवियित्रीकी रसस्निग्ध वाणी पढ़ते हैं, या भजन सुनते हैं तो अनायास ही हमारी इच्छा होती है कि 'हम भी हृदयस्पर्शी भजन लिखते और मधुर गीत गाते। अपने भीतर उठनेवाले द्वन्द्वोंको भक्ति-पूर्ण वाणीमें प्रकट करते। भक्ति तथा काव्यके सम्मिश्रणसे हमें विशुद्ध आनन्द प्राप्त होता और आत्मश्रद्धाके योगसे हमारा जीवन मङ्गलमय और शान्तिमय होता। लोगोंको हमारी वाणीमें सांस्कृतिक चेतनाका स्फुरण मिलता।'

जब हम प्रह्लाद, ध्रुव आदिकी उन्नत धर्मवृत्ति, सतियोंके सद्धर्म, दधीचिका देवत्वकी रक्षाके लिये बलिदान, देशको गुलामीसे मुक्त करनेवाले शहीदोंकी ओजस्वी गाथाएँ, वीर हकीकतरायकी दृढ़ता और साहस, गुरु गोविन्दसिंहके पुत्रोंकी निर्भयता और वीरताकी प्रेरक घटनाएँ सुनते हैं, तो मन-ही-मन हमारे अंदर यह इच्छा जाग्रत् होती है कि 'काश, ये सब उत्तम गुण, ये चारित्रिक विशेषताएँ, ये उच्च भावनाएँ हम भी अपने जीवनमें प्रकट कर पाते। स्वतन्त्रताकी वेदीपर हम भी अपने प्राण न्यौछावर कर देते।'

जहाँ कहीं किसी व्यक्तिमें हम उत्तम गुण, उच्च चरित्र, स्वास्थ्य, सौन्दर्य या कोई प्रशस्त कला देखते हैं, हमारे अंदर कहींसे चुपचाप एक उच्च भाव पैदा होता है कि 'काश, हम भी यही उच्च दैवी भाव या भव्य शक्तियाँ प्रदर्शित कर पाते ।' प्रत्येक अच्छाई हममें एक जागृति पैदा करती है, हमारी सोयी हुई आत्म-शक्तिको जगाती है तथा हमें श्रेष्ठताकी ओर बढ़नेका गुप्त संकेत करती है । श्रेष्ठता और अच्छाईकी ओर हमारा उत्साह और रुचि पैदा करनेवाली हमारी गुप्त आत्मशक्ति ही है । दूसरोंके अच्छे और सद्गुणोंके प्रति हमारे हृदयमें ललक और अनुकरणकी इच्छा इस गुप्त आत्मशक्तिके भण्डारके ही कारण होती है ।

दूसरी ओर एक और विचारधारा है ।

आप जब किसी पागलको प्रलाप करते हुए चिथड़े लपेटे भद्दे रूपमें अटपटे वाक्य बोलते सुनते हैं तो आपकी यह इच्छा कभी नहीं होती कि हम भी इस व्यक्तिकी तरह मूढ़, उन्मत्त या असंतुलित बन जायँ । जब आप किसी चोर, डाकू या हत्यारेको सजा पाते या समाजमें बहिष्कृत होते देखते हैं, तो आपकी यह इच्छा कदापि नहीं होती कि हम भी चोर, डाकू या हत्यारे बन जायँ । जब हम किसी कोढ़ी, अपाहिज, रोगी, दुर्बल, दीन, दरिद्र, लाञ्छित, बहिष्कृत, दण्डप्राप्तको देखते हैं, तो हमारा मन कभी यह नहीं कहता कि हम भी ऐसे ही बन जायँ । कुरूपको देखकर हम स्वयं बदसूरत होनेकी कामना नहीं करते । रोगीको देखकर हम स्वयं कभी रोगी होनेकी इच्छा नहीं करते ।

हम प्रजापीड़क कंस-जैसे नहीं बनना चाहते। सीताजीका हरण करने और अत्याचारकी ओर प्रवृत्त रावणके प्रति हमारी कोई सहानुभूति नहीं होती। भाइयोंको सताने और असंख्य व्यक्तियोंका संहार करानेवाले दुष्ट दुर्योधनके प्रति हमारा ममत्व नहीं जागता। हम दुष्टों, दुश्चरित्रों, प्रजापीडकों, अत्याचारियों, नरसंहारकों, शोषकों, शराबियों, जुआरियों या व्यभिचारियोंसे घृणा करते हैं। हम इनमेंसे कुछ भी नहीं बनना चाहते। इधर हमारी रुचि नहीं होती। ये समस्त दुष्प्रवृत्तियाँ हमारी आत्माके विपरीत पड़ती हैं। हमारी नैसर्गिक प्रवृत्ति कभी इनकी ओर नहीं होती।

हम केवल सत् मार्ग और प्रवृत्तियों, ऊँची कलाओं और देवत्वके दिव्य गुणोंकी ही ओर अग्रसर होते हैं। प्रत्येक दिव्य गुणका अमृत-कुण्ड हमारी आत्मा है। वह ऐसा दिव्य केन्द्र है, जिसमेंसे हमारी उच्च प्रवृत्तियाँ अग्निसे चिनगारियोंकी भाँति फैला करती हैं। जहाँ पृथ्वीमें जल छिपा हुआ होता है, वहाँ हरे-भरे वृक्ष लहलहाते दृष्टिगोचर होते हैं। इसी प्रकार जहाँ मनुष्यका आत्म-तत्त्व जागरूक होता है, वहाँ हमारी प्रवृत्ति आत्माके दिव्य गुणोंकी ही ओर होती है। वह देवत्वकी ओर अग्रसर होती है। आत्मतत्त्व अच्छाईसे प्रेम करता है। संसार और समाजकी सब श्रेष्ठताओंके रूपमें हमारा आत्मतत्त्व ही वह रहा है। श्रेष्ठता और सौन्दर्यका मूल केन्द्र हमारी सत्, चित्, आनन्दस्वरूप वह आत्मा ही है।

आप क्या एकत्रित करेंगे, विष या शहद ?

पृथ्वीमें जल, आकाश, प्रकाश, वायु, मिट्टी, सामर्थ्य सबके लिये समान हैं, किंतु इसी पृथ्वीसे जीव-तत्त्व लेकर गन्ना मीठे गुण एकत्रित कर हमें शक्कर, गुड़, रस मिठाई देता है; नीबू, नारंगी, टमाटर, इमली खटाई एकत्रित करती हैं; करेला कड़ुवे तत्त्व इकट्ठे करता है; मिर्च तीता, अदरख तीखा बन जाता है। कड़ुवा, मीठा, खट्टा, तीता—ये नाना प्रकारके गुण एक ही पृथ्वीसे बीजोंके अनुसार उत्पन्न होते हैं। प्रत्येक बीज अपनी-अपनी प्रकृति और

गुण-कर्मके अनुसार पृथ्वीसे जीव-तत्त्व खींचा करते हैं। इनमें पृथ्वी, वायु, जल, आकाश समान होनेपर भी नवीन वस्तुकी पृथक्ता रहती है। यही हाल मानव-जगत्में बसनेवाले मनुष्यों-का भी है।

सब मनुष्योंके लिये संसार एक-सा है। इसमें सबके लिये कर्म, प्रतिष्ठा, सुख, स्वास्थ्य, जीवन-तत्त्व, समृद्धि बिखरे पड़े हैं, किंतु प्रत्येक व्यक्ति अपने स्वभाव तथा मानसिक सम्मान-के अनुसार सुख-दुःख एकत्रित कर रहे हैं। कितने ही जीवनका आनन्द लूट रहे हैं, तो कितने ही नरककी कुत्सित यातनाएँ भोग रहे हैं। हम स्वयं अपने मनोभाव, रुचि, स्वभाव, गुण-कर्म, तथा जीवनविषयक दृष्टिकोणके अनुसार अपना-अपना पृथक् संसार बनाया करते हैं।

स्वर्ग-नरककी जो कल्पनाएँ मानवके मनमें चक्कर लगाया करती हैं, वे किसी बाह्य जगत्में पूर्ण होनेवाली नहीं हैं; वे हममेंसे प्रत्येक व्यक्तिके विचारों तथा कर्मके अनुसार इसी दुनिया-में निर्मित होते हैं। स्वर्ग-नरक लोक भी होंगे, पर यहाँ तो हम स्वयं ही नरककी यातनाएँ अथवा स्वर्गके आनन्दोंके स्रष्टा हैं।

आप आश्चर्य करेंगे कि मनुष्य कैसे स्वर्ग बना सकता है ? स्वर्ग तो परमेश्वरकी अमूल्य सृष्टि है। मानवका उसमें कैसे हाथ लग सकता है ? मनुष्य तो निर्बल हाड़-मांसका पुतला है; इसके किये क्या हो सकता है !

किंतु ये शंकाएँ व्यर्थ हैं । अपने जगत्‌को बनानेमें प्रधान हाथ हमारा ही है । हमारा मन स्वर्ग-नरकके ताने-बाने बुना करता है । मुक्ति, आनन्द, परमपद हम मरनेके पश्चात् ही नहीं, यहीं—इसी सांसारिक जीवनमें जीते-जी इसी मानव-शरीरद्वारा प्राप्त कर सकते हैं । मन स्वयं स्वर्गको नरक बनाता है; तथा दृष्टिकोण-में अन्तर आते ही नरकको दिव्य प्रकाशसे आलोकित कर स्वर्गमें परिवर्तित कर देता है ।

आप पूछेंगे, 'पृथ्वीपर स्वर्ग कैसे बने ? हमारे किये क्या हो सकता है । भाग्य-चक्र स्वयं सब कुछ किया करता है । नियति-क्रम कौन संचालित कर सकता है ?'

पृथ्वीपर स्वर्ग-निर्माण करनेका प्रथम उपाय है—स्वस्थ शरीर । शरीर वह यन्त्र है, जिससे आप पृथ्वीसे स्वर्ग-नरकके जीवाणु-तत्त्व खींचते हैं । रोगी, दुर्बल, कृशकाय, ढीला-ढाला पौरुषहीन शरीर ऐसा बिगड़ा हुआ यन्त्र है, जो पृथ्वीसे निराशा, ईर्ष्या, क्रोध, द्रोह, असूया, वासनाकी कड़ुवाहट ही खींच सकता है । उसमें गंदगी खींचने और तदनुकूल कुत्सित वातावरण उत्पन्न करनेके ही तत्त्व हैं । रोगी-शरीरका मन रोगी है । रोगी-मन नरकके अतिरिक्त और किस अच्छी चीजकी सृष्टि करेगा ? वासनाप्रिय शरीर व्यभिचारको ही सोचेगा; लोभी मन रुपया-पैसा ही देखेगा; क्रोधी अपनी उत्तेजनाका सामान जलने-कुढ़ने, दुखी रहनेके लिये स्वयं एकत्रित कर लेगा । रोगी-शरीरको संसार बन्धनरूप, दुःख-कठिनाई, आन्तरिक क्लेशसे परिपूर्ण प्रतीत

होगा। इसके विपरीत जिसका शरीर पूर्ण स्वस्थ है, उसे यही संसार स्वर्ग-जैसा सुन्दर प्रतीत होगा।

दूसरा तत्त्व है—मनुष्यका जीवनके प्रति दृष्टिकोण। निराशावादी दृष्टिकोण लेकर जीवनमें प्रविष्ट होनेवाले व्यक्तियों-को निराशा, कठिनाई, असफलताके अतिरिक्त क्या मिलेगा? उन्हें रोने-पीटनेके लिये कहीं भी मसाला मिल ही जायगा। वे दुखी रहनेके आदी हैं। यही मानसिक नरककी सृष्टि करेगा। इसके विपरीत आशावादी व्यक्ति प्रसन्न रहने, उत्साहित होकर जीवन-कार्य-में प्रविष्ट होनेका सहारा ढूँढ़ लेगा। मानसिक दृष्टिसे दोनोंकी आशा-निराशाका दृष्टिकोण स्वर्ग-नरकका स्रष्टा है। जैसा हमारे मनके भीतर है, वैसा ही हमें आस-पास, इधर-उधर सर्वत्र प्रतीत होता है। अपने अन्तरकी प्रतिच्छाया ही हमें संसारमें सुखी-दुखी बनाया करती है।

हम चाहें तो उत्तम मन्त्रणाओंद्वारा अपने अंदर-बाहर सर्वत्र प्रेमका, आनन्द और उत्साहका स्वर्ग निर्मित कर सकते हैं, आस-पासके वातावरणको अपनी पवित्र भावनाओंसे स्वर्गके सौरभसे युक्त कर सकते हैं। इसके विपरीत कुत्सित इच्छाओंसे हम अंदर-बाहर नरक-ही-नरक बना सकते हैं।

बिच्छूकी तरह आप विष एकत्रित करेंगे, या मधु-मक्खी-की तरह मीठा शहद?

अपना दृष्टिकोण आशावादी बनाइये

हमारे जीवनका चिन्तित या प्रफुल्लित होना केवल हमारे दृष्टिकोणपर निर्भर है। वास्तवमें 'हमारा किसी घटनाके प्रति क्या दृष्टिकोण है'—यह तत्त्व हमारे मानसिक जगत्का निर्माण किया करता है। यदि हमारा दृष्टिकोण अपने जीवनमें सुखद, मोददायी, आशावादितासे परिपूर्ण पहलूकी ओर है तो, निश्चय जानिये हम मनमें दुःखोंसे घिरे रहकर भी प्रसन्न और आशावादी रहेंगे। जीवनके दुःखद प्रसंगोंको देखनेवाला हर तरह उन्नत वातावरणमें भी दुःख-कष्ट ही देखता रहेगा।

उदाहरणके लिये श्रीअनन्त गोपाल शेवड़ेद्वारा दिये गये निम्न मनोवृत्तियोंवाले व्यक्तियोंको देखिये—

'आफतको आफत मानना या न मानना हमारे हाथकी बात है। कुछ घटनाएँ ऐसी होती हैं, जैसे मकानमें आग लग जाना, या प्रिय व्यक्तिकी मृत्यु, दिवाला, मुकदमेमें हारना, लम्बी बीमारी, कारावास, पुत्रीका विवाह, पुत्रकी शिक्षा इत्यादि, जो थोड़ी बहुत असुविधा जरूर देती हैं, पर हम उन्हें अतिरंजित दृष्टिसे बढ़ा-चढ़ाकर देखकर मुसीबतें मानने लगते हैं। रस्सीको साँप मानकर काँप उठनेवाले व्यक्ति हमारे समाजमें कम नहीं हैं। जेलमें मेरे एक साथी थे, जिन्हें डेढ़ सालकी सजा हुई थी! रोज दिन गिनते थे कि 'कब छूटेंगे, कब छूटेंगे।' मैंने कहा, 'अरे, अब तो डेढ़ सालकी जगह एक ही साल बचा है। उसे जाते क्या देर लगती है।' कारावासके काले सींकचोंमेंसे कोई जमीनकी कीचड़ या जेलकी

दीवारका टुकड़ा देखता है, तो कोई आसमानके तारे देखकर खुश हो लेता है।'

जब मैं बोर्डिंगमें था तो, अपने कमरेके साथीके साथ आवश्यक चीजें साँझेमें खरीदा करता था। खुशबूदार तेलकी बोतल जब आधी रह गयी तो वह बोला—'देखो यार, तेल कितनी जल्दी खतम होता है। बीस दिनमें बोतल आधी खाली हो गयी।'

'अरे यार, यह खाली कहाँ हो गयी? अभी तो वह आधी भरी है।'—मैंने कहा!

ऊपर लिखे उदाहरणोंपर गम्भीरतासे विचार कीजिये। इनमें विभिन्न दृष्टिकोण स्पष्ट समझमें आते हैं। लेखकका हँसता-खेलता, दूसरोंको प्रोत्साहित करता हुआ आशावाद है, जो जीवनकी अच्छाईको देखता और उससे प्रेरणा प्राप्त करता है। दूसरा निराशावादी दृष्टिकोण है, जो सब कुछ होते हुए भी चिन्ताकी महाव्याधिसे अधमरा हुआ जाता है। जितने दिनोंमें आप मिथ्या भयकी चिन्तामें अधमरे हो जायँगे, उतने दिनोंमें आशावादी प्रसन्न मुद्रासे इतनी शक्ति और साधन एकत्रित कर लेगा कि वे घटनाएँ उसपर कुछ प्रभाव न छोड़ जायँगी। कैसे दुःखकी बात है कि हम अपना गलत कंगाल दृष्टिकोण नहीं बदलते। हमें आशाका, उत्साहका आनन्द और अपने हितका दृष्टिकोण ही अपनाना चाहिये।

सर वाल्टर स्काटका उदाहरण हमें प्रेरणा देनेवाला है। एक प्रेस लेकर चलानेके सम्बन्धमें वाल्टर स्काटके ऊपर इतना ऋण हो गया था कि साधारण मनोबलवाला व्यक्ति उसके मानसिक भारसे

पागल हो जाता, किंतु वाल्टर स्काटने मनःस्थितिको विचलित नहीं किया, निरन्तर तीस-चालीस वर्ष उपन्यास लिखकर उनकी आयसे सम्पूर्ण ऋण उतार डाला ।

लोवल टामसको भी ऋणका सामना करना पड़ा, भयंकर निराशाएँ प्राप्त हुईं, किंतु इन सबके बावजूद वे चिन्तित कभी नहीं हुए थे। वे जानते थे कि यदि वे ऋणके सम्बन्धमें चिन्तित हुए तो उनकी उत्पादक और सृजनात्मक शक्तियाँ पंगु हो जायँगी, और उनके कर्जदार उनपर मक्खियोंकी तरह भिनभिनाने लगेंगे। अतः प्रत्येक दिन प्रातःकाल एक पुष्प खरीद लेते थे और उसे कोटके बटनमें लगाकर मधुरसंगीत उच्चारण करते हुए टहलने ऑक्सफ़ोर्ड स्ट्रीटकी ओर निकल जाते थे। वे अपने मनमें सदा निर्भयता, वीरता और आशावादिताके विचार रखते थे और विषम परिस्थितियोंसे नहीं हारते थे। वे परिस्थितियोंको अपने पक्षमें करनेमें युक्ति और निरन्तर प्रयत्न करते रहते थे।

दृष्टिकोणमें अन्तर आनेसे मन कैसा शक्तिशाली या कमजोर हो सकता है, यह तत्त्व आपको जे० ए० हैडफील्डकी पुस्तक 'शक्तिका मनोविज्ञान' के इस उदाहरणसे स्पष्ट हो जायगा। वे लिखते हैं कि 'मैंने तीन व्यक्तियोंकी शक्तियोंकी परीक्षा मानसिक संकेत (Mental Suggestion) के प्रभावमें की है। यह शक्ति-परीक्षा डाइनामो मीटरको पकड़नेके द्वारा हुई थी। मैंने उनसे डाइनामो मीटरको मजबूतीसे पकड़नेकी आज्ञा दी और तीन विभिन्न मानसिक स्थितियोंमें उनकी शारीरिक शक्तिको जाँचा।

जब मैंने उन्हें साधारण औसतन रूपमें कार्य करते हुए जाँचा तो उनकी औसत पकड़नेकी शक्ति १०१ पौंड थी। फिर मानसिक संकेतद्वारा उन्हें यह सुझाया गया कि वे कमजोर हो गये थे। उनमें निर्बलताके चिह्न प्रकट हो रहे थे। इस संकेतका ऐसा घातक प्रभाव उनपर पड़ा कि ताकत केवल २९ पौंड रह गयी। फिर उन्हें सम्मोहनद्वारा और भी कमजोरी, निर्बलता, शक्तिहीनताके पुष्ट संकेत बार-बार दिये गये। फलस्वरूप वे इतने निर्बल हो गये कि उनमेंसे एक तो यहाँतक कह उठा कि मुझमें एक छोटे शिशु-जितनी भी शक्ति नहीं है। मैं एक शक्तिहीन बच्चा हूँ। मेरे अङ्ग-अङ्ग शिथिल हो गये हैं।

फिर इन व्यक्तियोंको सृजनात्मक और पुष्ट संकेतोंमें रखकर शारीरिक शक्तिकी परीक्षा की गयी। 'तुम मजबूत हो, तुम शक्तिशाली हो।' इन संकेतोंका ऐसा चमत्कारी प्रभाव हुआ कि उनकी पकड़नेकी शक्ति १४२ पौंड हो गयी। उत्साहवर्द्धक संकेतोंसे उनकी शारीरिक शक्तियोंमें पाँच सौ प्रतिशततक वृद्धि होती देखी गयी है। दृष्टिकोणका कितना प्रभाव होता है, यह उपर्युक्त उदाहरणसे स्पष्ट हो जाता है।

एक बार ईसा महान्‌के पास एक बीमार व्यक्ति खाटसे लगा हुआ लाया गया। ईसाका दृष्टिकोण सदैव प्रफुल्ल, शक्तिपूर्ण, आशावादसे भरा हुआ था। बीमार व्यक्तिसे वे बोले—'पुत्र, प्रसन्न हो जाओ''''तुम्हारे पाप परमेश्वरद्वारा माफ किये जायँगे'''' खड़े हो जाओ और पैदल चलकर घर जाओ।' इन दृढ़ता और

आत्मविश्वाससे परिपूर्ण संकेतोंका ऐसा अद्भुत असर हुआ कि बीमार सचमुच उठ खड़ा हुआ और घरकी ओर चलने लगा। बीमारका कथन था कि 'इन उत्साहवर्द्धक प्रेरक शब्दोंका उसके ऊपर ऐसा चमत्कार हुआ जैसे अंदरसे कोई शक्तिका केन्द्र फूट पड़ा हो।'

डेल कार्नेगीका तो विचार है कि आशावादी उत्साहवर्द्धक दृष्टिकोणसे मनुष्य चिन्ता, भय और भाँति-भाँतिकी अनेक बीमारियोंको अच्छी तरह निकालकर फेंक सकता है। जीवनके प्रति उसे प्रेम करना चाहिये। सहानुभूतिसे अपनी चिन्ताओंके कारणोंको दूर कर हितैषी भावनाओंमें रमण करना चाहिये।

डि० लारसनका कथन है कि नवीन मानस शास्त्रज्ञोंने खोज की है कि जीवनमें ऐसी बहुत कम वस्तुएँ हैं, जिनका प्रभाव प्रसन्नतासे अधिक हमारे मन तथा शरीरपर होता है। आत्मा, शरीर तथा मन सबका मुख्य सामर्थ्य आनन्द ही है। आनन्दविषयक दृष्टिकोण न बननेसे हजारों मनुष्योंका नाश हो गया है। अतः दीर्घ-जीवन, आनन्द और स्वास्थ्यके लिये मनुष्यको चिन्तित न रहना चाहिये।

शरीर प्रसन्नता, आशा, उल्लास और शान्तिकी माँग करता है। आवश्यक तत्त्व न प्राप्त होनेसे आत्माको भी कष्ट होता है। हमें सदा प्रसन्न और उल्लासमय रहकर शरीरकी माँगको पूर्ण करना चाहिये।

तीस वर्षकी उम्रमें मरा साठ वर्षमें दफ़नाया गया

'आजकल मरनेवाले अधिकांश मनुष्योंकी कब्रपर यही लिखना चाहिये कि तीस वर्षकी उम्रमें मरा, पर साठ वर्षमें दफ़नाया गया।' क्यों? कितने ही ऐसे व्यक्ति हमारे देखनेमें आये हैं जो तीस सालकी चढ़ती जवानीमें ही अपने आपको बुड्ढेकी उपाधि देने लगते हैं। जिंदगी जिंदादिलीका नाम है और इनकी जिंदादिली बचपनमें ही खाक हो जाती है। इनके हृदयसे मस्ती, जोश, सुख-स्वप्न और यौवनकी मधुर कल्पनाएँ सदैवके लिये बरबाद हो चुकी हैं। इन्हें ज़ीवन फीका, नीरस, क्षणभङ्गुर और फानी मालूम होने लगा है। आजकलके एक युवकके पत्रमें लिखी निम्न पंक्तियोंपर जरा ध्यान दीजिये तब मालूम होगा कि उन्हें जीवन कैसा मालूम होता है—

'........कभी-कभी मुझको बोर्डिंगके कमरेकी याद आती है, जब हम भी तुम्हारे पास होते थे, जब घूमने, फिरने, सैर-सपाटेमें एक बहार-सी थी। जब जीवन एक मादक वस्तुके समान था और अधिकाधिक हम उसमें मग्न और मस्त हो सकते थे। जब मित्रोंसे बातें करनेमें और मस्तिष्ककी सूक्ष्म-से-सूक्ष्म गतिके प्रदर्शनमें

एक आनन्द-सा आता था। अब तो मालूम पड़ता है कि तृप्ति और संतोषकी भावनाने शरीर और मस्तिष्कके तीखेपनको ही नष्ट कर दिया है। मुझे कोई कष्ट नहीं है, सुख ही है। मेरी इच्छाओंकी पूर्ति, इससे पहले कि मैं उनका ख्याल करूँ—हो जाती है। फिर भी वह सुख नहीं है। एक अजीब काहिली-सी छा गयी है और एक घड़ीकी भाँति जीवनकी घड़ियोंको गिनता जा रहा हूँ। …………तुमसे पुराने चिन्ताविहीन दिनोंकी बातें कर, वर्तमान या भविष्यमें नहीं, भूतमें स्नानकर कुछ समयके लिये फिर युवा और प्रसन्न होना चाहता हूँ…………।'

उदासीनता, बेबसी, निराशा और अशक्ततासे भरी यह दशा केवल हमारे इस मित्रकी ही नहीं, हजारोंकी है। न जाने क्यों लोग जीवनके प्रति उल्लसित नहीं हैं। आजकल हम देख रहे हैं कि बहुत-से मनुष्य बहुत जल्दी बूढ़े और कमजोर हो जाते हैं और असमयमें ही कालके ग्रास बन जाते हैं। घटते-घटते मनुष्यकी आयु आज तीस-पैंतीस रह गयी है। सबका यही विश्वास हो गया है कि हमारी यही आयु है। इस हृदयमें बैठे हुए भ्रान्त विचारका कुपरिणाम यह है कि किसी व्यक्तिको वृद्धावस्थामें देखकर हमारे मनमें भी यही विचार उदित होता है कि हम भी जल्दी इसी दशाको प्राप्त होंगे। हमारे भी गाल पिचक जायँगे, ज्योति क्षीण हो जायगी, शरीर शोचनीय एवं अशक्त हो जायगा और फिर एक दिन…………मृ……त्यु। बस, इसी विचारसे डरकर हम अपने मनमें अनेक बेसिर-पैरकी कल्पनाएँ करते हैं। बुढ़ापेकी

दुःखदायिनी, हृदयविदारिणी भावनामें निरन्तर रमण करते हैं। न जाने क्या-क्या सोचते हैं और इसी सोचमें निमग्न समयसे बहुत पहले उस महाराक्षसको, जो न जाने कितनोंको केवल डराकर ही चबा गया है, न्योता दे बैठते हैं!

याद रखिये—रोगों, व्याधियों एवं अन्य कुपरिणामोंका मनमें विचारकर आप अपने शरीरमें उसके लिये उपयुक्त स्थान उपस्थित करते हैं, तब रोग वहाँ आकर अपना अधिकार जमाता है। बुढ़ापेके ख्यालमें डूबकर, बुढ़ापेकी कल्पनाओंमें गोता लगाकर, हर समय बुढ़ापेके स्वप्न देख-देखकर और निरन्तर बुढ़ापेकी चिन्तामें जलकर, हम उसके लिये अनुकूल स्थिति बनाकर उसे बुलाते हैं। किसी दुष्ट विचार, किसी भयंकर रोग या किसी अन्य दुःखदायिनी सत्ताकी कल्पना मनमें जहाँ आयी कि फौरन उसका मानसिक चित्र बन जाता है। फिर वही रोग, वही चिन्ता, वही कुत्सित कल्पना किसी भयंकर व्याधिका रूप धारणकर हमारे शरीरपर बुरा प्रभाव डालता है। इसी प्रकारके अस्वस्थ एवं निराशाजनक विचारोंसे हम अपने हाथों अपने भाग्यको फोड़ते हैं। अपने सुख और स्वास्थ्यरूपी कौमुदीको काले बादलोंसे ढँक लेते हैं।

विलियम ल्यान फ्लिप्सका कहना है—'मैं वह समय ठीक-ठीक बतला सकता हूँ जब मनुष्य बूढ़ा होना शुरू होता है। यह वह घड़ी होती है जब आत्म-परीक्षा करनेपर वह देखता है कि एकान्तमें बैठनेपर उसका विचार और ध्यान भविष्यकी अपेक्षा

भूतकालकी ओर अधिक जाता है। यदि मनुष्यका मन भविष्यके विचारोंके बजाय पुरानी बातों, बीते युगकी स्मृतियों, संस्मरणों और अतीत वृत्तान्तोंसे भरा रहने लगे तो समझ लो वह बूढ़ा हो रहा है।'

बुढ़ापेको मार-भगानेके उपायोंकी खोजमें वर्षों ठोकर खानेके बाद मुझे अचानक ज्ञात हुआ कि बड़े जोर-शोरसे इनकी तलाश करनेसे सदा इन्हींकी चिन्तामें लगे रहनेसे हम इन्हें नहीं प्राप्त कर सकते। सौ बातकी एक बात यह है कि कभी एक क्षणके लिये भी अपने मनमें इस बातका विचार न करें कि हम बूढ़े हो रहे हैं, बीमार हैं, कमजोर हैं। आप अपनी आयुको बिल्कुल भूल जाइये, उस ओर ध्यान ही न दीजिये। उन बातोंको सोचिये ही नहीं। अपना क्या, दूसरोंकी ढलती अवस्थाका भी विचार मनमें न कीजिये। मनमें यह दृढ़ संकल्प कीजिये कि हम अभी बूढ़े न होंगे। बल्कि यौवनके सुखमय स्वप्न देखनेकी आदत डालिये। यौवनके उच्च आदर्शको लेकर उसीमें प्रविष्ट हो जाइये और जबतक आपका अणु-अणु उन दिव्य भावनाओंसे विभोर न हो जाय, उस दिव्य आदर्शको अपने अन्तःकरणसे तिलमात्र भी मत हटाइये। हमारे जैसे आदर्श होंगे, हमारी जैसी मानसिक अभिलाषाएँ होंगी और हमारे हार्दिक भाव जैसे होंगे, उन्हींकी झलक हमारे मुख मण्डलपर दिखायी देने लगेगी, उन्हींका प्रतिबिम्ब हमारी आँखोंमें झलकेगा। हमें पूर्ण निश्चय और विश्वास कर लेना चाहिये कि निर्बलता, सुस्ती, आधि-व्याधि, रोग, निराशा और मृत्युसे हमें कोई सरोकार नहीं।

यदि हम सदा अपने मनमें यौवनके दिव्य प्रवाहको बहाते रहें। सदैव यौवनके आदर्शोंको सामने रखकर उनके लिये अपनी शक्तियोंमें विश्वास रखकर उद्योग करें, यदि हम हर समय शक्ति और स्वास्थ्यके नियमोंको अपने सामने रक्खें। चिन्ता, भय और संशयको मानसिक परिधिसे निकाल डालें तो बुढ़ापा हमसे अवश्य डरता रहेगा। आपके हृदयमें जिंदादिली नामकी जो दूब उगी है, उसपर उत्साहकी फुहारें छोड़ते रहिये। पूर्ण ब्रह्मचर्यसे सदाचारके नियमोंको पालन कीजिये। याद रखिये, इस कल्पनाने कि अमुक उम्रके बाद मनुष्यकी ढलती अवस्था प्रारम्भ हो जाती है—उसकी शक्तियाँ मन्द पड़ने लगती हैं—मानव-समाजको बड़ी हानि पहुँचायी है। इस प्रकारकी जो घास-फूस मानसिक उद्यानमें जड पकड़ गयी हैं उसका अभीसे उन्मूलन प्रारम्भ कीजिये। मनुष्य कभी बूढ़ा नहीं होता, वह स्वयं ही अपने आपको बूढ़ा समझने लगता है। आप तबतक बूढ़े नहीं हो सकते जबतक आपके जीवनमें मधुरता और उत्साह बना रहता है। जबतक आपके हृदयमें महत्त्वाकांक्षाकी दिव्य ज्योति प्रकाशित रहती है। जबतक आपके मनमें बुढ़ापेका डर नहीं उत्पन्न होता। जबतक आपके खूनमें कार्य करनेकी शक्तिका प्रवाह बना रहता है और आपकी शारीरिक शक्तियोंका ह्रास नहीं होता। आप इन्हीं सुखमयी शक्तियोंसे अपने हृदयमें एक आनन्दमय भवनका निर्माण कीजिये।

हमें फूलोंकी तरह मुस्कराते हुए जीवन व्यतीत करना चाहिये

मानव-जीवनमें तीन कार्योंकी प्रधानता रहती है—कार्य, मनोरञ्जन और विश्राम। साधारण व्यक्तियोंमेंसे प्रत्येकको जीविका-उपार्जनके लिये दिन-रातके चौबीस घंटोंमेंसे आठ घंटेका समय अवश्य लगता है। इस समयके बाद आठ घंटे विश्रामके लिये निकाल देनेपर आठ घंटेका समय फुरसतका मिलता है। इन आठ घंटोंको किस प्रकार व्यय किया जाय, जिससे अधिकतम आनन्द, हँसी-खुशी और शान्ति प्राप्त हो सके, यह एक विचारपूर्ण समस्या है।

रोते मत रहिये !

अनेक व्यक्ति प्रायः कहा करते हैं कि 'हमें आमोद-प्रमोद तथा जीवनके आनन्द-उपभोगके लिये कोई अवकाश प्राप्त नहीं होता। हम कामसे बेहद परेशान हैं। इतने झंझट पड़े रहते हैं कि दिन-रात उन्हींमें फँसे रहते हैं।' यह बात ऐसी उदास मुद्रामें कही जाती है, जिससे उनकी अतीव असमर्थता, निराशा और बेबसी प्रकट होती है।

स्त्रियोंसे पूछिये—'तुम सारे दिन क्या कार्य करती हो ?' वे कहेंगी—'हमें रोटी बनाने, बच्चोंकी देख-रेख करने, घरकी छोटी-बड़ी आवश्यकताओंकी पूर्ति करने, झाड़ू-बुहारू, बर्तन माँजने, कपड़े धोने, बच्चोंको स्कूलके लिये तैयार करने और कपड़े सीनेमें कभी कोई अवकाश प्राप्त नहीं होता।' यह कहते-कहते उनका मुख चिन्ता, नैराश्य, पीड़ा और आन्तरिक वेदनाओंसे भर जायगा।

वे मानो रो देंगी। इन्हें देखनेसे आप यही अंदाज लगायेंगे कि इनका जीवन रोते-कलपते व्यतीत होता है। सांसारिक चिन्ताओंका भार इनके ऊपर इतना अधिक है कि ये अपने जीवनमें रोने-पीटने और व्यर्थका भार वहन करनेके अतिरिक्त कुछ नहीं कर रही हैं। उस जीवनसे क्या लाभ जिसमें मनोरञ्जन और आनन्दके दो क्षण न हों?

जीवनपर धनकी चढ़ाई!

अधिकांश सेठ, दूकानदार, क्लर्क, सरकारी अधिकारी एवं कर्मचारी, व्यापारी-वर्ग धन-उपार्जन करने तथा उसे जोड़नेमें सतत प्रयत्नशील हैं, किंतु उसका जीवन तथा आनन्दके लिये उपयोग करनेमें जागरूक नहीं हैं। कुछ अल्पज्ञ व्यक्ति केवल धन-उपार्जनको ही जीवनका चरम लक्ष्य बनाये हुए हैं। धन उनके जीवनपर चढ़ गया है। वह उनकी असंख्य सांसारिक चिन्ताओंका कारण बन गया है। गृहस्थ-सम्बन्धी उनका सुख भी विलुप्त हो गया है।

स्मरण रखिये, धनका उपयोग जीवनके लिये है। जीवन धनसे बड़ा है, महान् है। धनको इतनी स्वतन्त्रता न दीजिये कि वह जीवनके ऊपर चढ़ बैठे और जीवनको चिन्ता, व्यग्रता तथा व्यर्थके कार्योंसे भर दे। जीवन धनसे उच्च स्तरपर है। उसकी उपयोगिता जीवनके विकास एवं परिपुष्टिपर निर्भर है। आपको धन तत्त्वका उतना ही अनुपात चाहिये, जिससे आपकी न्यायपूर्ण आवश्यकताएँ पूर्ण हो सकें और उसका विकास अवरुद्ध न हो जाय। इसके अतिरिक्त संग्रह करने या पूँजीपति बननेके लिये जीवन-

जैसे महान् दैवी-तत्त्वको विनष्ट न कीजिये। जब साधारणतः आपकी आवश्यकताओंके लिये धन प्राप्त हो जाय, तो आनन्द-प्राप्तिके लिये उसका उपयोग कीजिये।

आनन्द-तत्त्वकी आराधना !

जीवनका प्रधान लक्ष्य आनन्दप्राप्ति है। हमें अधिक-से-अधिक आनन्द, सुख, हँसी-खुशी प्राप्त करना चाहिये। जिस व्यक्तिको आनन्द प्राप्त नहीं हुआ और जो जीवनभर तेलीके बैलकी भाँति संसारका भार ढोता रहा या रुपया-पैसा एकत्रित करता रहा, वह चाहे आर्थिक दृष्टिकोणसे समृद्ध कहा जा सके, किंतु वास्तवमें उसने जीवनका रस प्राप्त नहीं किया है। आनन्द वह आत्मिक तत्त्व है, जिसे प्राप्त करनेपर मन-बुद्धि सुखी, संतुष्ट हो जाती हैं; संसारका समग्र सुख प्राप्त हो जाता है।

आनन्द क्या है ? आनन्दका सम्बन्ध मनसे है। हमारी पाँच इन्द्रियाँ निरन्तर आनन्द या दुःखकी अनुभूति हमारे मनको दिया करती हैं। प्रत्येक इन्द्रिय किसी प्रकारके आनन्द या दुःखसे सम्बन्धित हो सकती है। यदि हम प्रत्येक इन्द्रियको सुखकी प्रतीतिके लिये सचेष्ट रक्खें, तो हमारे आनन्दका विस्तार हो सकता है।

हमारा आनन्द आन्तरिक है। जो व्यक्ति उसे बाहर ढूँढ़ते फिरते हैं, वे गलतीपर हैं। बाह्य वस्तुओंसे सम्बन्धित होकर हमारी पञ्च-इन्द्रियाँ जो ज्ञान अन्तर-प्रदेशमें ले जाती हैं, उनके द्वारा मनमें आनन्दकी भावना उत्पन्न होती है। अतः सुखप्राप्तिके लिये मनको नैराश्य, चिन्ता, हीनताकी भावनासे निकालकर सुख, आनन्द

और हँसी-खुशीकी स्थितिमें रखना चाहिये। मनःस्थितिका यह महत्त्वपूर्ण सार है।

नया जीवन

जिनका लक्ष्य जीवनमें अधिक-से-अधिक प्रसन्नता, आनन्द और सुख-शान्ति है, वे अपनी उसी प्रकारकी मनोदशा बनाकर उसके समीप पहुँचते हैं। मनःस्थितिके अनुकूल तत्त्व ही हम वातावरणसे खींचा करते हैं।

आशावादी दृष्टिकोणकी आवश्यकता

हम जितना अपने-आपको सांसारिक वस्तुओंके मोहसे बाँधते हैं, जितनी अधिक अपनी कृत्रिम आवश्यकताओंकी अभिवृद्धि करते हैं, उतने ही अधिक चिन्ताओंमें निमग्न रहते हैं। अनेक प्रकारकी चिन्ताएँ हमारे जीवन-संगीतको बेसुरा तथा कर्कश बना देती हैं और हम प्रसन्नताके मोददायी वातावरणको मनमें उत्पन्न नहीं कर पाते। हम छोटी-छोटी बातोंको लेकर झींकते-कुढ़ते रहते हैं। हमारा जीवन जंजालसे भरा रहता है। हम रोते, पीटते तथा चिन्ता-विषादमय जीवन व्यतीत करते हैं!

रोते मत रहिये, मस्त रहिये। आनन्द-तत्त्वसे अधिक-से-अधिक सान्निध्य प्राप्त करते रहिये। आप जिन चीजों या बातोंके लिये रात-दिन चिन्तित रहते हैं, उनसे आपका सम्बन्ध अल्प कालका है। फिर, क्यों उनके लिये अपने जीवनको शूलमय किया जाय?

हमें फूलोंकी तरह हँसते मुसकुराते हुए जीवन व्यतीत करना चाहिये। प्रकृतिको देखिये, सर्वत्र आनन्दका राज्य है। शीतल-मन्द समीर किस आनन्दमें बह रही है। उद्यानमें पक्षियोंका कलरव

सुनिये । सरिताओं, निर्झरों तथा छोटे-बड़े नालोंका जल किस मस्तीसे गिरता-बहता है । एक-एक बूँद बिखरकर मानो हँस उठती है और कहती है, 'हे संसारवालो ! आनन्दमें खिलखिलाओ ! मुसकराकर जीवन व्यतीत करो । व्यर्थकी चिन्ताएँ छोड़ो !'

पक्षियोंके पास कितनी पूँजी है ? उन्होंने कितने रुपये किसी बैंकमें जमा किये हैं ? उनके घरमें कितने वर्षोंके लिये खाद्य पदार्थोंका संग्रह है ? उनके पास कितनी रजाई, बिछौने, पहिननेके सुन्दर कीमती वस्त्र, कमरे, मोटर, झाड़-फानूस हैं ? किसी प्रकारकी पूँजी न होते हुए भी, कलके लिये भोजन, वस्त्र, मकानकी व्यवस्था न होते हुए भी उनका जीवन कितनी प्रसन्नता और मस्तीसे परिपूर्ण है । वे किस निश्चिन्ततासे मधुर संगीत अलापते हैं । मोरको नाचते समय देखिये, किस निश्चिन्ततासे वह विभिन्न नृत्य-मुद्राएँ बनाता है । पंद्रह-बीस मिनटतक चलनेवाला उसका नृत्य आनन्दसागरमें अवगाहन है । उसे न बाल-बच्चोंकी चिन्ता है, न सांसारिक प्रपञ्चोंकी उलझनें । हमें इन प्राकृतिक जीवोंसे आनन्दविषयक शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये—इनके जीवनके आनन्दतत्त्वको ग्रहण करना चाहिये ।

आनन्दका संकल्प कीजिये

आइये, अपनी कृत्रिम दुश्चिन्ताओं और दुर्भावपूर्ण कल्पनाओंको सदाके लिये त्यागकर आनन्द-तत्त्वके साधक बनें । जीवनका रस-पान करते चलें । हँसी-खुशीसे अपने जीवनके प्रत्येक रग-रेशेको रंग लें । स्वयं हँसें, प्रसन्न रहें और अपनी प्रफुल्लता, मस्ती और

आनन्दको उदारतासे वितरित करें। जगत्‌को आनन्दमय मानें। यदि हम जीवनविषयक अपना नीचा दृष्टिकोण त्यागकर 'यह जगत् आनन्दमय है'—यह भावना अपने सम्मुख रक्खें, तो हमारे दुःख, क्लेश और व्यर्थकी चिन्ताओंकी अल्पकालमें ही समाप्ति हो जायगी। हमारी चित्तवृत्तियाँ सत्, चित् और आनन्दस्वरूपमें एकाग्र हो जायँगी; हमारे कल्पित दुःख और क्लेशोंकी समाप्ति हो जायगी।

जो व्यक्ति अपने सच्चिदानन्द-स्वरूपमें स्थिर हो गया है, वह धन्य है। वह अविद्याके अन्धकारसे निकलकर आनन्द, उत्साह और आशाके प्रकाशमें आ गया है। आनन्दतत्त्वकी आराधनासे मनुष्यका आन्तरिक एवं बाह्य जीवन आत्मसंतोषसे परिपूर्ण हो जाता है। उसे यह स्वयं अनुभव होने लगता है कि विकार, भय, चिन्ता, क्रोध, वासनाओंसे पीड़ित जीवनमें आनन्दकी प्राप्ति नहीं हो सकती। भौतिक ऐश्वर्य, रुपया, पैसा, प्रभुत्व प्राप्त होनेमें ही आत्मसंतृप्ति नहीं होती।

आइये, आजसे निश्चय करें कि हम सदा-सर्वदा प्रत्येक स्थितिमें, प्रत्येक वातावरणमें आनन्द लेंगे, दुनियाके मजे लूटेंगे; क्योंकि हमारा सरोकार आनन्दसे है। हमारा जन्म आनन्दप्राप्तिके लिये ही हुआ है। विषम परिस्थितियाँ हमारे आनन्दमें बाधा उपस्थित नहीं कर सकतीं! अपना दृष्टिकोण परिवर्तित कर, सात्त्विक आनन्दप्राप्तिका आदर्श सम्मुख रखकर जीवन व्यतीत कीजिये। आप चाहे जिस स्थान या अवस्थामें हों, आशावादी दृष्टिकोण अपनाकर आनन्दमय जीवन व्यतीत कर सकते हैं।

मनुष्य जितना अधिक काममें व्यस्त रहता है, उतना ही अधिक जीवित और स्वस्थ रहता है !

शतं जीव शरदो वर्धमानः ।

(अथर्ववेद ३ । ११ । ४)

अर्थात् 'सौ वर्षोंतक उन्नतिशील जीवन जिओ, जीवनशक्तिको ऐसे संयमसे खर्च करो कि सौ वर्षोंतक पूर्ण कर्मशील रह सको ।'

वर्च आ धेहि मे तन्वां सह ओजो वयो बलम् ।

(अथर्ववेद १९ । ३७ । २)

अर्थात् 'अपने शरीरको भगवान्‌का दिव्य मन्दिर समझकर उसकी पूरी देख-भाल रक्खो। शरीरमें तेज, साहस, ओज, आयुष्य और बलकी वृद्धि करो।'

अश्मानं तन्वं कृधि। (अथर्ववेद १।२।२)

अर्थात् 'शरीरको पत्थर-जैसा सुदृढ़ बनाओ। श्रम और तितिक्षासे शरीर मजबूत बनता है।'

मेरे पड़ोसमें एक सरकारी कर्मचारी पचपन वर्षकी पकी आयुमें सरकारी नौकरीसे रिटायर हुए। वे यह कहा करते थे कि 'सरकारी दफ्तरसे मुक्त होनेपर कोई काम-काज न रहेगा तो बड़े आनन्दसे रहेंगे। बस, स्वास्थ्य-ही-स्वास्थ्य बनायेंगे। शेष जिंदगी मजेदारीसे गुजरेगी तथा कठोर कार्य और नियन्त्रणसे फुरसत रहेगी।'

और एक दिन उन्हें पेन्शन मिली। कामसे छुट्टी मिल गयी। अब वे सारे समयके खुद मालिक थे। फुरसत-ही-फुरसत थी।

उन्हें फुरसत तो मिली, पर मन भारी रहने लगा और स्वास्थ्यको तो मानो जंग ही लग गया। दो-चार दिन तो इधर-उधर दूकानों, मिलनेवाले मित्रोंके घर और मुहल्लेमें बैठकर दिन कटे, पर फिर उनका मन न लगा। एक दिन, चार दिन, एक मास, दो मास! आखिर कहाँतक बैठे रहें? जिंदगी बड़ी लंबी, पता नहीं इसकी जड़ कहाँतक चले? निठल्ले जीवनसे बैठे-बैठे ऊब गये! बीमार हो गये! यह बीमारी बढ़ती गयी

और उन्होंने खाट ही पकड़ ली। डाक्टरी इलाज चलने लगा। जो व्यक्ति कुछ मास पूर्व मजेमें आठ घंटे श्रम करता था, आज वही खटियापर पड़ा डाक्टरको नब्ज दिखा रहा था और मौतकी घड़ियाँ गिन रहा था!

खाटपर पड़े-पड़े परमात्माकी कुछ ऐसी प्रेरणा हुई कि 'बेकामका निठल्ला जीवन तो मानो जंग लग-लगकर अकाल-मृत्युको प्राप्त करना है। एक प्रकारकी आत्महत्या है। जबतक शरीर चले तबतक कुछ-न-कुछ करना चाहिये।'

बस, वे अपने पुराने दफ्तर गये। संयोगसे उन्हें उसी दफ्तरमें दैनिक मजदूरीपर फिर मामूली-सा काम मिल गया। उन्होंने उसीको ले लिया।

महान् आश्चर्य! भगवान्‌की लीला! दो-चार दिन तो कठिनाईसे दफ्तर गये, पर तीन-चार दिन बाद शरीरकी मशीन फिर चल निकली। कार्य करनेसे जंग लगे पुर्जे फिर पूर्ववत् काम करने लगे। काममें लगे रहनेसे अब उन्हें इतनी फुरसत ही न थी कि वे बुढ़ापे, कमजोरी या बीमारीकी निरर्थक कायरता-पूर्ण कल्पनाओंमें लगे रहें।

आज वे उसी प्रकार दफ्तरमें जाते हैं। जवानोंकी तरह काम करते हैं। पैसा बहुत कम मिलता है, पर उसकी परवा नहीं करते। प्रतिदिन शिकंजेमें कसी हुई जिंदगी आगे चल रही है। सुबह दस बजेसे शाम पाँच बजेतक काममें दिन बीत जाता है। उनकी धर्मपत्नी मर चुकी है। घरपर कोई

काम नहीं है, पर फिर भी कार्यमें व्यस्त रहते हैं। अपने जीवनका निचोड़ वे इन शब्दोंमें व्यक्त करते हैं—

'मैं दवा-दारूसे भी कामको आदमीकी सबसे बड़ी दवाई मानता हूँ। जो लाभ कीमती दवाइयाँ नहीं करतीं, वह कर्ममय जीवनसे सहज ही हो जाता है। कर्मसे जीवन और स्वास्थ्य बढ़ते हैं। कुछ-न-कुछ शारीरिक और मानसिक काम करते रहनेसे आदमी अधिक जी सकता है। प्रकृतिके दीर्घजीवी जानवर कर्ममय हैं। अगर स्वस्थ और दीर्घजीवी बनना है, तो जिंदगीके आखिरी दमतक कर्ममें लगे रहिये।'

अस्सी वर्षीय छात्रा

पेरिसका एक समाचार है कि बर्फ-जैसे सफेद बालोंवाली एक परदादी साठ वर्ष पूर्व विवाहमें पतिसे मतभेद होनेके कारण छोड़ी गयी थी। उसने अपने लिये काम ढूँढ़ा, तो उसे अनुभव हुआ कि पढ़ने-लिखनेके कार्यमें वह सबसे अधिक आनन्द ले सकती थी। उसने व्यस्त रहनेके लिये पुनः पेरिसके सारबोन विश्वविद्यालयमें पढ़ना शुरू कर दिया। असी वर्षीया यह उत्साही महिला १९०५ में भी सारबोन विश्वविद्यालयकी विशिष्ट छात्रा थी; क्योंकि उस जमानेमें वह विज्ञानका अध्ययन कर रही थी। इस महिलाके तीन पुत्र, सात पोतियाँ तथा एक प्रपौत्री हैं। मानसिक-रूपसे स्वस्थ और दीर्घजीवी बननेके लिये वह कामको जरूरी मानती है। अब उसने अंग्रेजी एवं र्मन अध्ययन करनेके लिये विश्वविद्यालयमें प्रवेश लिया है।

वह कहा करती है, 'मैं अपने व्यक्तिगत अनुभवसे इस नतीजेपर पहुँची हूँ कि आदमीकी मशीनको लगातार चलाते रहनेसे वह बहुत दिनोंतक चलती रहती है। मनुष्य जितना अधिक किसी उपयोगी काममें लगा रहता है, उतना ही उसका स्वास्थ्य अच्छा रहता है।'

यहाँ हमें महात्मा गाँधीजीकी वह उक्ति याद आती है, जिसमें उन्होंने कहा है कि 'सच्चा विद्यार्थी वही है, जिसको विद्योपार्जनकी सच्ची भूख लगी हो, जो विद्याप्राप्तिकी कठिनाइयोंको देखकर आनन्दित होता हो और जो विद्याको ही साध्य और केन्द्र बनाकर अन्य सब बातोंको भूल जाता हो। यदि कोई यह समझकर विद्या पढ़े कि वह उसे अर्थप्राप्तिका उद्देश्य सिद्ध करेगी, तो जीवनमें लक्ष्य प्राप्त करनेका उच्च आदर्श न मिलेगा और न तब उसका श्रम ही सार्थक होगा।'

एक सौ पंद्रह वर्षका डाकका कर्मचारी

धनबादमें एक सौ पंद्रह वर्षकी दीर्घ आयु भोगकर अभी हालमें ही एक डाकविभागका कर्मचारी इस असार संसारसे विदा हुआ है। लोग उसकी बड़ी प्रशंसा करते हुए सुने गये हैं।

परिचित व्यक्तियोंका कहना है कि उक्त कर्मचारी पोस्टमैनका काम पैदल करता था। जीवनभर खूब घूमता-फिरता रहा। निठल्ले और आलसी जीवनसे उसे अत्यन्त घृणा थी। उसने साइकिल भी लेना पसंद नहीं किया था। अपनी इतनी लंबी आयुमें भी स्वभावसे बड़ा शान्त था। उसको कभी कोई नशा करते नहीं देखा गया और न कभी क्रोध!

अपने सेवाकालके बाद भी उसने पूरे साठ सालतक विश्राम-भत्ता पाया था। नाती-पोतोंसे भरा-पूरा परिवार छोड़कर जानेवाले इस कर्मचारीका स्वास्थ्य टहलने, घूमने-फिरने और किसी-न-किसी काममें अपनेको व्यस्त रखनेके कारण पूर्णतया सुरक्षित था। जब कभी उससे किसीने उसके स्वास्थ्यके विषयमें पूछा, तो उसने एक ही बात कही, 'मैं कभी निठल्ला नहीं रहता, कुछ-न-कुछ करता रहता हूँ। मेरा विश्वास है कि काम करनेसे ही आदमी स्वस्थ और दीर्घजीवी बन सकता है।'

१५९ वर्षकी आयुमें भी घुड़सवारी

मास्को सोवियत संघके अजरबेजान गणराज्यके सबसे बूढ़े शिराली मिसलिमोवने बाकूमें अपना १५९वाँ जन्मदिवस मनाया। बाकूमें उनके सम्मानमें एक समारोह आयोजित किया गया। मिसलिमोवने घरसे बाकूतक ६ मीलकी दूरी कारसे तय करनेसे इन्कार कर दिया। वे कुछ दूर पैदल और फिर घोड़ेपर सवार होकर समारोह-स्थल तक गये। 'तास'के अनुसार इतने वृद्ध होनेपर भी मिसलिमोव बहुत चुस्त हैं। वे पैदल चलने और भेड़ पालनेमें व्यस्त रहते हैं। खाली नहीं बैठते। काममें रुचि है। वे कभी शराब नहीं पीते, न सिगरेट ही; पर वे अधिकतर सब्जियाँ और फल आदि खाते हैं। उनकी पत्नीकी आयु ८५ वर्ष है और उनका सबसे बड़ा पोता ६५ सालका है।

रूसमें बढ़ती हुई आयु

रूसमें प्रायः लोग लंबी आयु प्राप्त करते हैं। पिछले दिनों समाचार-पत्रोंमें छपा था कि १५८ वर्षीय एक किसान मखमूद इवाजोव, जिन्होंने कृषिप्रदर्शिनीमें भाग लिया था, सोवियत संघमें अपनी लंबी आयु और संतुलित धार्मिक जीवनके लिये विख्यात हैं। उनके कार्यकी प्रशंसास्वरूप गतवर्ष (सन् १९६५) सोवियत सरकारने उन्हें 'आडर आफ रेड बैनर आफ लेबर' (श्रमके लाल झंडेका पदक) से विभूषित किया है। उनके अनुभव कुछ इस प्रकार हैं—

'आदमीको कुछ-न-कुछ शारीरिक और मानसिक मेहनत करते रहनेसे जिंदगीमें रस आता है और शरीरके जीवाङ्ग भलीभाँति काम करते रहते हैं। निष्क्रिय बैठनेसे उनमें जंग लग जाता है और वे समयसे पहले ही वृद्धावस्था धारण कर लेते हैं। जैसे बहते रहनेसे जल स्वच्छ और स्वास्थ्यदायक रहता है, ऐसे ही कार्यसे स्नायु-तन्त्र सक्रिय रहते हैं। जीवाङ्गकी यौवनशक्ति बनाये रहनेके लिये सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात 'काम' है। अनेक लोगोंकी यह घातक गलती है कि वे यह समझते हैं कि बूढ़े व्यक्तिको काम नहीं करना चाहिये, या कम घूमना-फिरना चाहिये। मैं तो अपने अनुभवसे कहता हूँ कि जबतक चले शरीर, मस्तिष्क और आत्मापर कार्यका बोझ डालते रहना चाहिये। सब अवयवोंको अधिक-से-अधिक दिन सक्रिय रखना चाहिये। निठल्ले बैठना शरीर और मन—दोनोंके लिये हानिप्रद है।'

आयु बढ़नेमें काम निर्णायक भूमिका पार्ट अदा करता है। यह सुविदित है कि सुव्यवस्थित कामके बलपर ही आदमी अधिक जी सकता है।

खाली बैठनेका दूषित प्रभाव

एक और शरीर-विज्ञान-शास्त्री इवान पत्रोविच पावलोव कहा करते हैं, 'एक क्लर्क अपना काम करते हुए, जो बहुत ज्यादा कठिन नहीं होता, सत्तर वर्षतककी उम्रतक ठीक चलता रहता है, परंतु ज्यों ही वह अवकाश ग्रहण करता है और फलतः अपने नित्यप्रतिका ढर्रा छोड़ देता है, उसके जीवाङ्ग काम करनेमें असमर्थ हो जाते हैं और वह जल्दी मर जाता है। वृद्धावस्थामें पूरी तरह हर तरहका काम छोड़ देनेवाले प्रत्येकके साथ आमतौरपर यही होता है। हमें कई ऐसे मामलोंका पता है, जिसमें अपेक्षाकृत स्फूर्तिमान्, प्रसन्नचित्त तथा हृष्ट-पुष्ट पेन्शनपर अवकाश ग्रहण करते हैं, सहसा निर्बल हो गये हैं और बीमार पड़ गये हैं। यही कारण है कि अवकाश ग्रहण करनेके बाद व्यक्तिको कदापि कामकाज करना पूरी तरह नहीं छोड़ देना चाहिये। उसे अवश्य ही कुछ हल्के काम—जैसे बागवानी, संगीत, साहित्यकार्य, घूमना-फिरना, यात्राएँ करना, पालतू पशु पालना, चिड़ियोंको दाना देना, खूब नहाना, खुली हवामें निवास करना, छोटे बच्चोंके साथ खेलना या उन्हें पढ़ाना, भक्ति-पूजन करना, मन्दिरोंकी सफाई आदि

करना इत्यादि जीवनदायी कार्य करने चाहिये । कार्य ही जिंदगीकी पहचान है ।'

सारा संसार कर्ममय है

वास्तवमें समग्र संसार कर्ममय है । निष्क्रियता तो साक्षात् मृत्यु है । काम करते रहनेवाला आदमी ही स्वस्थ, स्वाधीन, विकार तथा उद्वेगसे रहित, प्रसन्नचित्त और उदार होता है । कर्मकी पूर्णतामें ही जीवको आनन्द मिलता है ।

गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने यही बात इन शब्दोंमें कही है—

न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥
(३ । ५)

....

शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः ॥
(३ । ८)

अर्थात् कर्मनिष्ठ न रहकर कोई क्षणभरके लिये भी जीवित नहीं रह सकता । प्रत्येक जीवका प्रकृतिजनित स्वभाव है कि वह कुछ-न-कुछ कर्म करता रहे । यदि कोई इस जीवनका अन्य प्रयोजन न भी माने, तो केवल जीवित रहनेके लिये ही कर्म करना आवश्यक है । सारा संसार ही कर्ममय है ।

फिर आप क्यों अपने-आपको अधिक आयुका समझकर हाथ-पर-हाथ धरे बैठे हैं ? कुछ तो कीजिये ही ।

विश्वके संचालनको देखिये । प्रकृतिके कार्य-कलापके मर्ममें कौन-सा नियम काम कर रहा है ? जीवका क्या लक्षण है ?

जीवित और निर्जीव पदार्थमें क्या भेद है ? वे कौन-से गुण हैं, जिनसे हम जीवितको निर्जीवसे अलग कर सकते हैं ? इन गुणोंको ठीक-ठीक समझ लेना अत्यन्त आवश्यक है ।

कर्मणाभि भान्ति देवाः परत्र कर्मणैवेह प्लवते मातरिश्वा ।
अहोरात्रे विदधन् । कर्मणैवातन्द्रितो शश्वदुदेति सूर्य्यः ॥

अर्थात् आप जानते हैं स्वर्गमें देवी-देवता क्यों अक्षय ज्योतिसे चमकते रहते हैं ? वायु क्यों रात-दिन डोला करता है ? उसमें क्यों चेतना और स्पन्दन रहता है ? भगवान् सूर्य युग-युगान्तरसे अविरल गतिसे क्यों दिन-रात बनाते रहते हैं ? यह सब प्रकृति, यह संसार, यह समाज, यह महान् विश्व—सब क्यों चल रहे हैं ?

इसका एकमात्र कारण है 'गति' अर्थात् कर्मशीलता । दूसरे शब्दोंमें यह सब दिन-रात, प्रतिपल, प्रतिक्षण कर्ममें लगे रहते हैं। एक मिनिट भी नहीं रुकते । कभी आराम नहीं करते । जगत्में सब सचर-अचर कर्मनिरत हैं । सारा विश्व कर्ममय है ।

यह विश्व कर्मक्षेत्र है । आलसियों और निठल्लोंके लिये यहाँ कोई स्थान नहीं है। आधिदैविक, आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक सुख-शान्ति प्राप्त करनेका मार्ग कुछ-न-कुछ कर्म करते रहना है। कर्ममें व्यस्त रहा कीजिये । अवश्य ही कर्म सत् होना चाहिये ।

बस, तनिक-सी देर हो गयी थी !

भयानक दुर्घटना

रेल बड़ी तीव्र गतिसे सरपट भागी चली जा रही थी। सामने कुछ फासलेपर एक मोड़ था और आगे एक जंकशन स्टेशन था, जहाँ दो रेलें एक साथ चलकर टकराकर चूर-चूर हो सकती थीं। कंडक्टर एक रेलको रोकनेमें तनिक-सा लेट हो गया था, वह समझ रहा था कि दूसरी रेल दूसरी लाइनपर आनेसे पूर्व यह रेल मुख्य लाइनपर आ चुकेगी और दुर्घटना बच जायगी। उफ् ! एकाएक दूसरी लाइनपर भी दूसरी ट्रेनका एंजिन संयोगसे ठीक उसी समय

आता दिखायी पड़ा तेज रफ्तार ! सिग्नल डाउन । भागते हुए दोनों एंजिन एक क्षणमें भयानक टकराहटके साथ दुर्घटनाग्रस्त हो गये । हजारों मुसाफिरोंकी करुण चीत्कारसे वातावरण भर गया ! कितनोंकी ही जानें गयीं, कितने ही घर बरबाद हो गये । कोई पिस गया, तो किसीकी टाँग-हाथ कट गये । कितने ही बुरी तरह घायल हो गये । जान और मालका बहुत बड़ा नुकसान हो गया !

इस सबका क्या कारण था ?

कारण एक व्यक्ति था । यह थी उस व्यक्तिकी थोड़ी-सी लापरवाही । तनिक-सी सुस्ती ! उसे सिग्नल देनेमें जरा देर हो गयी थी । उसके क्षणभरके आलस्यने अनेकोंके प्राण ले लिये !

सहायक सेना तनिक देरसे पहुँची !

फ्रान्सके महायुद्धकी एक घटना है ।

एक बड़ा युद्ध भयानक रूपमें चल रहा था । सैनिकोंके दस्ते एकके बाद एक शत्रुपर वायुवेगसे आक्रमण कर रहे थे । आठ घंटेतक घमासान मार-काट चलती रही । पहाड़ीके दूसरी ओरके सैनिक प्राणपणसे रक्षात्मक कार्यवाही कर रहे थे । दोनों सेनाएँ पूरी तरह थककर चकनाचूर हो चुकी थीं । एक पकड़ और लड़ लेते, तो विजय पूरी हो जाती । एक मजबूत सहायक सेनाको तुरंत बुलाया गया था । प्रतिक्षण सहायक सेनाके आनेकी उत्कट प्रतीक्षा की जा रही थी । विजेता पक्षको अब विश्वास हो गया था क वे अवश्य जीत जायँगे । उन्हें अपनी सहायक सेनाके समयपर

पहुँच जानेका पूर्ण विश्वास था। इसलिये उन्होंने अपनी रक्षा करनेवाली रिजर्व फौजको भी आक्रमण करनेवाली फौजमें परिणत कर लिया और पहाड़ीके छिपे स्थानोंसे निकल-निकलकर वे शत्रुपर आक्रमण करने लगे थे। उन्हें पता था कि सहायक सेना उनके साथ आ जायगी और विजय उनके हाथमें रहेगी।

किंतु हाय ! सहायक सेना समयपर न पहुँची। उधर उत्सुक आँखें लगी रहीं कि सहायक सेना अब आयी, अब आयी ! ग्राउची नामक सेनाध्यक्ष समयपर न पहुँचा।

नतीजा क्या हुआ ? क्या आप जानते हैं ?

शाही सेना पराजित हुई। वाटर लूके सुप्रसिद्ध युद्धमें नैपोलियन बुरी तरह पराजित हुआ। वह सेंट हैलिनामें कारावासमें बंदी बना लिया गया और एक बंदीके रूपमें ही मर गया।

यह सब आखिर क्यों हुआ ? नैपोलियन युद्धविद्यामें अति प्रवीण था। उसने अनेक विकट युद्ध जीते थे। युद्ध-सम्बन्धी उसका अनुभव बहुत बढ़ा-चढ़ा था। उसके पराजित होनेमें उसका कोई कसूर नहीं था।

गलती यह हुई कि उसका एक मार्शल सहायक सेनासहित मददके लिये तनिक देरसे पहुँचा था और एक महान् योद्धाकी पराजयका कारण बना था।

काश, वे जरा जल्दी करते !

व्यापारके क्षेत्रमें एक प्रसिद्ध फर्म दिवालियापनके विरुद्ध जूझ रही थी। कैलिफोर्नियामें उस फर्मकी बहुत-सी स्थायी पूँजी जमा

थी। उन्हें यह आशा थी कि एक निश्चित अवधिके भीतर वहाँसे रुपया जरूर आ जायगा। यदि वह रुपया आ जायगा, तो उस फर्मकी साख, उसके मालिकोंकी इज़्जत और उसकी भावी समृद्धि सब सुरक्षित थी।

किंतु दुर्भाग्यकी चोट ! नियतिका कुटिल चक्र ! एक सप्ताहके बाद दूसरा सप्ताह बीतता गया और वहाँसे सोना न आया।

अन्तमें वह अभागा आखिरी दिन भी आ पहुँचा, जब फर्मको तमाम बड़ी मूल्यवाली हुंडियोंका भुगतान निश्चितरूपसे करना ही था। अब ऋण बढ़कर आखिरी सीमापर पहुँच चुका था, फिर भी आशाके झीनेसे सूत्रमें फर्मके मालिकोंकी इज़्जत लटक रही थी। उन्हें उम्मेद थी कि कैलिफोर्नियासे सुरक्षा-फंडमेंसे आपत्तिकालकी चढ़ी हुई रकमका भुगतान करनेके लिये जरूर रुपया आयेगा।

सुबह होते ही केबिलग्रामद्वारा जल्दी-से-जल्दी रुपया भेज देनेका जोरदार तकाजा किया गया।

सबको पूर्ण आशा थी कि कोई लापरवाही नहीं होगी और संचित राशि आपत्तिसे पूर्व पहुँच जायगी।

पर दुर्भाग्य ! शोक ! जब स्टीमर आया, तो मालूम हुआ कि रुपया कुछ देरसे पहुँचा था और तबतक यह स्टीमर वहाँसे चल चुका था।

अगला स्टीमर दिवालिया फर्मके लिये चढ़ी रकमका डेढ़ गुना रुपया लेकर आया, किंतु हाय ! तबतक फर्म दिवालिया घोषित हो

चुकी थी। तनिक देर हो जानेकी वजहसे उसकी साख और मालिकोंकी प्रतिष्ठा पूरी तरह धूल-धूसरित हो चुकी थी।

कारण यह था कि रुपयेकी सहायता भेजनेवालोंने रुपया जरा देरमें भिजवाया था ! काश, वे तनिक-सी जल्दी करते तो साख, यश और प्रतिष्ठा सब कुछ बच सकती थी !

निर्दोषको फाँसी लग गयी !

एक अपराधीको मनुष्यकी हत्या कर देनेके अपराधमें फाँसीका हुक्म हुआ। वह फाँसीके लिये ले जाया जा रहा था। उसने परिस्थितियोंसे विवश होकर एक दुष्ट हत्यारेका सामना किया था। स्थिति ऐसी थी कि या तो वह उसे मारे अथवा उसके छुरेके नीचे प्राण त्याग दे। उस साहसीने दुष्टको परास्त तो कर दिया, किंतु अब हत्याका अपराध उसके ऊपर था।

कानून अंधेकी लाठी है। इसकी पहुँचके भीतर जो भी जब कभी आता है, सजा पाता ही है।

इस व्यक्तिके पक्षमें जनता थी। सैकड़ों व्यक्तियोंने इसको मुक्त कर देने तथा दया दिखानेके लिये प्रार्थनापत्र भेजे थे। जनता उसके पक्षमें थी और सबको पूरी आशा थी कि सजासे एक दिन पूर्व मुक्तिकी आज्ञा जरूर आ जायगी। अपराधीको सजासे छोड़ दिया जायगा। जेलर तकको विश्वास था कि कैदीको मुक्त कर दिया जायगा।

किंतु प्रतीक्षाके बावजूद प्रातःकाल आ गया। समय भागा

चला जा रहा था और काले मुखवाली मौत अपने विकराल जबड़े खोले अपराधीको भक्षण करने चली आ रही थी।

अन्तिम क्षण आ पहुँचा। फाँसीकी तैयारियाँ हो रही थीं, फिर भी सबको राजाज्ञाके समयपर पहुँच जानेकी आशा थी। मनुष्य आशाके उज्ज्वल प्रकाशके सहारे अन्तिम क्षणतक जीता है।

शायद राजदूत अपराधीकी मुक्तिका परवाना लाता होगा! अब आया! वह आया! पर कोई भी न आया। अपराधीको फाँसीके तख्तेपर चढ़ा दिया गया। मृत्यु-जैसा काला कपड़ा उसके नेत्रोंपर ढक दिया गया। नीचेकी चटकनी दबायी गयी।

अब मरी हुई लाश छटपटाती हुई लटक रही थी। आत्मा चली गयी थी, निर्जीव शरीर हवामें हिल रहा था। ठीक इसी मौकेपर दूरसे एक घुड़सवार तेज रफ्तारसे भागा आता हुआ दिखायी दिया। सबकी आँखें उधर लगी हुई थीं।

वह राजदूत था। बंदीकी मुक्तिका आदेश लेकर बदहवास घोड़ेको भगाये चला आ रहा था। उसके हाथमें आज्ञा-पत्र था, जो उसने दूरसे ही ऊँचा उठाकर उत्तेजित भीड़को दिखाया।

परंतु हाय! वह तनिक देरसे पहुँचा था। एक व्यक्तिके प्राण तनिक ही जल्दी करनेसे बच सकते थे। गलती यही हुई कि राजाज्ञा लानेवाला राजदूत तनिक देरसे घटनास्थलपर पहुँचा था।

ये सब घटनाएँ जीवनके एक महत्त्वपूर्ण सूत्रको स्पष्ट करती हैं और वह यह कि हम समयकी पाबंदीका बेहद ध्यान रक्खें। कर्त्तव्य-पूर्तिमें देर और आलस्य कदापि न करें।

तनिक-सी देरीसे सैकड़ोंकी हानि हो सकती है। व्यक्तिकी जान जा सकती है। वर्षोंकी इज्जत धूलमें मिल सकती है। आनन्द, समृद्धि, सुख-शान्ति गायब हो सकती है।

लोग धर्मके शिक्षण, परमार्थके कार्योंको करनेकी सोचते ही रहते हैं, कलपर टालते जाते हैं, यहाँतक कि टालते-टालते वह उत्तम संकल्प मन्द पड़ जाता है।

पाँच मिनिटका समय कितना छोटा होता है, पर उसीका सदुपयोग जीवनको बदल सकता है। पिछड़ जाने या देर कर देनेपर भयंकर हानि हो सकती है।

यदि हम कोई अच्छा गुण अपने चरित्रमें विकसित करना चाहते हैं, तो वह समयकी पाबंदी (Punctuality) है। हमारा जीवन घड़ीकी सूईपर चलता रहे। हम अपने जीवनको नियमित बनावें, आलस्य न करें। जो कार्य जिस समय होना है, निश्चित रूपसे उसी समय हो। हमें अपने दैनिक जीवनको भी क्रमबद्ध, योजनाबद्ध और निश्चित रूप-रेखाके अनुसार बनाना चाहिये। जीवनका सदुपयोग समयका अधिकाधिक ऊँचे कार्योंमें नियमानुसार व्यय करनेसे ही सम्भव है। संसारके काल-चक्रमें कहीं भी अनियमितता नहीं। लोक और दिक्पाल, पृथ्वी और सूर्य, चन्द्र तथा शेष सब ग्रह-नक्षत्र आदि समयकी गतिसे गतिमान् हैं। समयकी अनियमितता होनेसे सृष्टिका कोई काम नहीं चलता। समस्त सृष्टि-क्रममें यही नियम चल रहा है। फिर आप ही क्यों अनियमित रहें?

हम मानसिक चोर न बनें !

श्रीमती बिनोना बोहरा एम० बी० बी० एस० एक भारती महिला डाक्टर हैं। वे पिछले दिनों अपने अध्ययनके सिलसिलेमें जिनेवा (स्विट्जरलैंड) गयी थीं। वे पाश्चात्त्य देशोंके मजदूरोंके विषयमें कह रही थीं——

"मैंने देखा कि वहाँ मजदूरोंमें ईमानदारीकी भावना बहुत अधिक है। मैंने उन्हें ऐसे स्थानोंमें काम करते देखा है, जहाँ उनपर ऊपरसे निगरानी करनेवाला कोई अफसर या डाँट-फटकार

बतानेवाला कोई ठेकेदार समीप नहीं रहता। वह मजदूर नियत समयपर, चाहे उसे गड्ढे खोदनेका ही मामूली काम क्यों न दिया जाय, काम शुरू कर देगा। मन लगाकर पूरे आठ घंटेतक काम करेगा। न एक मिनट कम, न एक मिनट अधिक! भंगी-तक अपनी मोटरमें बैठकर आता और सड़ककी झाड़ू-बुहारू करके चला जाता है। स्वीडन और नार्वे-जैसे देशोंमें ट्रक-ड्राइवरका जीवन-स्तर काफी ऊँचा है; क्योंकि वह ईमानदारीके बलपर हमारे यहाँके मजदूरोंकी अपेक्षा बहुत अधिक कमाता है। मैंने यह नोट किया कि उनके यहाँ इतनी अधिक मजदूरी है तो, कामके प्रति उत्साह, सचाई और पक्का व खरा श्रम करनेकी आदत भी है। यदि किसीका पर्स खो जाय, तो वे ऐसी छोटी-सी बातके लिये अपना ईमान खराब नहीं करते, उसे ज्यों-का-त्यों लौटा देते हैं। यहाँ हम 'धर्म-धर्म' चिल्लाते हैं, धर्मकी मनोवृत्ति सिद्ध करनेके लिये ऊपरी लिफाफा धार्मिक बनाये रहते हैं, माथेपर तिलक और गलेमें मालाएँ डालते हैं। उनके यहाँका व्यावहारिक धर्म है। प्रतिदिनके जीवनमें ईमानदारीका धर्म है। मामूली-मामूली-सी बातोंके लिये झूठकी आदत उनमें कहीं नहीं देखी। हम मन्दिरोंसे निकलते ही धोखा-धड़ी करते हैं। वे ईसाई-धर्मको जीवनमें जीते हैं, धर्मके सिद्धान्तोंपर आचरण करते हैं। उनका धर्म प्रैक्टीकल धर्म है। आचरणमें दैनिक उपयोगका धर्म है। किसी देशकी वास्तविक शक्ति उसके इस व्यावहारिक धर्मसे ही नापी जा सकती

है।' धर्मके व्यावहारिक रूपको ही वे ईश्वरकी पूजा मानते हैं।'

ये निष्कर्ष हम सबके लिये आँखें खोल देनेवाले हैं। वास्तवमें कोई आदमी बाहरसे कितना ही ईमानदार और सच्चा क्यों न हो, अगर व्यवहार और दैनिक आचरणमें धार्मिक नहीं है, तो उसे चोर ही कहा जाना चाहिये।

जो मनसे अपने कार्यके प्रति सच्चा नहीं है, वह एक प्रकारका चोर ही है। किसीकी चीजको न चुराना, पर किसीकी वस्तुको न लेनेपर भी यदि मनसे उस वस्तुको पाना चाहता है, उसका मन उस वस्तुके लिये ललचाता है, तो वास्तवमें वह चोरी ही करता है। मुँहसे बुरा न कहते हुए भी अंदरसे किसीका बुरा चाहना—पशुता और पाप ही है।

बाह्य दृष्टिसे ऐसा आदमी भले ही दण्डनीय न माना जाय, किंतु वह अपनी आत्माके सम्मुख तो अपराधी है ही और किसी-न-किसी रूपमें उसका दण्ड भी पाता ही है।

जो बाहरी चोर है, वह चोर है; किंतु जो व्यक्ति मनसे चोर है, वह दोहरा चोर है। एक तो वह चोरीकी प्रवृत्ति रखता है, दूसरे ऊपरसे शाह बना हुआ है। दूसरोंको प्रवञ्चित करता रहता है। क्रियात्मक चोर दण्ड पाकर या किसी अन्य कारणसे चोरी करना छोड़ सकता है, किंतु राज-नियमोंसे निरापद मानसिक चोर, सदा-सर्वदा असली चोर ही बना रहता है।

मधुर जीवनके लिये यह सर्वोत्तम उपाय है !

जब मनमें पुरानी दुःखद स्मृतियाँ सजग हों, तो उन्हें भुला देनेमें ही श्रेष्ठता है। अप्रिय बातको भुलाना आवश्यक है । उन्हें भुलाना उतना ही ज़रूरी है, जितना अच्छी बातका स्मरण करना । जब खेतमें घास-फूस उग आती है, तो आप उसे उखाड़ फेंकते हैं । घृणित, क्रोधी, ईर्षालु, व्यथाजनक स्मृतियाँ उन्हीं कंटकोंकी तरह हैं, जो अन्तःकरणरूपी उद्यानकी पवित्रताको नष्ट करती हैं । वे उत्पादक शक्तिका क्षय कर देती हैं । हम घृणित चिन्ताजनक अनुभूतियोंको पुनः-पुनः यादकर अपने चारों ओर एक मानसिक नरक निर्मित कर उसीमें दुखी—पीड़ित होते रहते हैं !

बुद्धिमानी इसीमें है कि इन दुःखद प्रसंगोंकी ओरसे मन हटा लिया जाय । जब हम उस ओरसे मनोवृत्ति हटा लेंगे, तो निश्चय ही हमारा इस नरकसे साथ छूट जायगा । विस्मृतिका प्रभाव बड़ा मङ्गलदायक है । ज्यों ही हम पीड़ा, दुःख और वेदनाकी स्मृतियों या कल्पित भयोंसे अपना सम्बन्ध तोड़ते हैं, त्यों ही हम अन्धकारसे प्रकाशकी ओर चलना प्रारम्भ कर देते हैं । जबतक मनुष्यका मन व्यथा, पीड़ा, रोग, कष्ट, भय आदिसे परिपूर्ण रहता है, तब-तक उसका पौरुष प्रकट नहीं होता । उसकी दैवी कल्याणकारी शक्ति पंगु बनी रहती है ।

पं० रामलाल पहाड़ाका मत माननीय है—'जब-जब आपके मनमें अनिष्ट भाव प्रकट हों, तब-तब उनको हटाना और भुलाना ही बुद्धिमानीका कार्य है । दुर्बलता, दीन-हीनता, भय और कष्टको

भुलाना कठिन है; परंतु ईश्वरका स्मरण सरल है····यदि हम कल्पित बन्धनोंको तोड़ डालें, तो ईश्वर सहायता देगा। उसके प्रति मन फेरते ही वह अद्भुत एवं अदृश्य रीतिसे सहायता करता है। हमें इसका कुछ ज्ञान भी नहीं हो पाता।'

अमेरिकाके एक प्रमुख डाक्टर 'मेडिकल टाक' नामक पत्रमें लिखते हैं कि "वर्षोंके अनुभवके बाद मैं इस निर्णयपर पहुँचा हूँ कि दुःख और चिन्ता दूर करनेके लिये 'भूल जाओ' से बढ़कर कोई दवा नहीं है।" अपने लेखमें वे लिखते हैं—

'यदि तुम शरीरसे, मनसे और आचरणसे स्वस्थ होना चाहते हो, तो अस्वस्थताकी सारी बातें भूल जाओ।'

नित्यप्रतिके जीवनमें छोटी-मोटी चिन्ताओंको लेकर झींकते मत रहो। उन्हें भूल जाओ। उन्हें पोसो मत। अपने अव्यक्त या अन्तःस्थलमें पालकर मत रक्खो। उन्हें अंदरसे निकाल फेंको और भुला दो। उन्हें स्मृतिसे मिटा दो।

माना कि किसी 'अपने' ने ही तुम्हें चोट पहुँचायी है। तुम्हारा दिल दुखाया है। सम्भव है, जान-बूझकर उसने ऐसा नहीं किया है, और मान लो कि जान-बूझकर ही उसने ऐसा किया है, तो क्या तुम उसे लेकर मानसिक उधेड़-बुनमें लगे रहोगे? इस चिन्तित मनकी अवस्थासे क्या तुम्हारे मनका बोझ हल्का होगा? अरे भाई, उन कष्टदायक अप्रिय प्रसंगोंको भुला दो। उधर ध्यान न देकर अच्छे शुभ कार्योंमें मनको केन्द्रीभूत कर दो। पुरानी कटु स्मृतियों-को लेकर चिन्ताओंका जाल मत बुनने लगो। अपनी पीड़ाओं,

दुःख-तकलीफोंको भूलो । कौन ऐसा है, जिसे दुःख-तकलीफें नहीं हैं । भूल जाओ, उधरसे चित्त हटा लो; चिन्तासे आँखें फेरकर आशाकी ओर लगाओ; कटुतासे मन मोड़कर मधुरतासे जोड़ लो ।

दूसरोंके प्रति तुम्हारे मनमें घृणा, द्वेष, ईर्ष्या, दुर्भाव आदिके जो घाव हैं, उनमें भीतर-ही-भीतर मवाद भर रहा है और यह तुम्हारे ही शरीर, मन, प्राणमें भयंकर मानसिक विष उत्पन्न कर रहा है । क्यों इस ज़हरसे आत्म-हत्या करते हो ? जीवनका आनन्द क्यों नहीं लेते ? फिर क्यों न इन तमाम बातोंको अपने दिलसे निकाल फेंको, हृदयसे बहा डालो । तुम देखोगे कि जो जीवनके उज्ज्वल पक्षोंपर स्थिर रहनेसे तुम्हारे भीतर ऐसी पवित्रता, ऐसी सफ़ाई आयगी कि तुम्हारा शरीर और मन पूर्णतः स्वस्थ और निर्मल हो जायगा····इन वेदनाओंके विषयमें पुनः-पुनः सोचकर क्यों अपने हाथों अपनी हत्या कर रहे हो ? शायद तुम इन बातोंको नहीं जानते । इसीलिये तो कहता हूँ— चिन्ताओंको भूल जाओ, कटु अनुभूतियोंको विस्मृत कर दो ।

'और बड़े-बड़े संकट, विपत्ति, दुःखके समय क्या करें ? यदि हमारे ऊपर दुःखोंका पर्वत टूटा हो, विपत्तिकी बिजली गिर पड़ी हो, किसीने हमारे सत्यानाशकी युक्तियाँ सोची हों और कोई हमारा परम प्रिय व्यक्ति हमें तड़पता हुआ छोड़कर मृत्युके मुखमें समा गया हो—ऐसे अवसरोंपर जब हमारा घाव गहरा और मर्मान्तक है, हम क्या करें ? क्या उन्हें भी भूल जायँ, विस्मृत कर डालें ?' हाँ, हाँ, उन्हें भी भूल जाओ । धीरे-धीरे ही सही,

किंतु विस्मृत कर दो उन्हें भी। इसीमें तुम्हारी भलाई है। भविष्यमें इससे तुम अधिक-से-अधिक सुख पाओगे, शान्ति पाओगे।

दुःखकी, चिन्ताकी, बीमारीकी बातें न करो, न सुनो। स्वास्थ्यकी, आनन्द और प्रेमकी, शान्ति और सौहार्दकी बातें करो और उन्हींको सुनो। देखोगे कि तुम स्वास्थ्य-लाभ करोगे, आनन्द-लाभ करोगे, प्रेम पाओगे, शान्ति पाओगे।

और मैं अपने अनुभवसे कह रहा हूँ, सच मानो कि दुःखोंका भार उतार डालना कतई मुश्किल नहीं है। बड़ा ही आसान है। शुरू-शुरूमें आदत डालनेमें कुछ समय लगेगा; सम्भव है, कुछ कठिनाई भी हो, किंतु आदत पड़ जानेपर बात-की-बातमें तुम बड़ी-से-बड़ी चिन्ताको चुटकियोंपर उड़ा दोगे और इस प्रकार भूल जाने या भुला देनेमें तुम इतने अभ्यस्त हो जाओगे कि जीवनको दुःखमय और विषाक्त कर देनेवाली तमाम बातें तुम्हारे सामने आते ही काफूर हो जायँगी। यह संसार तुम्हारे लिये आनन्दमयका आनन्दमय प्रतीत होगा और दुःख, अभाव, पीड़ा, कष्ट इत्यादि कोई दुष्ट भाव मनमें न रह जायँगे।

भूलना सीखो। यदि शरीरका स्वास्थ्य और मनकी शान्ति अभीष्ट है तो भूलना सीखो। चिन्तासे मुक्ति पानेका सर्वोत्तम उपाय दुःखोंको भूलना ही है।

भूतकालको शोकपूर्ण दृष्टिसे न देखो; क्योंकि वह पुनः लौट नहीं सकता। बुद्धिमत्ताके साथ वर्तमान और भविष्यकी उन्नति करो। वही तुम्हारे हाथमें हैं।

हिंदूधर्म उपयोगी जीवन-तत्त्वोंको महत्त्व देता है !

हिंदूधर्ममें उपयोगी कर्मोंको स्थान दिया गया है

संसारमें सैकड़ों धर्म हैं। उनके भिन्न-भिन्न आचार और पृथक्-पृथक् मान्यताएँ हैं। जब हम इन धर्मोंकी तुलना सनातन हिंदूधर्मकी विविध मान्यताओंसे करते हैं तो एक बड़ी महत्त्वपूर्ण बात पाते हैं। वह यह है कि हिंदूधर्म उपयोगितावादके आधारपर खड़ा किया गया है। प्राचीन हिंदू विचारकों, चिन्तकों, विद्वानों और आचार्योंने अपना-अपना दीर्घ अनुभव, गहन अध्ययन, सूक्ष्म अवलोकन और मौलिक उपयोगी चिन्तन हिंदूधर्ममें भर दिया है, केवल लाभदायक और कल्याणकारी बातोंको धर्ममें स्थान दिया है।

जहाँ और धर्मोंके तत्त्वों, मान्यताओं और रीति-रिवाजोंका अर्थ और अभिप्राय स्पष्ट नहीं होता, वहाँ हिंदू धार्मिक मान्यताओंका कोई-न-कोई उपयोगी तात्पर्य है। उसमें कोई-न-कोई लाभदायक तत्त्व छिपा हुआ है।

यह धर्म केवल बाह्य ढकोसलों और मिथ्या प्रदर्शनको कोई महत्त्व नहीं देता; इसमें सर्वत्र बुद्धि और स्वस्थ चिन्तनकी प्रधानता रही है। ऐसी-ऐसी उपयोगी सूक्तियाँ और लाभदायक श्लोक भरे पड़े हैं, जिनसे स्वच्छ मन, स्वस्थ शरीर और समुन्नत समाज बनता है। हमारी प्राचीन पुस्तकों, विशेषतः वेदोंमें परमात्मा और उनकी उपासना, आत्मशक्तिका विकास, चरित्र-निर्माण, सदाचार, मनोनिग्रह, सत्सङ्ग-जैसे वैयक्तिक साधनाके लिये उपयोगी विषयोंसे लेकर समाज और राष्ट्रकी सर्वाङ्गीण उन्नतिको भी ध्यानमें रक्खा गया है। विवाह,

सुखी गृहस्थजीवन, नारी-गौरव, दोष-निवारण, स्वास्थ्य और आरोग्य, दुर्गुणोंका निषेध आदि अनेक ऐसे उपयोगी तत्त्वोंको धर्ममें सम्मिलित किया गया है, जिनसे लाभ-ही-लाभ हैं।

हिंदूधर्म हर प्रकारसे लाभप्रद जीवन-पद्धति है !

हिंदू मनीषियोंकी यही इच्छा रही है कि वे तत्त्व, कर्म, पूजा-पद्धतियाँ, प्रार्थनाएँ, व्यायाम, रीति-रिवाज, मान्यताएँ, विचार-धाराएँ धर्ममें शामिल की जायँ, जिनसे व्यक्ति और समाजकी सामाजिक, वैयक्तिक, आरोग्यसम्बन्धी और आध्यात्मिक—हर प्रकारकी उन्नति जीवनके अन्ततक होती रहे। हिंदूलोग हर दृष्टिसे संसारमें स्वस्थ, दीर्घजीवी, संयमी, समुन्नत और प्रगतिशील रहें। जो बात उन्हें मानवजीवन और समाजके लिये उपयोगी और लाभदायक जान पड़ी, उसीको धर्मके अंदर स्थान दे दिया गया, जिससे हिंदूमात्र उसे निश्चयरूपसे अपना लें और लाभ उठाते रहें। हिंदूधर्मके आचार, सोलह संस्कार, विविध पर्व-त्योहारोंमें कुछ-न-कुछ वैज्ञानिक लाभका दृष्टिकोण ही प्रधान रहा है। देवमूर्त्तियोंमें प्रतीक-पद्धतिसे काम लिया गया है। प्रत्येक देवताका कुछ गूढ़ सांकेतिक मतलब रक्खा गया है। अवतारोंका भी सांकेतिक अर्थ छिपा हुआ है।

प्राचीन कालमें हिंदू-पूजापद्धति, वेदोंकी सूक्तियों, ऋचाओं, देवी-देवताओं, त्योहारों, मूर्तियों और धर्मग्रन्थोंको प्रबुद्ध जनता समझती थी, वैदिक मन्त्र जनताकी जबानपर थे, संस्कृत-जैसी देववाणी हमारी मातृभाषा थी। खेद है कि आज संस्कृत न समझ सकनेसे हमारा सब धार्मिक ज्ञान कुछ इने-गिने विद्वानोंकी ही वस्तु

बन गया है। जनता संस्कृतको समझ नहीं पाती। इसलिये व्यर्थके अन्धविश्वास, गलत धारणाएँ, मूढ़ताएँ और मूर्खताएँ धर्मके क्षेत्रमें घुस बैठी हैं, जिन्हें जन-मनसे निकालनेकी बड़ी आवश्यकता है।

हमारा धर्म उपयोगिता और लाभकी दृष्टिसे क्या-क्या कहता है? किस कर्मकाण्डसे क्या फायदा है? यह बड़ा लंबा विषय है। यहाँ केवल कुछ आचार, संस्कार और त्योहारोंकी उपयोगितापर विचार किया जा सकता है।

हिंदूधर्ममें स्वास्थ्य-सम्बन्धी उपयोगी तत्त्व

हिंदूधर्म स्वस्थ शरीरको समस्त धर्मका जड़, आधार मानकर चलता है। स्वस्थ शरीरवाला व्यक्ति ही सही रूपमें धर्मनिष्ठ जीवन व्यतीतकर पूरी आयुका सुख-भोग ले सकता और समाजको उससे पूरा लाभ दे सकता है। निर्बल, रोगी, विकृत और अस्वस्थ शरीरवाला व्यक्ति धर्मके निगूढ़ मर्मको क्या समझेगा।

इसलिये हमारे यहाँ मनुष्य-जीवनकी सौ वर्षकी मर्यादा बाँध दी गयी है।

जीवनशक्तिको सँभालकर खर्च करो—

शतं जीव शरदो वर्धमानः।

(अथर्ववेद ३। ११। ४)

अर्थात् हिंदुओ! सौ वर्षोंतक उन्नतिशील समृद्धिपूर्ण जीवन जीओ। यह जीवनशक्ति बड़ी सावधानीसे खर्च करनेके लिये आपको दी गयी है। अपनी जीवनशक्तिको ऐसे संयम और विवेकसे खर्च करो कि पूरे सौ वर्षोंतक जी सको। इस अवधिसे पूर्व तुम्हें निर्बल नहीं होना चाहिये।

शरीरको सुदृढ़ बनाओ

स्वयं वर्धस्व तन्वं।

(ऋग्वेद ७।८।५)

अर्थात् अपने शरीरको निरन्तर बलवान् बनाओ। शक्तिमान् शरीरमें ही बलवान् आत्मा निवास करती है। उसीसे समस्त धर्म-कर्म पूर्ण हो सकते हैं। यदि शरीर बलवान् नहीं है तो वास्तवमें कुछ भी नहीं है। उन्नतिशील जीवनके लिये शारीरिक शक्ति भी बढ़ानेकी अतीव आवश्यकता है, यह कभी न भूलो।

अश्मानं तन्वं कृधि।

(अथर्ववेद १।२।२)

अर्थात् अपने शरीरको पत्थर-जैसा सुदृढ़ बनाओ। मजबूत शरीर ही धर्मके कठोर जीवनको निभा सकता है। जो निर्बल और निर्वीर्य है, अशक्त और कमजोर है, वह धर्मके मार्गपर गिर पड़ता है। श्रम और तितिक्षासे ही शरीर धर्मके लिये मजबूत बनता है।

वर्च आ धेहि मे तन्वां सह ओजो वयो बलम्।

(अथर्ववेद १९।३७।२)

अर्थात् धर्म चाहते हो, उद्धार और शान्ति चाहते हो, जीवनको सफल करना चाहते हो तो अपने शरीरमें तेज, साहस, ओज, आयुष्य और बलकी वृद्धि करते रहो।

शरीर ईश्वरका मन्दिर है

आपकी यह देह हाड़-मांसका लोथड़ा नहीं, हेय या घृणाकी वस्तु नहीं, उपेक्षाकी चीज नहीं, प्रत्युत ईश्वरका पवित्र मन्दिर है। आत्माके रूपमें स्वयं ईश्वर इसमें निवास करते हैं। ईश्वरका निवास

होनेसे यह परम पवित्र है। इसके पूरे ध्यान और देख-भालकी आवश्यकता है। अपने शरीरको भगवान्‌का पवित्र मन्दिर समझकर उसकी पूर्ण सार-सँभाल, देख-भाल और रक्षाका ध्यान रक्खो। शरीरकी सुरक्षा हमारे धर्मका प्रथम अङ्ग है।

कुछ लोग केवल शरीरकी ही देख-भाल और शक्ति बढ़ानेमें सदा लगे रहते हैं। यह ठीक नहीं है। केवल शरीर ही बढ़ता रहे, मन-आत्मा और ज्ञानका ध्यान न रहे तो उद्दण्डता आती है। यह उद्दण्डता त्याग देनी चाहिये। इस ओर सावधान करते हुए लिखा गया है—

दृंहस्व मा ह्वाः। (यजुर्वेद १। ९)

अर्थात् सुदृढ़ तो बनो, पर उद्दण्ड कदापि नहीं। स्वास्थ्यको सुधारो, पर अपनी शारीरिक शक्तिसे निर्बलोंको न सताओ। पापमें प्रवृत्त न हो जाओ, यह ध्यान रक्खो।

खान-पानमें सावधानियाँ रखिये

हिंदूधर्ममें भक्ष्य-अभक्ष्यका सर्वाधिक ध्यान रक्खा गया है। अभक्ष्य पदार्थों (जैसे मांसाहार, शराब, अंडे, धूम्रपान, बासी पदार्थ, गरिष्ठ, तामसी भोजन, नशेबाजी, मादक पदार्थ, चटोरापन) का पूर्ण निषेध है। कहा है—

विश्वं समत्रिणं दह। (ऋग्वेद १। ३६। १४)

सर्वभक्षी (भक्ष्य-अभक्ष्यका विवेक न करनेवाले) लोग रोगोंकी अग्निमें जलते हैं। वे पृथ्वीपर ही नरकका दुःख भोगते हैं। भक्ष्य-अभक्ष्यका ध्यान न रखनेवाले मूर्ख लोग बीमार और अल्पायु पाते हैं।

स्वादो पितो मधो पितो वयं त्वा ववृमहे अस्माकमविता भव ॥
(ऋग्वेद १ । १८७ । २)

अर्थात् हिंदूको ऐसा आहार करना चाहिये जो मधुर रसयुक्त स्वादिष्ट अन्नसे आयुर्वेदकी रीतिसे बनाया गया हो । उन्नतिशील व्यक्तिको वही शाकाहार करना चाहिये, जो रोग नष्टकर आयुबलकी रक्षा करता हो । तीखे, कसैले, बासी-बुसा और मांस आदिका प्रयोग घृणित होता है ।

हमारा आहार ऐसा हो, जिससे हमारी बुद्धि, अवस्था और बलमें निरन्तर वृद्धि होती रहे ।

सूर्य और वायु भी देवता-तुल्य

हमारे यहाँ ब्राह्म मुहूर्तमें शय्या त्यागकर शौचादिसे निवृत्त हो सूर्यको अर्घ्य देना धर्मका अङ्ग माना गया है । स्वास्थ्य और दीर्घ जीवनके लिये यह अतीव उपकारी काम है । कहा है—

यदद्य सूर उदितेऽनागा मित्रो अर्यमा सुवाति सविता भगः ॥
(सामवेद १३५१)

प्रातःकालीन प्राणदायिनी वायु सूर्योदयके पूर्वतक निर्दोष रहती है । अतः प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर प्राणप्रद वायुका सेवन करना धर्मका अङ्ग है । इससे उत्तम स्वास्थ्य प्राप्त होता है और आरोग्य स्थिर रहता है । धनकी प्राप्ति होती है ।

उत वात पितासि न उत भ्रातोत नः सखा स नो जीवातवे कृधि ॥
(सामवेद १८४१)

वायु जीवन है, आरोग्यदाता है । अतः प्रातःकाल उठकर प्राणदायक वायु नियमित सेवन करें । यह पिता, भाई और मित्रके समान सुख देता है ।

ब्रह्मचर्यका अत्यधिक महत्त्व रखा गया है

ऋजीते परि वृङ्धि नोऽश्मा भवतु नस्तनूः ।
सोमोऽधि ब्रवीतु नोऽदितिः शर्म यच्छतु ॥
(यजुर्वेद २९ । ४९)

अर्थात् जिस प्रकार मनुष्य पृथ्वीमें अपना घर बनाकर निवास करता है, उसी प्रकार शरीर भी जीवात्माका घर है । अतः इसे ब्रह्मचर्य, सात्त्विक अन्न, पथ्य और संयमद्वारा सदैव स्वस्थ एवं नीरोग रक्खे । शरीरको स्वस्थ रखना धर्म है ।

इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरोऽअथमेतम् ।
शतं जीवन्तु शरदः पुरूचीरन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन ॥
(यजुर्वेद ३५ । १५)

परमात्माने मनुष्यकी आयु सौ वर्षोंसे भी अधिक बनायी है । इसलिये मनुष्य संयम और ब्रह्मचर्यसे रहे और अकालमें ही मृत्युको प्राप्त न हो ।

देवैर्दत्तेन मणिना जङ्गिडेन मयोभुवा ।
विष्कन्धं सर्वा रक्षांसि व्यायामे सहामहे ॥
(अथर्ववेद २ । ४ । ४)

मैं व्यायामके द्वारा रक्त-शोषण करनेवाले सभी रोगोंके कीटाणुओंको और बुरे विचारोंको दूर रक्खूँ और ब्रह्मचर्यके द्वारा अपनी शक्तियोंको अपने शरीरमें बनाये रक्खूँ । स्वास्थ्य-रक्षाके लिये ब्रह्मचर्य और व्यायाम दोनोंका ही पालन करता रहूँ ।

ब्रह्मचर्यसे वीर्य-रक्षा होती है । यह वीर्य ही जीवन है, वीर्यनाश ही मृत्यु है । एक संतान प्राप्त हो जानेके बाद विवाहितों-

के लिये भी ब्रह्मचर्यका पालन करना उचित माना गया है। वीर्य-रक्षण ही धर्म है। इससे समस्त इन्द्रियाँ वशमें रहती हैं।

प्रातःस्नानका विज्ञान

शरीर-शुद्धिसे मन और आत्माकी शुद्धि होती है। मन ईश्वरमें लगता है। जलके शरीरपर डालनेसे भीतर शान्ति और संतुलन उत्पन्न होता है। भीतर और बाहरके हानिकारक कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। इसके फलस्वरूप रूप, तेज, बल, शौच, आयु, आरोग्य, लोभहीनता, दुःस्वप्ननाश, तप, मेधा—इन दस गुणोंका लाभ होता है। स्नानको हिंदुओंने सर्वाधिक महत्त्व दिया है। यह बाह्य शुद्धिका साधन है। हमारे यहाँ गङ्गाजी, यमुनाजी, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिन्धु, कावेरी इत्यादिमें स्नान करना धर्मका अङ्ग है। स्नान करते हुए हिंदू भक्त इन सब नदियोंका स्मरण करता है। ये नदियाँ भारतके चारों कोनोंपर हैं। इस तरह भारतकी अखण्डता और भावात्मक एकताको भी कायम रखनेकी कोशिश की गयी है। इन नदियोंके जलमें रासायनिक गुण भरे पड़े हैं, जिनसे स्वास्थ्य और दीर्घजीवन प्राप्त होता है, बाह्य और अन्तरकी शुद्धि होती है।

तीर्थ-स्थानका विज्ञान

भारतमें अनेक हिंदू तीर्थोंका निधान है। ये तीर्थ हिंदुस्थानके चारों किनारोंपर रक्खे गये हैं। कुछ तीर्थ पर्वतीय स्थानोंपर हैं। वहाँ प्रकृतिका बड़ा ही मनोरम और स्वास्थ्यप्रद वातावरण है। इन पर्वतोंमें लाभदायक ओषधियाँ और शुद्ध वायु है। सूर्यकी किरणोंसे यहाँ पवित्रता आती है। हमारे तीर्थ गङ्गा-यमुना आदि सरिताओंके तटपर हैं। गङ्गाजलमें अनेक रासायनिक तत्त्वोंका गुणकारी सम्मिश्रण

है । यह शरीर और स्वास्थ्यके लिये लाभदायक है । इन तीर्थोंपर सूर्य, चन्द्र और नक्षत्रोंकी गुणकारी किरणें भी रासायनिक प्रभाव डालती हैं । वृद्धावस्थामें तीर्थोंमें घूमने-फिरनेसे खूब टहलना होता है, शुद्ध वायु मिलती है और हलका व्यायाम भी हो जाता है । वृद्धका जीवन सौ वर्षोंका हो जाता है । उसे रहनेको आध्यात्मिक वातावरण मिलता है ।

तुलसीपत्रकी पवित्रता

तुलसीके वृक्षमें स्वास्थ्यरक्षा, बीमारियोंको दूर करने और विषैले कृमियोंके प्रभावको नष्ट करनेके रासायनिक गुण हैं । मलेरिया ज्वरमें यह दूषित कृमियोंको नष्ट करता है । आस-पासका वातावरण शुद्ध करता है । उसकी गन्धसे बीमारियाँ पास नहीं आतीं । मरणकी निकटतामें तुलसी-मिश्रित गङ्गाजल पिलाया जाता है । इससे मृत्यु-बाधा दूर होनेका विश्वास है । आजके वैज्ञानिक तुलसीके रासायनिक गुणोंपर पर्याप्त खोज कर रहे हैं । डाक्टरोंका निष्कर्ष है कि इस अमृतोपम पौधेके उपयोगसे कफ हटता है, मूत्रावरोध दूर होता है, पाचन-क्रिया दुरुस्त होती है, रक्तशुद्धि होती है । श्वास, निमोनिया, शीत-ज्वर, मूत्र-विकारमें तुलसी अतीव गुणकारी है । इन गुणोंसे जनताको लाभान्वित करनेके लिये चतुर हिंदुओंने इस पौधेको धर्ममें स्थान दिया है ।

श्रीगङ्गाजलकी वैज्ञानिकता

हिंदूजातिने विशेष पर्वोंपर गङ्गा-स्नानके लिये जाना आत्मिक शुद्धिका साधन माना है, पर आयुर्वेद और वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे

प्रतीत हुआ है कि यह स्वच्छ और निर्मल जल, जो ऊँचे-ऊँचे पर्वतोंसे आता है, शरीर-पोषणके लिये बड़ा उपयोगी है। गङ्गा-जलमें शारीरिक शक्ति-वृद्धिकी अद्भुत शक्ति है, रोगियोंके लिये टानिक-जैसा लाभदायक है। यह बर्फीला जल पीने और स्नान करनेसे शरीरमें ताकत आती है, अजीर्ण रोग, ज्वर, संग्रहणी, तपेदिक, दमा इत्यादि रोग नष्ट हो जाते हैं। मस्तकके समस्त रोगों तथा चर्मरोगोंका नाश होता है। गङ्गाजल चाहे कितने ही दिनों रक्खा रहे, दूषित नहीं होता, उसमें कीड़े नहीं पड़ते।

हिंदूधर्म एक उपयोगी धर्म है

ऊपर कुछ मान्यताएँ दिखायी गयी हैं, जिनसे हिंदूधर्मकी वैज्ञानिकता स्पष्ट हो जाती है। एक नहीं, अनेकों ऐसी मान्यताएँ हैं, जो विशुद्ध वैज्ञानिकतापर आधारित हैं तथा जिनसे आध्यात्मिक लाभके अलावा अनेक स्वास्थ्य, यौवन और सांसारिक प्रत्यक्ष लाभ हैं। प्रातःसे सायंतकके निश्चित वैज्ञानिक आचार हैं, जिनके पालन करनेमें लाभ-ही-लाभ है। आहारशुद्धि, मौन-विज्ञान, बाजारू अन्न खानेका निषेध, उपवास एवं एकादशी-व्रत, विशेष तिथियोंमें उपवास, गायका दूध पीनेसे लाभ, घृतदीपक-विज्ञान, शयनके समय दिशाका विचार, परलोक-वाद, अस्पृश्यता-विज्ञान आदि हमारे समग्र विश्वास और मान्यताएँ विशुद्ध वैज्ञानिकतापर आधारित हैं। हमें चाहिये कि पूरे विश्वास और उत्साहके साथ इनका लाभ देखते हुए पालन करें। इनके पालनसे धार्मिक लाभ तो होगा ही, प्रत्यक्ष स्वास्थ्य और सांसारिक लाभ भी अनुभव करेंगे।

आपके हाथों माता लक्ष्मीका अपमान नहीं होना चाहिये

हिंदू-तत्त्वज्ञानी अपनी प्रतीक-पद्धतिके लिये प्रसिद्ध हैं। उन्होंने देवी-देवताओंके रूपमें ऐसे प्रतीक बनाये हैं, जिनसे जन-साधारणको मौलिक विचार और शुभ भावनाएँ सदा ही मिलती रहती हैं। हमारी तीनों देवियाँ सरस्वती, दुर्गा और लक्ष्मी हमारे तीन प्रतीक हैं। खेद है कि हम इन प्रतीकोंका अर्थ भूलते जा रहे हैं। सरस्वती ज्ञान, दुर्गा शक्ति और लक्ष्मी धनकी शक्तिकी प्रतीक हैं।

धनमें पवित्रताका समावेश

देवी लक्ष्मी धनकी शक्तिकी प्रतीक हैं। भारतीय संस्कृतिके अनुसार और हिंदूधर्मके दृष्टिकोणसे लक्ष्मी देवी समाजकी आर्थिक शक्तिकी अधिष्ठात्री हैं। उनकी कृपासे आर्थिक सम्पन्नता प्राप्त होती है।

हिंदू बड़े दूरदर्शी होते हैं। जो बात उन्हें उपयोगी प्रतीत होती है, उसे वे धर्मका अङ्ग बनाकर उसमें पवित्रता, शुचिता, देवत्व, सदुपयोग, श्रेष्ठता और संयमके दिव्यगुणोंका समावेश कर देते हैं।

धनको देवीका स्वरूप देनेका अर्थ है उसमें पवित्रताका समावेश करना। हम धनको समाजके लिये एक पवित्र शक्ति मानते

हैं। समाजको सत्पथपर चलाते रहनेके, पिछड़ोंको आगे बढ़ानेके तथा दैवी कार्योंकी पूर्तिके लिये धनका उपयोग होता रहे, इसलिये उसे देवीका रूप दिया गया है। लक्ष्मीजीकी पूजाका सच्चा अर्थ यह है कि धनका उपयोग हमारे समाज, व्यक्ति तथा देशके शुभ कार्योंमें हो। समाजकी भलाईमें ही वह व्यय हो। तभी धनकी सार्थकता है। यही लक्ष्मी-पूजा है।

लक्ष्मीजी भारतीय अर्थ-व्यवस्थाकी प्रतीक हैं। पैसेके उपयोगमें जो सावधानियाँ बरतनी चाहिये, वे लक्ष्मीजीकी पूजामें निहित हैं। जो लोग रुपयेका दुरुपयोग करते हैं, वे माता लक्ष्मीजीका प्रत्यक्ष अपमान करते हैं।

धनका सदुपयोग करें

धनको लक्ष्मीजीका रूप स्वीकार करनेपर प्रत्येक सद्गृहस्थ हिंदूको उसका सदुपयोग करना चाहिये। अर्थकी शक्तिका आजके युगमें हम पग-पगपर अनुभव करते हैं। उसका सदुपयोग कर हम जनता-जनार्दनकी सर्वाधिक सेवा कर सकते हैं। भारतीय शास्त्रकारोंके कुछ आधारभूत जीवन-सिद्धान्त स्मरण रखने चाहिये। धन सत्य, न्याय और पर-हितका ध्यान रखते हुए पवित्र साधनोंसे कमाया जाय और उसका जनताके हितमें व्यय किया जाय—

उतो रयिः पृणतो नोपदस्यति।

(ऋग्वेद १० । ११७ । १)

अर्थात् दान देनेवाले सत्पुरुषकी सम्पदा घटती नहीं, सदा उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है।

सत्कार्योंमें लगाया धन बैंकमें जमा पूँजीके समान सुरक्षित है। धर्मशालाएँ, पुस्तकालय, प्याऊ, वृक्ष लगाना, स्कूल बनवाना, धर्मार्थ चिकित्सालयोंकी स्थापना, जानवरोंके लिये जलका प्रबन्ध करना, ग्रामोंकी सफाईका प्रबन्ध, कुशाग्रबुद्धि छात्रोंकी शिक्षाका उचित प्रबन्ध करना—ये सब माता लक्ष्मीकी आराधना और सेवाके अचूक उपाय हैं। ये सत्कार्य समाजको ऊँचा उठानेवाले हैं। अपनी रुचि और आर्थिक सुविधाके अनुसार दान और सेवाका रूप स्थिर करना चाहिये।

जो धन पिछड़े हुए व्यक्तियोंके उत्थानमें लगता है, वह पूजाके समान फलदायी है। धन संग्रहके लिये नहीं, समाजकी सेवामें व्यय होना चाहिये। कहा गया है—

अदित्सन्तं दापयतु प्रजानन्।

(अथर्ववेद ३।२०।८)

अर्थात् कंजूसोंको भी निरन्तर दान देनेकी ही प्रेरणा देते रहिये।

स्वयं सत्कार्य करना ही यथेष्ट नहीं है। वह तो आपका कर्तव्य है ही; आपके आसपास जितने मित्र हैं, उनको भी धनको पवित्र कार्योंमें लगानेकी प्रेरणा देनी चाहिये। उन अल्पबुद्धि कंजूसोंको समझाइये कि यह धन आपका नहीं, बल्कि सारे समाजका है। धन व्यर्थ ही जमा करते जानेका नहीं, सदुपयोग करनेका माध्यम है। उससे आप, आपकी संतान, आपका परिवार, आपका पड़ोस, प्रान्त, देश और समस्त देश लाभ उठा सकता है।

अभावग्रस्त और पीड़ितोंके सेवाकार्यमें उसका व्यय होना चाहिये

सुपात्र-कुपात्रका सदा ध्यान रखिये

किंतु सहायता सुपात्रकी ही होनी चाहिये। आपने यदि कुपात्रकी सहायता की तो वह समाजमें उत्पात कर सकता है। खूब परखकर अच्छी वृत्तियोंवालेकी सेवा करनी चाहिये। शास्त्रोंमें कहा है—

रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय।

(अथर्ववेद)

अर्थात् दानमें सदा विवेकसे काम लो और सत्पात्रोंको ही दान करो।

आप जब सहायता करने निकलें तो पात्र-कुपात्रका सावधानी-पूर्वक विवेक करें। धैर्यपूर्वक सोचें-विचारें। जो सद्वृत्तियोंवाले सुपात्र हैं, उन्नतिशील हैं, केवल उन्हींको दान दें। कुपात्रोंको दिया दान दाताको नरकमें ले जाता है।

न पापत्वाय रासीय।

(अथर्ववेद २० । ८२ । १)

अर्थात् कुपात्रोंको दान मत दीजिये। सर्पको दूध पिलानेकी भाँति कुपात्रतामें और भी वृद्धि न कीजिये।

दत्तान्मा यूपम्।

(अथर्ववेद ६ । १२३ । ४)

अर्थात् दान देनेकी दिव्य और उपयोगी परम्परा बंद नहीं होनी चाहिये। माता लक्ष्मी कहती हैं कि आपके पास ज्ञान, बल,

योग्यता अथवा धन जो कुछ भी है समाज और पीड़ित व्यक्तियोंको देनेके लिये है, उसे दूसरोंके हितमें सम्पूर्ण जीवन लगाते रहिये ।

ध्यानसे देखिये कि किस सद्वृत्तियोंवाले व्यक्तिको आपकी आर्थिक सहायताकी आवश्यकता है । अपने नामके विज्ञापनकी परवा मत कीजिये । सर्वश्रेष्ठ आर्थिक सहायता वह है, जिसमें दाताका नाम नहीं बताया जाता ।

यह धन सारे समाजका है

कस्यस्विद्धनम् । (यजुर्वेद ४० । १)

अर्थात् याद रखिये, आपके पास जो धन है, उसपर केवल आपका ही अधिकार नहीं है, वह धन तो सम्पूर्ण राष्ट्रका है और सामूहिक हितमें ही व्यय होना चाहिये ।

माता लक्ष्मीका संदेश है कि धनपर कब्जा करके मत बैठो । परिवार, समाज और राष्ट्रके हितके लिये उसका सदुपयोग करते रहो ।

व्यापारमें धार्मिक दृष्टिकोण ही रखिये

न स्तेय मद्मि ।

(अथर्ववेद १४ । १ । ५७)

अर्थात् चोरीका धन कभी भी कार्यमें मत लीजिये । जो न्यायोचित नहीं है, जिसमें ईमानदारी और श्रम नहीं लगा है, उसे त्याग दीजिये ।

इमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै ।

(अथर्ववेद १८ । २ । ३८)

अर्थात् माता लक्ष्मीका संदेश है कि आप वस्तुस्थिति एवं नाप-तौलमें गड़बड़ी न कीजिये। अपने व्यापारमें नाप-तौल पूरा दिया कीजिये। व्यापारमें किसी भी प्रकारकी बेईमानी हो, वह व्यापारको जड़मूलसे नष्ट कर देती है।

पापका व्यापार थोड़े दिन तो चमकता दीखता है, पर अन्ततः वह गाँठकी पूँजी भी नष्ट कर देता है। माता लक्ष्मी कहती हैं—

प्र पतेतः पापि लक्ष्मि।

(अथर्ववेद ७।११५।१)

अर्थात् पापकी कमाई छोड़ दीजिये। कठोर श्रम, अध्यवसाय और पुण्यभाव, सेवाभाव रखकर कमाया धन ही मनुष्यके पास ठहरता है।

सचाई तथा पसीनेकी पुण्य कमाईसे ही मनुष्य सुखी और मानसिक दृष्टिसे तृप्त बनता है।

धनका उपयोग सद्गुणोंकी वृद्धिके लिये किया जाय

सद्गुण और लक्ष्मी—इनका परस्पर योग है। मनमें ईर्ष्या, द्रोह, द्वेष, लोभके भाव रखनेवालेका व्यापार नष्ट हो जाता है।

भारतीय ऋषियोंने धनकी ईमानदारी, उचित साधनों और सेवाभावको बहुत महत्त्व दिया है। कहा है—

रमन्तां पुण्या लक्ष्मीः।

(अथर्ववेद ७।११५।४)

अर्थात् यह आजमाया हुआ नुस्खा है कि ईमानदारीसे

कमाया हुआ धन ही मनुष्यके पास ठहरकर उसे स्थायी लाभ पहुँचाता है। बेईमानीकी कमाईसे कोई फूलता-फलता नहीं है।

देवो वार्यं बनते।

अर्थात् धन उन्हींके पास ठहरता है, जो सद्गुणी नागरिक हैं, अन्यथा दूसरी पीढ़ीमें दुराचारी संतानके द्वारा वह नष्ट कर दिया जाता है। अपनी संतानको सद्गुणी न बनाया तो विपुल सम्पदा भी स्वल्प कालमें नष्ट हो जाती है।

भारतीय मनीषियोंने सदा उत्तम और पवित्र साधनोंसे कमाये हुए धनको ही मान्यता दी है और धर्मके अन्तर्गत उसे स्थान दिया है। व्यापारमें धार्मिक दृष्टि रखनेसे गुप्त दैवी सहायताका विधान रहा है। अनैतिक साधनोंसे कमाये हुए धनसे कभी स्थायी लाभ नहीं दिखायी दिया है। आनेवाली पीढ़ीने उसे समाप्त कर दिया है। इसलिये धनका उपयोग सद्गुणोंके विकासमें ही होना चाहिये।

साधनोंकी पवित्रताका सदा ध्यान रखिये

माता लक्ष्मी हमें धनकी पवित्रता, साधनोंका औचित्य तथा अन्तःकरणकी शुद्धिका संदेश देती हैं। मनुष्य धनके पीछे अन्धा न हो जाय; छल, कपट, दम्भ, द्वेष, पाखण्ड, झूठ, चोरी, अन्याय आदि अनैतिक उपायोंका प्रयोग न करे, असुरताकी गंदगीमें न फँस जाय,—यही दृष्टिकोण सदा रहना चाहिये।

आज धनकी अपवित्रता, लालच, झूठ-फरेबके कारण भाई-भाईका व्यवहार छलपूर्ण है, मालिक-नौकरमें नहीं पटती, ग्राहक

और दूकानदारके सम्बन्ध अच्छे नहीं हैं। ये सब आर्थिक कारणोंकी स्वार्थमयी नीतिके कारण हैं; अतः ये सम्बन्ध मधुर बनने चाहिये।

अर्थ भी धनका महत्त्वपूर्ण अङ्ग है। परमात्माकी एक शक्ति है। मानवताकी सेवा और सार्थकताका साधन है। इस सम्पदाका उपयोग मनुष्यकी महानताके विकासके लिये होना चाहिये।

ऋणसे मुक्तिका संदेश

जहाँ एक ओर पापकी कमाईसे सावधान किया गया है, वहाँ हमें ऋणग्रस्त होनेसे भी सचेत किया गया है। हम जितना कुछ धर्मके साधनोंसे कमायें, उसीमें अपना निर्वाह करें। व्यर्थके दिखावे, फैशनपरस्ती, अपव्यय, आडम्बर, नशाबाजी, सिनेमा, सजावट आदि ऋण होनेके समस्त कार्योंसे बचते रहें।

हम अपनी जिह्वापर लगाम रक्खें। नियम और संयमसे जीवन-निर्वाह करें। शास्त्रकारोंकी सलाह है—

अनृणो भवामि। (अथर्ववेद ६। ११७। १)

अर्थात् अपनी आमदनीमेंसे ही खर्च चलाओ। किसीके ऋणी मत रहो। किसी भी अवस्थामें अपनी आर्थिक स्थितिसे बाहर खर्च मत करो।

अनृणाः स्याम। (अथर्ववेद ६। ११७। ३)

अर्थात् मनुष्यो! संसारमें प्रसन्न और यशस्वी रहनेके लिये कर्जदार मत बनो। ऐसे काम मत करो जिससे ऋण लेना पड़े।

सर्वान् पथो अनृणा आ क्षियेम।

(अथर्ववेद ६। ११७। ३)

अर्थात् जो ऋणमुक्त है, उसीकी उन्नति होती है। ऋणग्रस्त व्यक्ति दिन-दिन घुलता जाता है।

धनका मद आसुरी माया है!

मूर्ख, अल्पज्ञ और अभिमानी पापियोंके हाथमें इकट्ठा हो जानेसे धन पतनका कारण बन जाता है। उधरसे सावधान रहना चाहिये।

लक्ष्मीजीको कुछ दिनोंके लिये असुरोंने अपने अधिकारमें कर लिया था। इसलिये धनपर आसुरी छाप है। दुष्ट और अपात्रोंके हाथोंमें इकट्ठा होकर धन आसुरी कार्योंमें लगता है और विकृत हो जाता है। विलासी, काम-लोलुप, विषयासक्त, अविवेकी पुरुष धनके द्वारा अपवित्र, गंदे और अधार्मिक कार्य करते हैं, जो सर्वथा त्याज्य हैं। लक्ष्मीजी इन कार्योंसे अप्रसन्न होती हैं।

मूर्ख कुकर्मी व्यक्तियोंके पास आकर इसका दुरुपयोग कैसे किया जाता है, इसका उल्लेख 'कादम्बरी'में इस प्रकार किया गया है। इनसे सदा सावधान रहना और बचना चाहिये—

यथा यथा इयं दीप्यते तथा तथा दीपशिखेव कज्जलमलिनमेव कर्म केवलमुद्वमति। अनया कथमपि दैववशेन परिगृहीता विक्लवा भवन्ति राजानः, सर्वाविनयाधिष्ठानतां च गच्छन्ति। तेषां दाक्षिण्यं प्रक्षाल्यते, हृदयं मलिनीभवति, सत्यवादिता अपह्रियते, गुणाश्चोत्सार्यन्ते। केचित्सम्पद्भिः प्रलोभ्यमाना रागावेशेन बाध्यमाना विह्वलतामुपयान्ति। आसन्नमृत्यव इव बन्धुजनमपि नाभिजानन्ति।

अर्थात् 'कुसंस्कारी पापी और विलासी पुरुषोंके पास ज्यों-ज्यों धन बढ़ता है, त्यों-त्यों वह अधार्मिक, गंदे और दूषित कार्योंमें लगता है। वह कुविचारोंको उत्पन्न करता है जैसे दीपककी लौ केवल काली-काली कालिख ही उगलती है।'

'इसके किसी प्रकार अभाग्यवश पकड़ लिये जानेपर (अर्थात् लक्ष्मीजीके बुरे प्रभाव पड़ जानेपर) राजातक बेसुध हो जाते हैं और मूर्खताओं तथा कुकर्मोंके निवासस्थान बन जाते हैं। उनकी उदारता धुल जाती है, हृदय मलिन हो जाता है, सत्यवादिता दूर हो जाती है और सद्गुण भाग जाते हैं।'

'कुछ लोग रुपयेके लालचमें पड़कर विकारों (वासनाओं, कुविचारों, हिंसादि क्रूर कर्मों, व्यभिचारकी दूषित योजनाओं) के आक्रमणसे विवश होकर बेसुध हो जाते हैं। वे मरणासन्न लोगोंके समान अपने मित्रोंको नहीं पहचानते।'

इस प्रकार धनकी त्रुटियोंसे सदा सतर्क रहना चाहिये। आगे कहा गया है—

मिथ्यामाहात्म्यगर्वनिर्भराश्च न प्रणमन्ति देवताभ्यः, नाभिवादयन्त्यभिवादनार्हान्, नाभ्युत्तिष्ठन्ति गुरून्। जरावैक्लव्यप्रलपितमिति पश्यन्ति वृद्धजनोपदेशम्। आत्मप्रज्ञापरिभव इत्यसूयन्ति सचिवोपदेशाय, कुप्यन्ति हितवादिने। सर्वथा तमभिनन्दन्ति तमालपन्ति, तं पार्श्वे कुर्वन्ति, तस्मै ददति, तस्य वचनं शृण्वन्ति, तं बहु मन्यन्ते योऽहर्निशमुपरचिताञ्जलिरधिदैवतमिव विगतान्यकर्तव्यः स्तौति यो वा माहात्म्यमुद्भावयति।

अर्थात् 'कुसंस्कारी और कुविचारी धनीलोग झूठे बड़प्पनके घमंडमें भरकर देवताओंको नमस्कार नहीं करते ।

जिन्हें प्रणाम करना चाहिये, उन्हें प्रणाम नहीं करते और बड़ोंको देखकर उनके सम्मानके लिये नहीं उठते ।

विद्वान् वृद्धोंके उपदेशको समझते हैं कि बुढ़ापेकी निर्बलताके कारण बक-झक कर रहे हैं ।

मन्त्रीके उपदेशसे अप्रसन्न होते हैं और समझते हैं कि यह अपनी बुद्धिकी हार है ।

वे धनके मदमें इतने चूर रहते हैं कि भलाईकी बात कहनेवालेपर भी क्रोध करते हैं ।

जो रात-दिन हाथ जोड़े रहते और झूठी प्रशंसा करते हैं और अपने कर्तव्य छोड़कर उनकी इष्टदेवताके समान स्तुति करते हैं या जो उनके बड़प्पनकी घोषणा करते हैं, वे उन्हींकी बात सुनते हैं, उन्हींका आदर करते हैं और उन्हींको अपने साथ रखते हैं ।'

उपर्युक्त सभी दुर्गुणोंमें लिप्त रहनेसे माता लक्ष्मीका अपमान होता है । हमें चाहिये कि हम इन दुर्गुणोंसे सदा-सर्वदा सावधान रहें । हमारे धनसे कोई ऐसा दुष्कर्म नहीं होना चाहिये, जिससे माता लक्ष्मी अपमानित हों ।

लक्ष्मीजी इन स्थानोंमें निवास करती हैं !

का त्वं केन च कार्येण सम्प्राप्ता चारुहासिनि ।
कुतश्चागम्यते सुभ्रु गन्तव्यं क्व च ते शुभे ॥

इन्द्रने लक्ष्मीसे पूछा कि 'हे सुभ्रु ! तुम कौन हो ? और किस कार्यसे और कहाँसे आती हो ? और कहाँ जाओगी ?'

साहं वै पङ्कजे जाता सूर्यरश्मिविबोधिते।
भूत्यर्थं सर्वभूतानां पद्मा श्रीः पद्ममालिनी॥
अहं लक्ष्मीरहं भूतिः श्रीश्चाहं बलसूदन।
अहं श्रद्धा च मेधा च सन्नतिर्विजितिः स्थितिः॥
अहं धृतिरहं सिद्धिरहं तद्भूतिरेव च।
अहं स्वाहा स्वधा चैव सन्मतिर्नियतिः स्मृतिः॥

'सूर्यके तेजसे विकसित कमलमें सब प्राणियोंके हितार्थ मैं प्रकट हुई और मुझे पद्मा, पद्ममालिनी, लक्ष्मी, भूति, श्री भी कहते हैं। मैं ही श्रद्धा, मेधा, विनय, मर्यादा, धैर्य, सिद्धि, (अणिमादि) स्वाहा, स्वधा और स्मृति भी हूँ।'

राज्ञां विजयमानानां सेनाग्रेषु ध्वजेषु च।
निवासे धर्मशीलानां विषयेषु परेषु च॥
जितकाशिनि शूरे च संग्रामेष्वनिवर्त्तिनि।
निवसामि मनुष्येन्द्रे सदैव बलसूदन॥
धर्मनित्ये महाबुद्धौ ब्रह्मण्ये सत्यवादिनि।
प्रश्रिते दानशीले च सदैव निवसाम्यहम्॥

'विजय प्राप्त करते हुए राजाओंके ध्वजोंपर और सेनाओंके अग्रभागमें तथा धर्मशील पुरुषोंके स्थानमें, देशों तथा नगरोंमें और संग्रामसे न हटनेवाले विजयशील शूरोंमें तथा सदा धर्मात्मा, महाबुद्धि, ब्रह्मण्य और सत्यवादी पुरुषोंमें तथा नम्र और दानशील पुरुषोंमें मैं सदा ही रहा करती हूँ।'

धर्माचरणद्वारा उपार्जित धन ही समृद्धि देता है !

आज हम महँगाईका स्वर ऊँचा कर रहे हैं। प्रत्येक विभागमें आय और नौकरीका वेतन बढ़ानेकी जोरदार माँगें प्रस्तुत की जा रही हैं। हम जमानेको दोष देते हैं और सरकारको महँगाईका अपराधी ठहराते हैं। हम अपनी आर्थिक मुसीबतका कारण बाहरी मानते हैं, पर हमें देखना चाहिये कि बहुत-से मामलोंमें हम स्वयं भी आर्थिक कष्टोंके जिम्मेदार हैं।

सिनेमावाले धड़ाधड़ कमा रहे हैं; बाजारमें पान-सिगरेटकी ढेर-की-ढेर दुकानें खुलती और अच्छी आमदनी दे रही हैं; अंग्रेजी

शराबकी दुकानें पर्याप्त पनप रही हैं; चाट-पकौड़ी खूब बिकती है। फैशनेबिल वस्तुओंकी दुकानोंकी बिक्री तेजीसे चढ़ी है। सौन्दर्य-प्रसाधनोंकी बिक्री अच्छी है। ये तथा इसी प्रकारके विलास-की वस्तुएँ बेचनेवाले मालामाल हो रहे हैं।

फिर काहेकी महँगाई ! यदि महँगाई होती तो कौन उपर्युक्त वस्तुओंको खरीदता ?

हम 'महँगाई' कहकर केवल अपनी शौकीनीपर बढ़े हुए खर्चोंकी शिकायत करते हैं। बाहरी टीपटाप और चमक-दमक कायम रखनेमें कठिनता पाते हैं। दिखावा करते नहीं थकते। फिर बेईमानी और मुफ्तकी कमाईसे ये बढ़े हुए अनुचित खर्चे पूर्ण करना चाहते हैं। सर्वत्र हमी दोषी हैं। हमारी कृत्रिम आवश्यकताएँ बहुत बढ़ गयी हैं।

वेदोंमें आर्थिक समस्याओंका हल

वेदोंमें शास्त्रमन्थनका नवनीत पाया जाता है। हमारे मनीषियोंने थोड़ेसे शब्दोंमें हमारी समस्त आर्थिक कठिनाइयोंका हल उपस्थित कर दिया है। आजके संदर्भमें ये विचार हमारे बड़े सहायक हो सकते हैं। देखिये वेदोंमें क्या लिखा है—

अग्निना रयिमश्नवत् पोषमेव दिवेदिवे। यशसं वीरवत्तमम्॥
(ऋग्वेद १। १। ३)

अर्थात् सच्ची और स्थायी समृद्धिके लिये यह जरूरी है कि हम ईश्वरके बनाये नियमोंसे ही ईमानदारीके श्रमसे अपनी जीविका उपार्जित करें। बेईमानीका धन सदा हमसे दूर ही रहे। अनुचित

रीतियों (जैसे रिश्वत, धोखा, बेईमानी, ठगी, चोरी, काला बाजार, मिलावट, झूठ-फरेब या और अनैतिक रीतियों) से कमाया धन हम कदापि अपने पास न रक्खें। सदा अमीर बने रहनेके लिये धर्म (नैतिकउपायों) से ही जीविका कमायें और जो कुछ मिले उसे धर्मसे (पूर्ण संयम और मितव्ययतापूर्वक) खर्च करें।

प्राता रत्नं प्रातारित्वा दधाति तं चिकित्वान् प्रतिगृह्यानि धत्ते। तेन प्रजां वर्धयमान आयू रायस्पोषण सचते सुवीरः॥

(ऋग्वेद १ । १२५ । १)

अर्थात् (यह अनुभवसिद्ध बात है कि) 'जो निरालस्यपूर्वक धर्माचरणद्वारा धन उपार्जित करता है, उसकी रक्षा और उपभोग करता है तथा दूसरोंके हितमें भी उसी प्रकार लगाता है, वह धर्माचारी व्यक्ति इस संसारमें सदैव सुखी रहता है।'

ईमानदारीके धनसे मनमें पूर्ण संतोष और शान्ति रहती है। किसीको यह भय नहीं रहता कि उनकी शिकायत हो जायगी अथवा मुकदमा इत्यादि चल जायगा। प्रत्येक पैसा, जिसमें खरी मेहनत लगी है, तृप्ति देता है। अनैतिक उपायोंवाला धन सदा मनपर तनाव रखता है।

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम॥

(ऋग्वेद १ । १८९ । १)

अर्थात् हम (आधुनिक सभ्य जीवनमें घुसे हुए) कुटिल

कुटेवोंको त्यागकर सदैव अच्छे मार्गमें चलकर धन-धान्यकी प्राप्ति करें।

याद रखिये—

ये त्वा देवोस्रिकं मन्यमानाः पापा भद्रमुपजीवन्ति पज्राः।
न दूढ्ये अनु ददासि वामं बृहस्पते चयस इत्पियारुम् ॥
(ऋग्वेद १।१९०।५)

अर्थात् जो मनुष्य ईश्वर-आराधना और शुभ कर्म नहीं करते, वे स्वभावतः बुद्धिहीन होते हैं। इसीलिये वे स्वतः ही धनसे वञ्चित बने रहते हैं।

पर ऋणा सावीरध मत् कृतानि,
माहं राजन्नन्यकृतेन भोजम्।
अव्युष्टा इन्नु भूयसीरुषास,
आ नो जीवान् वरुण तासु शाधि ॥
(ऋग्वेद २।२८।९)

'हे परमात्मन्! मुझे शक्ति दो, ताकि मैं पितृ-ऋण तथा ऋषि-ऋण चुका सकूँ। (संयोगसे विषम परिस्थितिवश यदि कुछ ऋण ले लूँ, उसको भी अपने श्रम और संयमसे जल्दी-से-जल्दी चुका दूँ।) हे ईश्वर! मैं औरकी कमाई कभी न खाऊँ। मैं अपनी ही ईमानदारी और सच्चे मेहनतकी जीविकापर ही सदा-सर्वदा जीवित रहूँ। मैं दूसरेकी कमाईपर कभी निर्वाह न करूँ; क्योंकि यह एक पाप है। असत्य व्यवहार है। अनैतिकता है। खुद अपनी ही धर्मपूर्वक अर्जित कमाईपर जिंदा रहूँ। मेरा जीवन धर्मसे सदा भली प्रकार अनुशासित रहे।'

शतहस्त समाहर सहस्रहस्त सं किर । कृतस्य कार्यस्य चेह स्फातिं समावह ॥

(अथर्ववेद ३ । २४ । ५)

अर्थात् मनुष्य विद्या, बुद्धि, धर्म, गुण आदि सद्वृत्तियों और भौतिक साधनोंके द्वारा ही उत्साहपूर्वक अपनी जीविका कमायें। (अनैतिक और गर्हित साधनों, झूठ-फरेब और बेईमानीसे हरगिज एक पैसा भी न लें) फिर इस पवित्र धनको समाजके लोककल्याणकारी कार्योंमें (जैसे धर्मशालाएँ, कुएँ, हरे वृक्ष लगवाने, गरीबोंको दान देनेमें, पिछड़े हुओंको उठाने, सत्साहित्य खरीदने, चिकित्सालयोंमें गरीबोंके लिये दवाई दिलाने, अंधे, कोढ़ी, लँगड़े, लूले, अपाहिजों तथा पीड़ितोंके सहायतार्थ) खर्च करें। धन वही धन्य है, जो विलासमें नहीं, लोक-उपकारी कामोंमें व्यय होता है।

एक स्थानपर कहा गया है—

यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय । स्तोतार मिद् दिधिषेय रदावसो न पापत्वाय रासीय ।

(ऋग्वेद ७ । ३२ । १८)

अर्थात् उचित रीतिसे कमाया हुआ धन सत्कार्योंमें लगनेसे मनुष्यको इस जीवनमें सुख और संतोष, आन्तरिक शान्ति और संतुलन देता है तथा मरनेपर सद्गति प्रदान करता है। जो धनको पापके कामोंमें (जैसे विलास, फैशनपरस्ती, शराब, गाँजा, सिगरेट, व्यभिचार, थोथे टीपटाप, आडम्बर, कुटिल कुटेवों, स्वार्थ, व्यसन

इत्यादिमें) लगाता है, वह माता लक्ष्मीका अपमान करता है। उसका नाश होता है।

हमारे यहाँ अनैतिक साधनोंको सदा हेय माना गया है और उनकी स्पष्ट निन्दा की गयी है। केवल धनकी अधिकतासे कोई सम्माननीय नहीं समझा जाता। अनैतिक धन तो चोरों, डकैतों, लुटेरों, हत्यारों, वेश्याओं इत्यादिके पास भी बहुतायतसे होता है। रिश्वत और सरकारी गबनसे लोग मालामाल हो गये हैं। सैकड़ोंपर धोखादेही और गबनके मुकदमे चले हैं। ऐसा अनैतिक धन व्यर्थ ही नहीं, अनर्थकारी है। हिंदू धर्मकी दृष्टिसे हेय और त्याज्य है। हिंदू-विचारकोंका तो यह मत है—

न दुष्टुती मर्त्यो विन्दते वसु न स्रेधन्तं रयिर्नशत्।
सुशक्तिरिन्मघवन् तुभ्य मावते देष्णं यत् पार्ये दिवि॥
(ऋग्वेद ७। ३२। २१)

अर्थात् धन, पद, श्री और समृद्धिकी प्राप्ति न्यायपूर्ण आचरणसे होती है। अधर्मसे कमाया धन कमानेवालेकी इज्जत, सम्मान, यश और प्रतिष्ठाके लिये विनाशकारी होता है।

मोषु वरुण मृण्मयं गृहं राजन्नहं गमम्। मृळा सुक्षम मृळय॥
(ऋग्वेद ७। ८९। १)

मनुष्यको चाहिये कि अथक सच्चे परिश्रम और निरन्तर पुरुषार्थद्वारा ही अपनी आर्थिक स्थितिको सुदृढ़ बनायें ताकि सारा समाज समुन्नत हो, ईमानदारी और परिश्रमकी ओर अग्रसर हो।

आपके हाथों दानकी परम्परा चलती रहे !

भारतीय संस्कृति परमार्थ और परोपकारको प्रचुर महत्त्व देती है । जब अपनी सात्त्विक आवश्यकताओंकी पूर्ति हो जाय, तो लोक-कल्याणके लिये दूसरोंकी उन्नतिके लिये दान देना चाहिये । प्राचीन कालमें ऐसे निःस्वार्थी लोक-हित-निरत ऋषि, मुनि, ब्राह्मण, पुरोहित, योगी, संन्यासी होते थे, जो अपना समस्त जीवन लोक-हितके लिये दे डालते थे । सदा दूसरोंकी सेवा-सहायता करते रहते थे । कुछ विद्यादान, पठन-पाठनमें ही आयु व्यतीत करते थे । उपदेश-द्वारा जनताकी शिक्षा, स्वास्थ्य, उद्योग, सहयोग, सुख, सुविधा, विवेक, धर्मपरायणता आदि सद्गुणोंको बढ़ानेका प्रयत्न किया करते थे । मानवीय स्वभावमें जो सत् तत्त्व है, उसीकी वृद्धिमें वे अपने अधिकांश दिन व्यतीत करते थे । ये ज्ञानी उदार महात्मा अपने-आपमें जीवित-कल्याणकी संस्थाएँ थे, यज्ञरूप थे । जब ये जनताकी इतनी सेवा करते थे तो जनता भी अपना कर्तव्य समझकर इनके भोजन, निवास, वस्त्र, संतानके पालन-पोषणका प्रबन्ध करती थी । जैसे लोक-हितकारी संस्थाएँ आज भी सार्वजनिक चंदेसे चलायी जाती हैं, उसी प्रकार ये ऋषि, मुनि, ब्राह्मण भी दान, पुण्य, भिक्षा आदिद्वारा निर्वाह करते थे । प्राचीन भारतीय ऋषि-मुनियोंका

व्यक्तित्व इतना उच्च, पवित्र और प्रवृत्ति इतनी सात्त्विक होती थी कि उनके सम्बन्धमें किसी प्रकारके संदेहकी कल्पनातक नहीं की जा सकती थी; क्योंकि उन्हें पैसा देकर जनता उसके सदुपयोगके विषयमें निश्चित रहती थी। हिसाब जाँचनेकी आवश्यकता तक न समझती थी। इस प्रकार हमारे पुरोहित, विद्यादान देनेवाले ब्राह्मण, मुनि, ऋषि दान-दक्षिणाद्वारा जनताकी सर्वतोमुखी उन्नतिका प्रबन्ध किया करते थे। दानद्वारा उनके जीवनकी आवश्यकताएँ पूरी करनेका विधान उचित था, जो परमार्थ और लोक-हित, जनताकी सेवा-सहायतामें इतना तन्मय हो जाय कि अपने व्यक्तिगत लाभकी बात सोच ही न सके, उसके भरण-पोषणकी चिन्ता जनताको करनी ही चाहिये।

इस प्रकार दान देनेकी परिपाटी चली। कालान्तरमें उस व्यक्तिको भी दान दिया जाने लगा जो अपंग, अंधा, लँगड़ा, लूला, अपाहिज या हर प्रकारसे लाचार हो, जीविका उपार्जन न कर सके। उन्हें भिक्षा ग्रहण करनी भी चाहिये; क्योंकि जीवन धारण करनेके लिये अन्य कोई साधन ही शेष नहीं रहता। इस प्रकार दो रूपोंमें दूसरोंको देनेकी प्रणाली प्रचलित रही है। १—मुनियों, ब्राह्मणों, पुरोहितों, आचार्यों, संन्यासियोंको दी जानेवाली आर्थिक सहायताका नाम रक्खा गया 'दान'। २—अपंग, लँगड़े, लूले कुछ भी कार्य न कर सकनेवाले व्यक्तियोंको दी जानेवाली सहायताको 'भिक्षा' कहा गया। दान और भिक्षा दोनोंका ही तात्पर्य दूसरेकी सहायता करना है। पुण्य, परोपकार, सत्कार्य, लोक-कल्याण, सुख-शान्तिकी वृद्धि,

सात्त्विकताका उन्नयन तथा समष्टिकी—जनताकी सेवाके लिये ही इन दोनोंका उपयोग होना चाहिये।

दूसरोंको देनेका क्या तात्पर्य है ? भारतीय दानपरम्परा और कुछ नहीं, उधार देनेकी एक वैज्ञानिक पद्धति है। जो कुछ हम दूसरोंको देते हैं, वह हमारी रक्षित पूँजीकी तरह जमा हो जाता है। अच्छा दान वह है जो अभावग्रस्तोंको दिया जाता है। बिना जरूरतमन्दको देना कुछ विशेष महत्त्व नहीं रखता। कुपात्रोंको धन देना व्यर्थ है। जिसका पेट भरा हुआ हो, उसे और भोजन कराया जाय तो वह बीमार पड़ेगा और अपने साथ दाताको भी अधोगतिके लिये घसीटेगा। भारतीय संस्कृतिके अनुसार दान देना बहुत ही उत्तम धर्म-कार्य है। जो अपनी रोटी दूसरोंको बाँटकर खाता है, उसको किसी बातकी कमी नहीं रहेगी। जो अपने पैसेको जोड़-जोड़कर जमीनमें गाड़ते हैं, उन पाषाण-हृदयोंको कैसे पता लगे कि दान देनेमें कितना आत्मसंतोष, कितनी मानसिक तृप्ति मिलती है ! आत्मा प्रफुल्ल हो जाती है। मृत्यु बड़ी बुरी लगती है, पर मौतसे बुरी बात यह है कि कोई व्यक्ति दूसरेको दुखी देखे और उसकी किसी प्रकार भी सहायता करनेमें अपने-आपको असमर्थ पावे। हिंदूशास्त्र एक स्वरसे कहते हैं कि मनुष्य-जीवनमें परोपकार ही सार है। हमें जितना भी सम्भव हो, सदैव परोपकारमें रत रहना चाहिये। किंतु यह दान अभिमान, दम्भ, कीर्तिके लिये नहीं, आत्मकल्याणके लिये ही होना चाहिये। मेरे कारण दूसरोंका भला हुआ है, यह सोचना उचित नहीं है। दान देनेसे स्वयं हमारी

ही भलाई होती है। हमें संयमका पाठ मिलता है। यदि आप दान न भी दें, तब भी संसारका काम तो चलता ही रहेगा। परमात्मा इतना विपुल भंडार लुटा रहे हैं कि हमारी छोटी-सी सहायताके बिना भी जनताका कार्य चल ही जायगा। आप यदि न देंगे, तो कोई भिखारी भूखा नहीं मर जायगा। किसी प्रकार उसके भोजनका प्रबन्ध हो ही जायगा; किंतु आपके हाथसे दूसरोंके उपकारको करनेका एक अवसर जाता रहेगा। आपकी उपकार-भावना कुण्ठित हो जायगी। दानसे जो मानसिक उन्नति होती, आत्माको जो शक्ति प्राप्त होती, वह दान लेनेवालेको नहीं, वरं देनेवालेको प्राप्त होती है। दूसरोंका उपकार करना मानो एक प्रकारसे अपना ही कल्याण करना है। किसीको थोड़ा-सा पैसा देकर भला हम उसका कितना भला कर सकते हैं। किंतु उसकी अपेक्षा हम अपना भला हजार गुना कर लेते हैं। हमारी उदारताका विकास हो जाता है। आनन्द-स्रोत खुल जाता है।

दान आत्माका दिव्य गुण है। दानशीलताकी सात्त्विक भावना जिस पुरुषके अन्तःकरणमें प्रवेश करती है, उसे उदार बना देती है। उसे प्रकाशका पुञ्ज बना देती है। दान रुपये-पैसे या रोटी-भोजन-कपड़ेका ही नहीं, श्रमका भी हो सकता है। सच्चा दानी लोक-उपकारको प्रमुखता देता है। वह दधीचिकी तरह अपनी हड्डियाँ लोक-उपकारके लिये दान दे देता है। व्यासजीकी तरह अपनी आयु सद्ग्रन्थोंकी रचनामें लगा देता है। द्रोणाचार्यकी तरह शस्त्र-विद्याका प्रचार करता है। पाणिनिकी तरह व्याकरण

बनाता है, बुद्धकी तरह प्रेम-धर्मका उपदेश देता है । इस प्रकार सच्चा दानी समय और देशकी आवश्यकताओंके अनुसार अपनी बुद्धि, योग्यता, कला, प्रतिभा-शक्तियोंका दान करता रहता है ।

यह तो दान देनेवालेके पक्षका विवेचन हुआ। अब लेनेवालेके पक्षको देखिये । भिक्षावृत्ति या दान लेना एक बड़ा उत्तरदायित्व है, जिसका भार उठानेका साहस बहुत कम व्यक्तियोंमें होता है । शास्त्रकारोंने भिक्षाकी उपमा अग्निसे दी है । जैसे अग्निका प्रयोग बड़ी सावधानीसे करना चाहिये अन्यथा वह बड़ी हानि और उत्पात कर सकती है; इसी प्रकार भिक्षा या दान लेनेसे पूर्व खूब सोच-समझ लेना चाहिये । जिससे आप कुछ भी दान लेते हैं, उसको अपने श्रम या बुद्धिद्वारा दुगुने रूपमें लौटानेको प्रस्तुत रहना चाहिये । अपनी आवश्यकताएँ बहुत ही कम रखनी चाहिये । दाताकी सेवा, सहायता, कठिनाइयाँ हल करनेका उद्योग करना चाहिये या सद्भावना और आशीर्वादके रूपमें बहुमूल्य उपदेश देते रहना चाहिये ।

भिक्षाके दो प्रयोजन हैं—एक तो यह कि दान देनेसे देनेवालेको त्यागका, परोपकारका—आत्म-संतोष प्राप्त होता है । दूसरा यह कि उन ऋषिकल्प ब्राह्मणोंको अपने अभिमान और अहंकारके परिमार्जन करते रहनेका अवसर प्राप्त होता है । प्राचीन कालमें लोक-सेवक, परोपकारी तथा महात्मा अहम्मन्यता उत्पन्न न होने देनेके लिये भिक्षुककी तुच्छ स्थिति ग्रहण करते थे । ऐसे भिक्षुकोंको दान देते हुए देनेवाले अपना मान अनुभव करते थे और लेनेवाले

निरभिमान बनते थे। उससे उन दोनोंके बीच सुदृढ़ सौहार्द बढ़ता था। भिक्षावृत्ति करनेवालेकी अपेक्षा देनेवालेको ही अधिक लाभ रहता था। इस परमार्थकी भावनासे ब्रह्मजीवी महात्माओंके लिये भिक्षाका विधान किया गया था। यथार्थमें यह भिक्षा उचित भी थी, शास्त्रसम्मत भी।

आजकल दान-वृत्तिसे अनुचित लाभ उठानेवाले अनेक अकर्मण्य भिखमंगे, ठग, दुष्ट व्यक्ति लोगोंको ठगते-फिरते हैं। वे स्वयं तो परिश्रम करना नहीं चाहते, मुफ्तका माल उड़ाना चाहते हैं। पिछले वर्ष भिखारियोंकी संख्या ५६ लाखके लगभग पहुँच गयी थी। इसमें कष्ट-पीड़ितोंकी संख्या तो अल्प है, अधिकतर तो वे ही व्यक्ति हैं, जो दूसरोंके श्रमका अनुचित लाभ उठाते हैं; धर्मके नामपर नाना प्रकारके आडम्बर, घृणित मायाचार और असत्य व्यवहार कर भिक्षावृत्ति करते हैं। इससे समाजमें विषैला, अनिष्टकारी वातावरण फैलता है। ऐसा करनेसे झूठ, पाखण्ड, ढोंग, नशेबाजी फैलती है। अतः हमारा यह कर्त्तव्य है कि धर्मके नामपर मुफ्तका माल उड़ानेवाले इन ठगोंसे सावधान रहें।

सत्पात्रको, जरूरतमन्दको, अपंग, अपाहिज, कुछ काम न कर सकनेवाले बीमारको अवश्य दान करें। जितना सम्भव हो, जैसे सम्भव हो सहायता करें। हमारे यहाँ कहा गया है—

'दानशूरो विशिष्यते'

'दानवीर पुरुष ही अन्य सब पुरुषोंसे विशिष्ट है।'

आप देवत्वकी ओर बढ़ें !

मानसिक देवासुर-संग्राम—हमारे मनमें प्रायः दो भावनाओंका निरन्तर संघर्ष चला करता है—बुराई और अच्छाईकी हलचल, सत्-असत्का द्वन्द्व, देवासुरका संग्राम। पुराणोंमें देवासुर-संग्रामका वर्णन पग-पगपर किया गया है। प्रत्येक पुराणमें किसी-न-किसी बहाने किन्हीं देवताओं और किन्हीं असुरोंके युद्धके प्रसङ्ग बार-बार वर्णन किये गये हैं। यह क्या है ?

वास्तवमें यह एक प्रकारका प्रतीक है। प्रतीकरूपमें यह दर्शानेकी चेष्टा की गयी है कि मनुष्यकी सत् तथा दुष्प्रवृत्तियोंका संघर्ष, यह देवासुर-संग्राम अनादि कालसे चल रहा है और अनन्त कालतक चलता रहेगा। कोई इससे बचा नहीं है। सत् और असत्की समस्या शाश्वत है।

गीतामें जिस धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्रका वर्णन है और महाभारतमें धर्म और अधर्मका पक्ष प्रतिपादन करनेवाली कौरव-पाण्डव सेनाओंका वर्णन हुआ है, वह भी केवल उस शस्त्र-युद्धतक सीमित नहीं है वरं हमारे नित्यप्रति अन्तःकरणमें निरन्तर होते रहनेवाले देवासुर, सत्-असत्, दुष्प्रवृत्तियों तथा सत्-प्रवृत्तियोंमें चलनेवाले निरन्तर संग्राम-का ही प्रतीकात्मक चित्रण है।

हमारे शास्त्रकार सद्ज्ञानको जनता-जनार्दनतक पहुँचानेमें सिद्धहस्त थे। उन्होंने अनेक पौराणिक कथाओंका एक गूढ़ अर्थ भी रक्खा है। यह गूढ़ अर्थ विवेकशील व्यक्ति आसानीसे

समझ सकता है और उसमें निहित व्यापक भाव हृदयङ्गम कर सकता है। अनेक धार्मिक कथाओंमें दो विपक्षी पक्ष हैं—एक अनैतिक और उद्दण्ड, दूसरा पूर्ण नैतिक और अनुशासित; एक धार्मिक तो दूसरा अधार्मिक; एक सुरों अर्थात् देवताओंका तो दूसरा असुरों अर्थात् राक्षसोंका। इन दोनों शुभ-अशुभ वृत्तियोंका संघर्ष ही रामायण तथा महाभारतमें चित्रित हुआ है। दोनोंका भाव मननीय है।

रामायणमें वर्णित रीछ-वानरोंकी रामसेना तथा रावण, कुम्भकर्ण और मेघनाद-जैसे राक्षसोंकी असुरसेना, दोनोंका निरन्तर युद्ध और अन्ततः रामकी विजय वास्तवमें हमारी भीतरी मनःस्थितिका ही प्रतीकात्मक चित्रण है। महाभारतमें पाण्डवोंका पक्ष सत्य, नीति, ईमानदारी, आस्तिकताका पक्ष है तो झूठ, कपट, हिंसा, अनीति, बेईमानीका पक्ष कौरवोंका है। इन दोनोंके लंबे संघर्षके उपरान्त हम सत्य और दैवी-पक्षकी सफलता पाते हैं।

अध्यात्मरामायणमें इस देवासुर-संग्रामका निरूपण अधिक स्पष्ट रूपसे हुआ है। भगवान्का प्रत्येक अवतार संसार और समाजमें इकट्ठे हुए पापको नाश करने तथा पुण्य और देवत्वकी स्थापनाके लिये, देवताओंकी रक्षा और असुरोंके संहारके लिये अवतरित होता है। ऐसा अवतार समय-समयपर हममेंसे अनेकोंके अन्तःकरणमें अवतरित होते हुए देखा भी जाता है।

पाप और पुण्यका यह द्वन्द्व

मनुष्यके भीतर पाप और पुण्य दोनों प्रकारके अच्छे-बुरे

प्रबल संस्कार बीजरूपमें छिपे हुए हैं। जब हम गंदगी, झूठ, कपट, ईर्ष्या, हिंसाकी ओर झुकते हैं और निर्बलोंपर अत्याचार करते हैं या दूसरोंका शोषण करते हैं तो हमारा पशुत्व अथवा राक्षसत्व ही प्रबल रहता है। दूसरी ओर जब हम प्रेम, न्याय, सत्य और विवेकसे अपनेको संयमित रखते हैं तो हमारा देवत्व उभरता है। राक्षसत्व तथा देवत्व हमारे मन, मस्तिष्क और चरित्रकी दो प्रचण्ड शक्तियाँ हैं। यह पाप और पुण्यकी प्रवृत्तियाँ हमारे मनके दो पक्ष हैं। दो पहलू हैं। इनमें एक तामसिक काला पहलू है तो दूसरा शरद्-चन्द्रिकाके समान उज्ज्वल शुभ्र सात्त्विक।

हर मनुष्यमें पाप और असुरताके कुछ कुसंस्कार पाये जाते हैं। कुछमें ये तत्त्व कुछ विशेष कालतक तीव्र रहते हैं, बादमें दबकर सुसंस्कृत हो जाते हैं। चौरासी लाख निम्न-कोटिकी पशु और राक्षसत्वकी योनियोंमें कई जन्मों, लाखों वर्षोंतक भ्रमण करनेकी अवधिमें ये राक्षसी तत्त्व हमारी आत्माके चारों ओर चिपटे रहते हैं। अपने संचित पुण्योंके अनुपातमें धीरे-धीरे वे पाशविक कुप्रवृत्तियाँ कम होती जाती हैं। फिर भी कुछमें ये मानव-जीवनतकमें प्रबल बने रहते हैं। देवासुरसंग्राम चलता रहता है। पाप और असत्यकी पाशविक शक्तियाँ द्वन्द्व मचाती और मनुष्यकी शान्ति भंग करती रहती हैं।

कुछ मनुष्योंमें असुर-बुद्धि और असुर-प्रवृत्ति बड़ी बलवती होती है। जब उनमें पाशविक प्रवृत्तिकी प्रबलता बढ़ती है तो वे ऐसे-ऐसे दुष्कृत्य, पापाचार, हिंसात्मक और प्रमादपूर्ण कार्य कर बैठते

हैं, जो रावण-जैसे असुरोंकी स्मृति सजग करते हैं। वे तुच्छ मनोविकारोंके वशमें होकर मनमाने गंदे कार्य कर बैठते हैं।

असुर-बुद्धिका प्रकोप दो रूपोंमें विशेषरूपसे देखा जाता है—(१) कामवासनाका अनियन्त्रित ताण्डव, (२) क्रोधका भयंकर विस्फोट। इनके अतिरिक्त राक्षसोंमें मानसिक उत्तेजना, मद, ईर्ष्या, आवेश इत्यादि मनोविकारोंका बड़ा निर्लज्ज प्रदर्शन देखा जाता है! मानसिक उत्तेजना या क्षणिक आवेशमें राक्षस प्रवृत्तिवाले व्यक्ति ऐसे अविवेकपूर्ण कार्य कर बैठते हैं, जिनके बड़े भयंकर दुष्परिणाम निकलते हैं।

असुर-बुद्धिवाले व्यक्तिसे समाजमें विष फैलता है; क्योंकि उनके अनुकरणसे अन्य व्यक्तियोंके भी कुसंस्कार ही जागते और समग्र समाजमें फैलते हैं। अनैतिकताकी अभिवृद्धि होने लगती है, वातावरणमें उच्छृङ्खलता छा जाती है, गुण्डागर्दी और उद्दण्डताका प्रदर्शन बड़े पैमानेपर होने लगता है।

आज अपने समाजमें हम जो फूट, असहयोग, अलगाव, अनुदारता, शोषण, स्वार्थपरता, हिंसा, छीना-झपटी, संकीर्णता और अपहरणकी दुष्प्रवृत्तियाँ फैलते देख रहे हैं, वह असुरताकी कालिमा ही है।

असुर बहुत प्रबल हैं

असुर और देवता दोनोंकी ही शक्ल-सूरत मनुष्यों-जैसी होती है; वे अपनी आन्तरिक भावनाओंकी विभिन्नतासे ही राक्षस या देवता बनते हैं। क्रोध, द्रोह, कलह और उपद्रव फैलानेवाले

तत्त्वोंको असुर-तत्त्व कहते हैं। जो व्यक्ति समाज या विश्वमें ऐसे स्वार्थ, कलह, हिंसा और विध्वंसके कुत्सित तत्त्व फैलाते हैं; छल, कपट, दम्भ और अत्याचारमें सहायता देते हैं; ईर्ष्या-द्वेष और घृणाकी कालिमासे वातावरणको दूषित करते हैं—वे मनुष्यरूपमें भी वास्तवमें राक्षस ही हैं। उनकी आकृति, हाथ, पाँव, मुँह, चेहरा या मस्तिष्क बाहरसे देखनेमें आदमी-जैसा प्रतीत होता है किंतु वस्तुतः वे राक्षस ही हैं। उनका मन सदा वासनाकी पाशविक तथा राक्षसी प्रवृत्तियोंकी ओर ही दौड़ा करता है। वे कटु भाषण और कटु व्यवहार करते हैं।

आसुरी भोजन

असुरका भोजन तामसी और राजसी होता है। उसमें भक्ष्य-अभक्ष्यका विवेक नहीं होता। मांस, मदिरा, अण्डे, मादकपदार्थ, प्याज, लहसुन इत्यादि अभक्ष्य उत्तेजक पदार्थोंका वे नित्य ही उपयोग करते हैं। इस तामसी भोजनसे उनकी पशुप्रवृत्तियाँ सदा ही उनपर छायी रहती हैं।

दुष्ट प्रकृतिका एक कारण राजसिक भोजन भी है। अधिक चटनी, अचार, खट्टे, गरिष्ठ, तरह-तरहकी वनस्पतिसे बनी मिठाइयाँ, हींग, लाल मिर्च, प्याज, लहसुन, मांस, अंडे, मछली, चाय, गाँजा, भाँग, चरस, अफीम, शराब, चण्डू, बीड़ी, पान, सिगरेट, तम्बाकू, सोडा, लेमन इत्यादि सब उत्तेजक खाद्य पदार्थ राजसिक हैं। मनुष्यकी उत्तेजना और वासनाको प्रदीप्त करनेवाले हैं।

तामसी आहार इससे भी गिरा हुआ होता है। इसमें बासी—जूँठे

रसहीन, दुर्गन्धित, गले हुए, अधिक तेल और घीसे बने हुए पदार्थ, मांस-मदिरा तथा नशेकी चीजोंके विशेष प्रयोग सम्मिलित हैं। इन सभी पदार्थोंके सेवनसे मनुष्य क्रोधी, वासनाप्रिय, अधर्मी, हिंसक, लालची, आलसी और पापी हो जाता है। ऐसे राक्षसी आहारसे मन लालची, कामी, क्रोधी और उत्तेजक रहता है।

आसुरी प्रवृत्तियाँ

मनुष्यमें जो निकृष्ट भाव हैं, वही उसका असुरभाव है। यह गुप्तरूपसे उसके गुप्त मनमें रहता है तथा नाना घिनौने, अश्लील, गिरे हुए कुत्सित रूपोंमें प्रकट होता है।

आज हम समाजमें भिन्न-भिन्न प्रकारकी अश्लीलता, नशेबाजी, बेईमानी और बुराइयाँ देख रहे हैं। लोग तनिक-तनिक-सी बातके लिये अशान्त, उत्तेजित और उपद्रवी हो उठते हैं। जरा-सी बात-पर इतराते हैं। गाली-गलौज और झगड़ा करते हैं। आवेश और उत्तेजनामें आकर मार-पीट कर बैठते हैं। आत्महत्याएँ प्रायः ऐसी ही उद्विग्न अवस्थामें होती हैं। ये सब आवेशकी भयंकर प्रति-क्रियाएँ हैं। आज हम प्रतिदिन आत्महत्याओंके, मारपीट, मुकदमेबाजी-के दुःखद समाचार पढ़ते रहते हैं, छोटी-छोटी बातें विकराल रूप धारण कर रही हैं। राजनीति दलबन्दीका अखाड़ा बन गयी है।

आज रोग, शोक और चिन्ताएँ बड़ी भारी संख्यामें दिखायी देती हैं। हृदयके रोगोंसे बहुतसे लोग जवानीमें मर रहे हैं। हृदय-रोगोंका एक प्रमुख कारण मनुष्यका निरन्तर चिन्तित रहना है। गाँवोंकी अपेक्षा शहरोंमें मानसिक बुराइयाँ अधिक हैं। फालतू

सोचते-सोचते लोगोंको पागलपन अधिक होता है। क्रोध और ईर्ष्या-का उन्माद बुरी तरह देखा जा रहा है।

यह कलह और संघर्ष बढ़ानेवाली वृत्ति ही आसुरी प्रवृत्ति है। यही हमारे गुप्त मनमें बैठी हुई राक्षसी वृत्ति है। जबतक इस असुरताकी एक भी चिनगारी मौजूद है, तबतक सुख, शान्ति और संतुलन मिलना कठिन है। आसुरी प्रवृत्तियाँ ही घरेलू झगड़े, लंबी बीमारी, दुर्व्यवहार, गैर कानूनी गर्भ, सामाजिक कलङ्क, अपमान, गरीबी, प्रतिशोध और उन्माद-जैसी दुःखद बीमारियोंके कारण हैं। दुर्विचार ही असुरत्व है। वासना प्रत्यक्ष विष है।

हम देवत्वकी ओर बढ़ें

संसारमें जितने मनुष्यरूपी जीव हैं, उन्हें हम गुण, कर्म और स्वभावके अनुसार तीन वर्गोंमें विभाजित करते हैं—(१) देवता, (२) मनुष्य और (३) राक्षस। इन तीनोंका रंग-रूप मनुष्य-जैसा ही होता है, पर इनके गुण, कर्म और स्वभाव पृथक्-पृथक् होते हैं। राक्षस वे हैं जो विचार, जीवन, लक्ष्य और भोजन इत्यादिकी दृष्टि-से गिरे हुए हैं। वे मांस-भक्षण करते हैं, दीन-हीन उत्तेजक वासनापूर्ण विचार रखते हैं, दृष्टिकोण भी त्रुटिपूर्ण रखते हैं। राक्षस सदा अपना ही संकुचित स्वार्थ देखता है। 'मैं सब कुछ ले लूँ। मुझे हर प्रकारका लाभ रहे, वासनाओं और इच्छाओंकी हर प्रकार तृप्ति होती रहे, दूसरेसे कोई प्रयोजन नहीं है।'—यह विचारधारा राक्षसवृत्तिके व्यक्तिकी होती है। यह दृष्टिकोण नितान्त अशुद्ध है।

मनुष्य वह है जो हानि-लाभ, उदार-अनुदार, अपना और

पराया, स्व तथा पर—इन दोनों पक्षोंको देखता है। जहाँ वह एक ओर प्रेम और उदारताकी भावनाएँ मनमें पालता है, वहाँ दूसरी ओर ईर्ष्या, द्वेष और घृणा इत्यादिका भी अनुभव करता है। मनुष्य कमजोरियोंका पुतला है। वह हानि-लाभ देखता है और तात्कालिक लाभके वशीभूत हो प्रायः गलती कर बैठता है। उसका स्वार्थ उससे कुछ-का-कुछ करा देता है। अशुद्ध दृष्टिकोण होनेपर मनुष्यके विचार और कार्य अति अनर्थपूर्ण हो जाते हैं। मनुष्य सांसारिकताके नीचे स्तरपर ही विचरण करते रहते हैं। घर-परिवारकी सांसारिक और आर्थिक समस्याओंमें ही जीवन-जैसे बहुमूल्य दैवी वरदानको नष्ट कर देते हैं।

देवभाव महान् है

देवभाव ही सर्वोत्कृष्ट स्थिति है। देवभावको धारण करनेसे मनुष्य धन्य हो जाता है। संसारमें जो स्थिति कल्पनाद्वारा शुद्ध और अमरत्व देनेवाली समझी गयी है, वह देव-भावमें समाविष्ट है।

देवभावनामें ईश्वरत्वकी पवित्रता है। हमारी आदर्शकी कल्पनामें ईश्वर सर्वोच्च उच्च शक्तियोंका पुञ्ज है। मनुष्यमें जितने उच्च गुण हैं—प्रेम, दया, करुणा, मैत्री, सहानुभूति, साहस, धैर्य, उदारता—उन सभीका आदिस्रोत ईश्वर है। देवता उसीका अंश है। देवत्व ईश्वरीय शक्तिका तेज और दैवी विभूतिका पवित्रतम अंश है।

देवत्वकी भावना अमरताकी भावना है। देवता इस हाड़-मांसके क्षणभंगुर शरीरको कोई महत्त्व नहीं देते। यह पार्थिव शरीर अल्पकालमें ही नष्ट हो जानेवाला है। शरीरका जन्म होता है,

वह बढ़ता है, किंतु जल्दी ही नष्ट भी होता है, पर आत्मा अजर-अमर-शाश्वत है। ईश्वरका अंश है। देवत्वकी भावना आत्माके महत्त्वकी भावना है। अपनेको अविनाशी आत्मा मान लेनेसे, आत्म-साक्षात्कार कर लेनेसे शरीरको मृत्युके कष्टोंका अनुभव नहीं होता। अपनेको देवता माननेवाला मनुष्य सदा आत्मदृष्टिसे ही देखता है। वह सदा यही मानता है कि मैं आत्मा हूँ। मेरा वास्तविक स्वरूप अविनाशी, अविच्छिन्न, अभेद्य, अशेष है। मेरी आत्माका किसी भी प्रकार क्षय नहीं हो सकता।

देवत्वकी उच्च मनोभूमिमें निवास करनेवाला मनुष्य यह मानता है कि वह अंदर-बाहरसे पवित्र है, शुद्ध है। असुरता या दानवत्वका कोई भी आक्रमण उसपर नहीं हो सकता।

देवत्वकी क्या नीति है ?

देवत्वकी आराधना करनेवाला तुच्छ सांसारिक दृष्टिकोण त्याग-कर सब कुछ उच्च परमार्थके दृष्टिकोणसे देखता है। वह शुद्ध सात्त्विकताको अपने मन, वचन और कर्मसे अपनाता है। क्षणिक सुखों, सांसारिक आकर्षणों और भौतिक प्रलोभनोंमें उसे कोई रुचि नहीं होती। वह उन उच्च गुणोंको धारण और उत्तरोत्तर विकसित करता है, जिनसे लोकोपकार होता है।

समस्त सत् प्रवृत्तियोंका केन्द्र

देवत्वका भाव ही मनुष्यकी समस्त सत्प्रवृत्तियोंका केन्द्र एवं समस्त ईश्वरीय दिव्य शक्तियोंका उद्गमस्थल है। जीवकी आन्तरिक अभिलाषा यही होती है कि वह स्वयं समुन्नत होता हुआ

अन्ततः ईश्वरमें ही विलीन हो जाय। हमारी आत्मा परमात्माका ही तो रूप है। सत्-चित्-आनन्दस्वरूप आत्माके गुणोंका विकास करते हुए हम अपनी आध्यात्मिक उन्नतिकी योजना तैयार कर सकते हैं।

वास्तवमें हम आत्माके दिव्य गुणोंका जितना चिन्तन और मनन करते हैं, उतने उन देवपुरुषोंके सत्संगमें रहते हैं जो अपनी आध्यात्मिक उन्नतिके कारण उच्चतम स्थितिमें पहुँचे हैं, उतना ही ईश्वरके निकट पहुँचते हैं। मनुष्यके जीवनका चरम लक्ष्य ही परमात्माके रूपमें विकसित हो जाना है। हमारी शुभ प्रवृत्तियाँ ईश्वरीय गुणोंका विकास करनेवाली हैं।

आपमें देवत्व छिपा हुआ है !

निश्चय मानिये आपके इस सुर-दुर्लभ शरीरमें देवत्वकी छाया मौजूद है। यह योनि असंख्य योनियोंमें मारे-मारे फिरनेके पश्चात् आपको प्राप्त हुई है। इस शरीरमें आये हुए जीवको एक छलाँग मारनेकी जरूरत है। इस प्रयत्नद्वारा वह ईश्वरत्वकी जिम्मेदारी निभानेके योग्य बन सकता है।

दैवी प्रवृत्तियोंवाले ऐसे अनेक महापुरुष हुए हैं जो आज भी प्रकाश-स्तम्भ हैं। शिबि, दधीचि, हरिश्चन्द्र, मोरध्वज, प्रह्लाद, बुद्ध, गाँधी आदि मनुष्यकी देह पाकर भी देवता ही थे। उनकी मृत्यु कभी नहीं हो सकती। ये अमर पुरुष सदा देवकोटिमें ही गिने जायँगे। ये सदा मानवताको उच्चतम ज्ञान, भक्ति, सेवा, त्याग, उदारताका संदेश देते रहेंगे।

आस्तिक भाव

ईश्वरमें अखण्ड विश्वास, ईश्वरीय सत्ताके प्रति श्रद्धाभाव इस संसाररूपी सागरको पार करनेके लिये नौकाकी तरह सुदृढ़ आधार है। दैवी भावना आस्तिकतापर ही आधारित आध्यात्मिक प्रक्रिया है। संसारमें विजयी वही होता है, जो भौतिक आधारोंके अतिरिक्त ईश्वरकी सत्ता और आध्यात्मिक सहायतामें भी विश्वास रखता है। आस्तिक भाव एक आधार है। ईश्वरीय शक्तियोंमें विश्वासके भरोसे संसारके बड़े-बड़े कष्ट दूर होते हैं।

एक विद्वान्के शब्दोंमें हम कहेंगे, 'प्रायः सभी धर्मोंमें ईश्वरकी सर्वव्यापक, परम शक्तिमान् सत्ताको अपनी श्रद्धा और विश्वासका आधार बनाया गया है। जब मनुष्य ईश्वरकी व्यापक शक्तिशाली सत्तासे अपने आपको जुड़ा हुआ पाता है तो उसकी शक्ति इतनी प्रबल हो जाती है कि वह मनके समस्त द्वन्द्व, सांसारिक क्लेश, भौतिक परेशानियोंमें रहकर भी संतुलित होकर आगे बढ़ता है।

'ईश्वरपर दृढ़ विश्वास और अटल आस्था मनुष्यको मानसिक संतुलन और शक्ति प्रदान करती है।

'अपनेको ईश्वरीय सत्तासे संयुक्त करनेके लिये शरणागति, आत्म-निवेदन एवं प्रार्थनाओंको धर्मका रचनात्मक रूप माना गया है। चिन्तन, मनन, धारणा, ध्यान, समाधि आदि प्रक्रियाओंका आयोजन ईश्वरीय सत्तासे एकीभूत होनेके लिये, शक्तिप्रेरणा पानेके लिये, मानसिक संतुलन प्राप्त करनेके लिये हुआ है।'

उपर्युक्त शब्दोंमें आस्तिक भावका महत्त्व स्पष्ट होता है।

आस्तिक भावको विकसितकर मनुष्य आध्यात्मिक संसारकी सर्वोच्च शक्तियोंसे तादात्म्य प्राप्त करता है। व्यर्थके क्षुद्र सांसारिक झंझटोंसे बचकर अन्तर्मुखी होता है।

इसी भावपर हमारा सनातनधर्म टिका है। प्रार्थनाके माध्यमसे हम इस शक्ति-भण्डारसे अपना निकट सम्पर्क स्थापितकर लाभ उठाते हैं। ईश्वर-पूजन कर लेनेके उपरान्त हम मनमें असीम शान्ति और तृप्तिका अनुभव करते हैं। मनका समस्त तनाव दूर हो जाता है। संसारके सब महान् विचारकोंने आस्तिकताको अपनानेपर बल दिया है। आप भी इसे धारण करें और दैवी-भावनासे लाभ उठावें।

श्रद्धाभाव

ईश्वरके नाना रूप हैं। देवताओंके रूपमें नाना मूर्तियाँ और अनेक चित्र हैं; भगवान्‌के असंख्य मन्दिर हैं। इन मूर्तियों और इन चित्रोंमें, इन मन्दिरोंमें श्रद्धाका भाव जगानेसे ही भगवान्‌का निवास होता है। श्रद्धा-जैसे उच्च भावमें ही ईश्वरका अस्तित्व है। भावमें ही भगवान् हैं। हम पूर्ण श्रद्धापूर्वक जिस मूर्तिमें भगवान्‌की प्रतिष्ठा करते हैं, वहीं उनके दर्शन होते हैं। विश्वासके एक ही केन्द्र-बिन्दुके चारों ओर एकत्र होना श्रद्धा है।

एक प्रसिद्ध विचारकके शब्दोंमें, 'ईश्वर-विश्वासके लिये श्रद्धाका महत्त्वपूर्ण स्थान है। भौतिक जीवन तथा शारीरिक क्षेत्रमें प्रेमकी सीमा होती है। जब यही प्रेम आन्तरिक अथवा आत्मिक क्षेत्रमें काम करने लगता है तो उसे श्रद्धा कहते हैं।

श्रद्धाके माध्यमसे ही उस विराट् ईश्वरकी अनुभूति सम्भव है। श्रद्धा समस्त जीवन-नैयाके चप्पू ईश्वरके हाथोंमें सौंप देती है।

जिसका जीवन प्रभुके हाथोंमें है, उसे क्या भय ! जो प्रभुका हाथ पकड़ लेता है, वह निर्भय हो जाता है। उसके सम्पूर्ण जीवनमें प्रभुका प्रकाश भर जाता है।

श्रद्धा हमारे जीवनको एक ऐसे सुदृढ़ विश्वाससे भर देती है, जो सदा हमारे साथ रहता है और कवचकी तरह सहायता करता चलता है। श्रद्धासे ही परमात्म-तत्त्वसे मेल सम्भव है। ईश्वरमें विश्वासकर हम अपने दैवी गुणोंको खोलते हैं और क्षुद्र असुरता और पशुत्वसे ऊँचे उठते हैं।

देवताओंके ये गुण आप विकसित करें—

१. सत्यका भाव

देवभावको जाग्रत् करनेके लिये प्रथम स्थान सत्यका है। सत्य ईश्वरका रूप है, असत्य असुरत्व है। देव-पुरुष सदा सत्यको ही ढूँढते और ग्रहण करते हैं। सदा सच बोलते हैं, सत्यको ही जीवनयात्राका आधार बनाते हैं, झूठको पास भी फटकने नहीं देते।

महर्षि वेदव्यासने सत्यको दैवी गुणोंमें सर्वप्रथम स्थान दिया है। वे लिखते हैं कि सत्यमें सब उच्च दैवी तत्त्व शामिल हैं। सत्यमें न्याय होता है। सत्यमें प्रेम निहित है। सत्यमें अहिंसा और अस्तेय आदिका समावेश हो जाता है। महात्मा गाँधी तो सत्यके इतने पुजारी थे कि प्रायः कहा करते थे, 'सत्यको जान लेनेके बाद कुछ बाकी नहीं रह जाता। भला सूर्यके प्रकाशको किसे बताना पड़ता

है ।' सत्य स्वयं प्रकाशमान है और स्वयंसिद्ध है। मनुष्यका उद्धार इसीमें है कि वह सत्यके विविध रूपोंको अच्छी तरह जान ले और रोजानाकी जिंदगीमें उतारनेकी भरपूर कोशिश करे। देवत्वकी ओर बढ़नेका यह सबसे अच्छा उपाय है।

सत्य दैवी भावनाका अङ्ग है। 'सत्य' शब्दका उच्चारण करते ही जिह्वाको बड़ी शान्ति मिलती है, विचार करते ही मस्तिष्क शीतल हो जाता है, हृदयङ्गम करनेसे कलेजा ठंडक अनुभव करता है। झूठके मायावी प्रपञ्चोंमें उलझकर ईश्वरका अमर राजकुमार—यह मनुष्य—मानवतासे पतित होकर पशु हो गया है—सत्यकी अवहेलना करनेका अभिशाप भुगत रहा है। प्रभुकी त्रिगुणमयी लीलामें सर्वत्र सत्य ही है। जीवनके कण-कणकी एक ही प्यास है—'सत्य'। हमारा जीवन इसलिये है कि अखिल सत्य-तत्त्वमें विचरण करते हुए हम अमृतका पान करें।

श्रुति कहती है **'असतो मा सद्गमय'** असत्यसे हम सत्यकी ओर चलें। हमारे जीवनका सारा कार्यक्रम, सारी सफलता, सारा उद्देश्य जिस एक शब्दमें छिपा हुआ है—वह सत्य है।

बन्धुओ! असत्य, झूठ, कपट, मिथ्याचारके सब रूप छोड़कर सत्यकी ओर चलिये।

जैसे गायका बछड़ा गोमाताके स्तनोंका पान करता हुआ दूध ही प्राप्त करता है, वैसे चारों वेदोंका अनुशीलन करनेपर सत्यरूपी दूधसे बढ़कर पवित्र कोई दूसरी चीज कहीं नहीं मिलती। स्वर्गसुखकी सीढ़ी सत्य है, जैसे सागरको पार करनेके लिये पोत।

वेदोंमें सत्यका ही प्रतिपादन है । परम फल सत्य ही कहा है । तप, धर्म और संयम—ये सब सत्यमें ही प्रतिष्ठित हैं ।

२. न्यायका भाव

मनुष्योंके अंदर छिपे हुए पशुत्व और राक्षसत्वके कारण ही भिन्न-भिन्न प्रकारके अन्यायकी सृष्टि होती है । एक मनुष्य दूसरे-पर इस राक्षसत्वके कारण ही अत्याचार करता है ।

अन्याय आन्तरिक अन्धकारसे उत्पन्न होता है । पशुको न्याय और अन्यायका कोई विवेक नहीं होता । हमारे समाजमें इस अधमता-के कारण ही घर-परिवार, बिरादरी, जाति, संस्थाओंमें अन्याय फैले हुए हैं । मूर्ख बलवान्, समझदार निर्बलपर मनमानी कर रहे हैं । इस पशुत्वका निवारण तभी हो सकता है, जब हम हर प्रकारसे न्याय नामक दैवी-भावको धारण करें ।

अन्याय पाप और अधर्मसे उत्पन्न होता है । कमजोरी होने-से दूसरेको अन्याय करनेका बढ़ावा मिलता है । संसारमें बड़े-बड़े हिंसक पशु मौजूद हैं, पर हमारी बढ़ी हुई शक्ति होनेसे वे हमपर हावी नहीं हो पाते । अतः हमें सशक्त बनकर अन्यायका निवारण करना चाहिये । संसारसे अन्याय दूर करनेके लिये मानसिक, आर्थिक और शारीरिक बलका संग्रह कीजिये । संसारसे पाप, अन्याय, अधर्मको दूर करनेके लिये स्वयं भगवान्‌को बार-बार अवतार लेना पड़ता है—यह सदा याद रक्खें ।

यदि आपको दूसरे सताते हैं, आपपर अन्याय करते हैं, तो आप बलवान् बननेका कार्य प्रारम्भ कर दीजिये । मत सोचिये कि आप साधनहीन या अकेले हैं ।

साथ ही, सबल होनेपर दूसरोंपर अन्याय करनेकी बात कभी मत सोचिये। अधर्म या पापसे सशक्त या सम्पत्तिशाली बननेकी अपेक्षा यह उत्तम है कि आप श्रेष्ठ आचरणसे न्यायका पालन करते चलें। सावधान, किसीपर अन्यायका हाथ कभी न उठे।

न्यायका पक्ष ही अन्ततः विजयी होता है। न्याय ही धर्म है।

३. उदारताका भाव

उदारता एक दैवी गुण है। देवताओंका स्वभाव सदा उदार होता है। वे जाति-पाँति, वर्ण, स्थिति या सुन्दर-असुन्दरका विवेक किये बिना सबको एकभावसे सहायता और सहयोग देते हैं। संकुचितता उनके पास फटक नहीं सकती।

संकुचितता हमारी आत्माका गुण नहीं है। आत्मा उदार है। उसमें कोई सीमा-बन्धन नहीं है। जब हम आत्मभावसे देखते हैं तो सब जीव अपने ही अपने नजर आते हैं। जब हम अपनेको आत्माके भावसे देखते हैं तो सबको परमात्माका अंश माननेके कारण अपना ही मित्र, सुहृद्, परिवारका सदस्य और भाई-बन्धु पाते हैं। सबमें एक ही आत्माका अस्तित्व पाते हैं। इस दृष्टिसे आन्तरिक ऐक्य, प्रेम और सहयोग सब उदारता नामक महान् गुणमें ही आ जाते हैं। जो व्यापक दृष्टिसे उदारताको धारण करता है, उसके लिये समस्त विश्व ही अपना है, एककी हानि सबकी हानि है, एकका लाभ सबका लाभ है। उदारतासे हम सामूहिक उन्नतिमें प्रयत्नशील होते हैं।

दैवीभावसे एकताका तकाजा है कि आप अपनेको शरीर नहीं

आत्मा मानकर चलें और उन गुणों—सत्य, न्याय, प्रेम, विवेक, उदारता इत्यादिको धारण करें, जो आपकी असली सम्पत्ति है ।

अपने अन्तःकरणका अध्ययन कीजिये और माल्रुम कीजिये कि ऐसे कितने तुच्छ कार्य हैं, जो आत्मा-जैसे शुद्ध सात्त्विक तत्त्वके अनुकूल नहीं हैं ।

अन्तरात्मा स्वीकार करे, वही करना चाहिये । जो कार्य आत्माके गौरवके अनुकूल नहीं हैं, उन्हें आजसे ही छोड़ना प्रारम्भ कर दीजिये ।

आपकी आत्मा सत्य और असत्य, उचित और अनुचित, भले और बुरेका निर्णय करनेवाली दैवी कसौटी है । उलझनके समय वही दूधका दूध और पानीका पानी कर देती है । जिस विचार या कार्यके करनेमें आपको अंदरसे आनन्द, प्रसन्नता या गर्वका अनुभव होता है, उसे विकसित करनेमें कदापि विलम्ब मत कीजिये, चाहे प्रत्यक्ष रूपमें अभी आपको कोई सांसारिक घाटा दिखायी देता हो— यही आत्मज्ञानका सीधा मार्ग है ।

'मेरे जीवन तथा कार्योंमें दैवी तत्त्व अवश्य प्रकट होगा । मैं अपने जीवनको निखार रहा हूँ और इस प्रकार ईश्वरत्वके पास आ रहा हूँ ।' यह विचार दृढ़तापूर्वक जमाइये ।

हमारी आत्मा ईश्वरका प्रतिबिम्ब है । वस्तुतः उसमें वह दिव्य शक्ति है, जिसके प्रभावसे दिव्य बुद्धि प्रेरित होती है । इस आत्माको समझना, उसके गुणोंको विकसित करना, आदेशोंका पालन करना हमारा चरम लक्ष्य होना चाहिये ।

दया, क्षमा और दण्डका यथार्थ उपयोग सीखिये

भारतीय संस्कृतिमें मनुष्यके कल्याणके अनेक विधान हैं। हिंदू धर्मके ऋषि-मुनियोंने मानवजीवनके प्रत्येक पहलूपर गम्भीरतासे विचारकर शास्त्रोंकी परम्पराएँ निश्चित की हैं। हमारी संस्कृति अधमसे अधम और पतितसे पतितके उद्धार और कल्याणकी कामनासे परिपूर्ण है। चाहे कोई कितना ही क्यों न गिर गया हो, समाजने उसे कितना ही पतित क्यों न मान लिया हो, उसके लिये भी हिंदूधर्म नयी आशा और नये उत्साहका आह्लादकारी संदेश लिये हुए है। दया, क्षमा और दण्ड—इन तीनोंके उचित उपयोगसे ही यह सम्भव होता है। अतः इनका मर्म ठीक प्रकारसे समझ लेना चाहिये।

दया आपका मनुष्योचित धर्म है। जो कष्टमें है, सहायताके लिये कराह रहा है, वह आपकी दयाका पात्र है। जो आपसे दुर्बल हैं, कम आयुके हैं, गिरी हुई स्थितिमें हैं, उनपर निश्चय ही दया करनी चाहिये। दया आपका कर्त्तव्य है। दूसरोंकी सेवा करना ही अपनी सेवा करना है। पूर्ण मनुष्यत्व केवल साहस और वीरतासे ही नहीं बनता, उसमें दया-जैसे कोमल भावकी बहुत आवश्यकता है।

दया ही वह दिव्य गुण है, जिसके द्वारा ईश्वर आपसे अपने बन्धुओंकी सहायता चाहता है। रोगियोंका रोग दूर करने,

दरिद्रको दारिद्र्यसे उबारने, दुखियोंका दुःख दूर करने और मानवताकी रक्षाके लिये दया एक महत्त्वपूर्ण सद्गुण है। इसे धारण करनेका प्रयत्न करना चाहिये। आपकी दयाका दायरा बढ़ता रहना चाहिये। उसमें मनुष्य ही नहीं, पशु-पक्षी-कीट-पतंग इत्यादि भी सम्मिलित रहें।

लेकिन दयाकी भी एक मर्यादा है। जो व्यक्ति एक बार या दो बार आपकी दयासे लाभ उठाकर ऊँचा नहीं उठता या उन्नति नहीं करता, वह मनुष्य नहीं, पत्थर है। हम आज समाजमें देखते हैं कि अनेक भिखारियोंने दयाकी आड़में भिक्षा-वृत्तिको एक पेशा बना लिया है। यह दयाका अनुचित उपयोग है। इसी प्रकारके और भी अन्य अनेक उदाहरण मिल जायँगे, जिनसे बचना होगा।

क्षमा हमारी दयाका एक और अङ्ग है। जो हमारे साथ दुर्व्यवहार करता है या अपकार, हानि, कष्टका साधन बनता है, उसे मनमें सच्चा पश्चात्ताप उदय होनेपर क्षमा कर देना चाहिये। प्रायः अनेक दुष्ट क्षमा किये जानेपर गलत मार्गसे बचकर उन्नतिके मार्गपर चलने लगते हैं। मानव-जीवन बहुमूल्य है। अतः एक-दो बार कसूरवारको भी क्षमा देकर उसकी उन्नतिका साधन उपस्थित करना चाहिये। हमारे समाजमें आज अनेक उपेक्षित जातियाँ, दुखी, पिछड़े हुए मानव पड़े हुए हैं, जो हमारी दया चाहते हैं।

समाज मनुष्योंके समूह हैं। इसमें आगे-आगे चलने और

पिछड़े हुए सभी प्रकारके सदस्य हैं। प्रेम तथा दयाका पारस्परिक व्यवहार कायम रहनेसे ही हमारा समाज ठीक स्तरपर रह सकेगा। सहकार मनुष्यकी आत्माका धर्म है। क्षमा करनेसे मनुष्यको सुधारका एक नवीन अवसर प्राप्त होता है।

दण्ड हमारी संस्कृतिकी अन्तिम सीमा है। दुष्टका दमन होना चाहिये। यदि लोककल्याणके लिये दुष्टको नीतिका साधारण नियम भङ्ग करके भी दण्ड देना पड़े, तब भी वह त्याज्य नहीं है। मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजीको छलसे बालीका वध करना पड़ा था। बाली दुष्ट था, उचित-अनुचितका विवेक खो बैठा था और वासनाजन्य अत्याचारोंसे प्रजा काँप उठी थी। सामने आकर उससे युद्ध करनेवाला और उसे मार डालनेवाला कोई भी न था। सामने आकर युद्ध करनेवालेकी आधी शक्ति स्वयं बालीमें आ जाती थी। इसलिये श्रीरामचन्द्रजीने उसके सामने न आकर वृक्षोंके पीछेसे उसका वध किया था। राष्ट्रहितकी दृष्टिसे यह उचित था। यद्यपि साधारण युद्धके नियम भङ्ग करके यह कार्य हुआ था। दुष्टको दण्ड दिया ही गया, चाहे वह जिस प्रकार हो।

इसी प्रकार कौरव-पाण्डव-युद्धमें कुलगुरु द्रोणाचार्यने पाण्डवोंकी सेनाका बड़ा संहार किया। पाण्डव यह देखकर बड़े डरे। यदि कौरव जीत जाते, तो भारतमें अनीति और अत्याचारका बोलबाला हो जाता। अतः श्रीकृष्णजीने अश्वत्थामा नामके एक हाथीको मरवा दिया। द्रोणाचार्यके पुत्रका नाम भी अश्वत्थामा

था। युद्धमें जब द्रोणने श्रीकृष्णके मुखसे सुना कि अश्वत्थामा मारा गया, तो वे घबरा गये। इसी अवसरपर उनको मार डाला गया। छलसे द्रोण न मारे जाते, तो कौरव जीत जाते और अनीतिकी विजय हो जाती।

बिहारमें जरासंध नामक एक अत्यधिक अत्याचारी राजा राज्य करता था। उसने छोटे-छोटे ८० राजाओंके राज्योंको छीन लिया था और बहुत-से राजाओंकी स्त्रियोंको हरकर अपने महलोंमें रखे हुए था। दुष्ट जरासंधके पास शक्ति बहुत थी और उसके मुकाबिला करनेकी सामर्थ्य किसीमें न थी। इसलिये श्रीकृष्णजीने अर्जुन और भीमके साथ स्वयं ब्राह्मणवेष बनाकर जरासंधके अन्तःपुरमें पहुँच वहाँ अपने-आपको ब्राह्मण कहा और उसीके महलोंमें भीमसे जरासंधका मल्लयुद्ध कराकर उसका वध कराया था। इसी प्रकार कर्णने छलसे अर्जुनके पुत्रको मारा तो श्रीकृष्णने उसका भी बदला लिया था।

इस प्रकार समय-समयपर संसारसे अत्याचार और दुष्टताके निवारण तथा मानवके सत्य, प्रेम, न्यायकी रक्षाके लिये भारतीय संस्कृतिमें दण्डका विधान रहा है। छलसे, कूटनीतिसे या छिपकर भी दुष्टको राष्ट्र और धर्मके हितके लिये दण्ड देनेमें अधर्म नहीं है। अनेक दुष्टोंको, अनेक राक्षसोंको इसी प्रकार दण्ड (दमन) दिये गये और उसीके फलस्वरूप हमारी संस्कृति आज जीवित है। 'शठे शाठ्यं समाचरेत्'की नीतिके पालनके

कारण ही हमारी संस्कृति आजके उच्च गौरवशाली पदपर आसीन है।

दया, क्षमा और दण्ड—तीनोंका विवेकपूर्ण उपयोग ही मानव-जीवनमें प्रयुक्त होना चाहिये। प्रयोगमें बड़ी बुद्धिमत्ताकी आवश्यकता है। जो निर्बल हैं, पीड़ित हैं, आपकी प्रेरणा चाहते हैं, उन्हें दयाकर क्षमा कर देना ही धर्म है। जिस प्रकार ईश्वरके नियम और दया सबके लिये हैं, उसी प्रकार आपकी दया और क्षमा मनुष्यमात्रके लिये होनी चाहिये। आपकी क्षमासे हो सकता है, वे जीवनका नवीन मार्ग अपना लें और उच्च उद्देश्यपूर्ण जीवन व्यतीत करने लगें। चाहे आप किसी देशमें, किसी नगर, ग्राम या परिस्थितिमें हों, यदि आपको कोई ऐसा व्यक्ति मिलता है, जो आपकी दयासे ऊँचा उठ सकता है, तो उसके पुराने दोषोंको क्षमा कीजिये। क्षमाभाव स्वयं आपके हृदयमें भी शान्ति और संतुलन उत्पन्न करनेवाला है, आनन्ददायक शुभ भाव है, आध्यात्मिक सुखकी वृद्धि करनेवाला है। जिसे अक्षय सुख चाहिये उसे शत्रुता तथा ईर्ष्या-द्वेष-भावसे मुक्त रहना चाहिये। क्षमा और दया आपको इन दुष्ट भावोंसे मुक्त कर देंगे।

दण्डका प्रयोग बहुत ही सोच-समझकर कीजिये। सावधान! व्यक्तिगत द्वेषवश किसीपर अन्याय करना एक प्रकारकी ऐसी दुधारी तलवार है, जो निर्बलको तो घायल करती ही है, सबलको भी अछूता नहीं छोड़ती।

आत्मसंयमसे मनुष्य देवता बनता है

भारतीय संस्कृतिके अनुसार व्यक्तिका दृष्टिकोण ऊँचा रहना चाहिये। हमारे यहाँ अन्तरात्माको प्रधानता दी गयी है। हिंदू तत्त्वदर्शियोंने संसारके व्यवहार, वस्तुओं और व्यक्तिगत जीवन-यापनके ढंग और मूलभूत सिद्धान्तोंपर पारमार्थिक दृष्टिकोणसे विचार किया है। क्षुद्र सांसारिक सुखोपभोगसे ऊँचा उठकर, वासनाजन्य इन्द्रियसम्बन्धी साधारण सुखोंसे ऊपर उठकर आत्म-भाव विकसित कर पारमार्थिक रूपसे जीवन-यापनको प्रधानता दी गयी है। नैतिकताकी रक्षाको दृष्टिमें रखकर हमारे यहाँ मान्यताएँ निर्धारित की गयी हैं।

भारतीय ऋषियोंने खोज की थी कि मनुष्यकी चिरन्तन अभिलाषा, सुख-शान्तिकी उपलब्धि इस वाह्य संसार या प्रकृतिकी

भौतिक सामग्रीसे, वासना या इन्द्रियोंके विषयोंको तृप्त करनेसे नहीं हो सकती। पार्थिव संसार हमारी तृष्णाओंको बढ़ानेवाला है। एकके बाद एक नयी-नयी सांसारिक वस्तुओंकी इच्छाएँ निरन्तर उत्पन्न होती रहती हैं। एक वासना पूरी नहीं हो पाती, कि नयी वासना उत्पन्न हो जाती है। मनुष्य अपार धन संग्रह करता है, अनियन्त्रित काम-क्रीड़ामें सुख ढूँढ़ता है, लूट-खसोट और स्वार्थ-साधनसे दूसरोंको ठगता है। धोखा-धड़ी, छल-प्रपञ्च, नाना प्रकारके षड्यन्त्र करता है। विलासिता, नशेबाजी, ईर्ष्या-द्वेषमें प्रवृत्त होता है, पर स्थायी सुख और आनन्द नहीं पाता। एक प्रकारकी मृगतृष्णा मात्रमें अपना जीवन नष्ट कर देता है। उल्टे उसकी दुष्ट वृत्तियाँ और भी उत्तेजित हो उठती हैं। जितना-जितना मनुष्य सुखको संसारकी बाहरी वस्तुओंमें मानता है, उतना ही उसका व्यक्तिगत और सामूहिक जीवन अतृप्त, कण्टकाकीर्ण, दुखी, असंतुष्ट और उलझनभरा होता जाता है। हिंदू तत्त्ववेत्ताओंने इस त्रुटिको देखकर ही यह निष्कर्ष निकाला था कि स्वार्थपरता और सांसारिक भोग कदापि स्थायी आनन्द नहीं दे सकते। हमारे स्थायी सुखोंका केन्द्र भौतिक सुख-सामग्री न होकर आन्तरिक श्रेष्ठता है। आन्तरिक शुद्धिके लिये हमारे यहाँ नाना विधानोंका क्रम रक्खा गया है। त्याग, बलिदान और संयम—वे उपाय हैं, जिनसे आन्तरिक शुद्धिमें प्रचुर सहायता मिलती है।

भारतीय संस्कृतिमें अपनी इन्द्रियोंके ऊपर कठोर नियन्त्रणका विधान है। जो व्यक्ति अपनी वासनाओं और इन्द्रियोंके ऊपर

नियन्त्रण कर सकेगा, वही वास्तवमें दूसरोंके सेवा-कार्यमें हाथ बँटा सकता है। जिससे स्वयं अपना शरीर, इच्छाएँ, वासनाएँ, आदतें ही नहीं सँभलतीं, वह क्या तो अपना हित करेगा, और क्या लोकहित करेगा।

'हरन्ति दोषजातानि नरमिन्द्रियकिङ्करम्।'

(महाभारत)

'जो मनुष्य इन्द्रियों (और अपने मनोविकारों) का दास है, उसे दोष अपनी ओर खींच लेते हैं।'

'बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति।'

(मनु० २। २१५)

'इन्द्रियाँ बहुत बलवान् हैं। ये विद्वान्‌को भी अपनी ओर बलात् खींच लेती हैं।'

अतः भारतीय संस्कृतिने सदा अपने साथ कड़ाईके व्यवहारकी सराहना की है। यदि हम अपनी कुप्रवृत्तियोंको नियन्त्रित न करेंगे, तो हमारी समस्त शक्तियोंका अपव्यय हो जायगा। आदर्श भारतीय वह है जो दम, दान एवं यम—इन तीनोंका पालन करता है। इन तीनोंमें भी विशेषतः दम (अर्थात् इन्द्रिय-दमन) भारतीय तत्त्वदर्शी पुरुषोंका सनातन-धर्म है। इन्द्रिय-दमन आत्मतेज और पुरुषार्थको बढ़ानेवाला है। दम तेजको बढ़ाता है। दम परम पवित्र और उत्तम है। अपनी शक्तियाँ बढ़ाकर दमसे पुरुष पापरहित एवं तेजस्वी होता है। संसारमें जो कुछ नियम, धर्म, शुभकर्म अथवा सम्पूर्ण यज्ञोंके फल हैं, उन सबकी अपेक्षा

दमका महत्त्व अधिक है। दमके बिना दानरूपी क्रियाकी यथावत् शुद्धि नहीं हो सकती। अतः दमसे ही यज्ञ और दमसे ही दानकी प्रवृत्ति होती है।

जिस व्यक्तिने इन्द्रियदमन और मनोनिग्रहद्वारा अपनेको वशमें नहीं किया है, उसके वैराग्य धारणकर वनमें रहनेसे क्या लाभ? तथा जिसने मन और इन्द्रियोंका भलीभाँति दमन किया है, उसको घर छोड़कर किसी जंगल या आश्रममें रहनेकी क्या जरूरत?

जितेन्द्रिय पुरुष जहाँ निवास करता है, उसके लिये वही स्थान वन एवं महान् आश्रम है। जो उत्तम शील और आचरणमें रत है, जिसने अपनी इन्द्रियोंको काबूमें कर लिया है तथा जो सरल भावसे रहता है, उसको आश्रमोंसे क्या प्रयोजन? विषयासक्त मनुष्योंसे वनमें भी दोष बन जाते हैं तथा घरमें रहकर भी पाँचों इन्द्रियोंपर नियन्त्रण प्राप्त कर लिया जाय, तो वही तपस्या है।

जो सदा शुभकर्ममें प्रवृत्त होता है, उस वीतराग पुरुषके लिये घर ही तपोवन है। जो एकान्तमें रहकर दृढ़तापूर्वक नियमोंका पालन करता है, इन्द्रियोंकी आसक्तिसे दूर हटता है, अध्यात्मतत्त्वके चिन्तनमें लगता है, वही भारतीय संस्कृतिका फल है।

एक ओर जहाँ भारतीय संस्कृति इन्द्रियसंयमका उपदेश देती है, दूसरी ओर वह दूसरोंके प्रति अधिक-से-अधिक उदार

होनेका आग्रह करती है। सच्चे भारतीयको सेवा, सहयोग और सहायताके लिये प्रस्तुत रहना चाहिये।

सत्यस्य वचनं श्रेयः सत्यज्ञानं तु दुष्करम्।
यद्भूतहितमत्यन्तमेतत् सत्यं ब्रवीम्यहम्॥

(महाभारत)

अर्थात् सबसे बढ़कर कल्याण करनेवाला सत्यका कथन है, परंतु सत्यका ज्ञान तो बहुत ही कठिन है। इसलिये सुगम रूपसे उसीको मैं सत्य कहता हूँ जो प्राणियोंके लिये अधिकतया हितकर हो।'

आत्मोत्कर्षं न मार्गेत परेषां परिनिन्दया।
स्वगुणैरेव मार्गेत विप्रकर्षं पृथग् जनात्॥

दूसरोंकी निन्दासे अपनी उन्नतिको कभी न देखे। अपने सद्गुणोंसे ही दूसरे मनुष्योंकी जो उन्नति चाहे, वही सच्चा भारतीय है। भारतीय संस्कृतिके उपासक सदा निर्बलों, अपनी शरणमें आये हुओं तथा अतिथियोंके सहायक होते हैं।

भारतमें सदा दूसरोंके साथ उदारताका व्यवहार रहा है। जो लोग बाहरसे मारनेके लिये आये, जिन्होंने विष दिया, जिन्होंने आगमें जलाया, जिन्होंने हाथियोंसे रौंदवाया और जिन्होंने साँपोंसे डँसवाया, उन सबके प्रति भी भारतीय संस्कृति उदार रही है। हमने सबमें भगवान्‌को देखा है। हाथीमें विष्णु, सर्पमें विष्णु, जलमें विष्णु और अग्निमें भी भगवान् विष्णुको देखा है तो फिर अन्य पशुओं और मनुष्योंकी तो बहुत ऊँची बात है। हम प्राणी-मात्रको प्यार करनेवाले उदार जातिके रहे हैं।

गायत्री और गौका महत्त्व

गायत्री भारतीय संस्कृतिका सनातन एवं अनादि मन्त्र है। पुराणोंमें कहा गया है—

'सृष्टिकर्ता ब्रह्माको आकाशवाणीद्वारा गायत्री-मन्त्र प्राप्त हुआ था। इसीकी साधनाका तप करनेपर उन्हें सृष्टिनिर्माणकी शक्ति प्राप्त हुई थी। गायत्रीके चार चरणोंकी व्याख्यास्वरूप ही ब्रह्माजीने चार मुखोंसे वेदोंका वर्णन किया। गायत्रीको वेद-माता कहते हैं। चारों वेद गायत्रीकी व्याख्यामात्र हैं।'

गायत्रीके २४ अक्षरोंमें वेद, शास्त्र, पुराण, स्मृति, उपनिषद् आदिकी शिक्षाएँ दी गयी हैं, जिनसे मनुष्य व्यक्तिगत, सामाजिक और पारमार्थिक सुख-शान्ति प्राप्त कर सकता है। गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने स्वयं कहा है—'गायत्री छन्दसामहम्' अर्थात् 'गायत्री-मन्त्र मैं स्वयं ही हूँ।'

गायत्री सर्वश्रेष्ठ भारतीय मन्त्र है, जिससे उसे आयु, विद्या, संतानप्राप्ति, कीर्ति, धन और ब्रह्मतेज प्रदान करनेवाली कहा गया है। गायत्रीकी साधनाद्वारा हमारी आत्मापर जमे हुए मल-विक्षेप हट जाते हैं और आत्माका शुद्ध स्वरूप प्रकट होता है। अनेक ऋद्धि-सिद्धियाँ प्रकट होने लगती हैं। गायत्री-मन्त्रकी उपासना

आरम्भ करते ही मनुष्यके आन्तरिक क्षेत्रमें आत्मिक बल बढ़ता है, दुर्भाव नष्ट हो जाता है। संयम, नम्रता, उत्साह, स्फूर्ति, श्रमशीलता, मधुरता, ईमानदारी, सत्यनिष्ठा, उदारता, प्रेम, संतोष, शान्ति, सेवाभाव, आत्मीयता आदि सद्‌गुणोंकी मात्रा दिनोंदिन बढ़ने लगती है। गायत्रीको हमारे यहाँ भूलोककी कामधेनु कहा गया है; क्योंकि यह आत्माकी क्षुधा-पिपासाएँ शान्त करती है। गायत्रीको सुधा भी कहा गया है; क्योंकि यह जन्म और मृत्युके चक्रसे छुड़ाकर सच्चा अमृत प्रदान करनेकी शक्तिसे परिपूर्ण है। गायत्री-उपासना-से प्रमुखतः आध्यात्मिक उन्नति होती है, यही लाभ प्रमुख है। आत्म-कल्याण और सुख-शान्तिकी दिशामें अग्रसर होनेमें गायत्री सहायक है।

गोमाता भारतीय संस्कृतिकी ज्वलन्त प्रतीक है। प्राचीन आर्योंने गायको 'मातेव रक्षति' अर्थात् यह माता हमारी रक्षा करे, कहा है। योगेश्वर श्रीकृष्णने गायकी सेवाद्वारा वह प्रशस्त पथ दिखाया था, जिससे हम उस आदर्शको जीवनमें ग्रहण कर सकें। ऋग्वेद और अथर्ववेदमें गोमाताके महत्त्वका प्रतिपादन करते हुए अनेक उपयोगी सिद्धान्त-वाक्य कहे गये हैं, जो यहाँ उद्धृत किये जाते हैं—

माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः।
प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट॥

(ऋग्वेद ८। १०१। १५)

'गाय रुद्रोंकी माता, वसुओंकी पुत्री, अदितिपुत्रोंकी बहिन और घृत-रूपी अमृतका खजाना है। प्रत्येक विचारशील पुरुषको चाहिये कि निरपराध और अवध्य गायका वध न करे।'

यदि नो गां हंसि यद्यश्वं यदि पूरुषम् ।
तं त्वा सीसेन विध्यामो यथा नोऽसो अवीरहा ॥

(अथर्ववेद १ । १६ । ४)

'यदि तू हमारी गौ, घोड़े तथा पुरुषकी हत्या करता है तो हम सीसेकी गोलीसे तुझे बींध देंगे, जिससे तू हमारे वीरोंका वध न कर सके ।

यूयं गावो मेदयथा कृशं चिदश्रीरं चित् कृणुथा सुप्रतीकम् ।
भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो बृहद्वो वय उच्यते सभासु ॥

(अथर्ववेद ४ । २१ । ६)

'गौओ ! तुम कृश शरीरवाले व्यक्तिको हृष्ट-पुष्ट कर देती हो एवं तेजोहीनको देखनेमें सुन्दर बना देती हो । इतना ही नहीं, तुम अपने मङ्गलमय शब्दोंसे हमारे घरोंको मङ्गलमय बना देती हो । इसीसे सभाओंमें तुम्हारे ही महान् यशका गान होता है ।'

गौसे असंख्य लाभ हैं । गोधनकी उपयोगिताको हिंदुओंने समझकर ही उसको इतना ऊँचा स्थान प्रदान किया है । भारत-जैसे कृषि-प्रधान देशके लिये गोपालन और गोरक्षण धर्म है । गोमातासे मानवसमाजको जो असंख्य लाभ हैं, उनसे मानवजाति सदैव ऋणी रहेगी । गोवंशका ह्रास आर्थिक और धार्मिक दोनों ही दृष्टियोंसे राष्ट्र और समाजके लिये हानिकर है । प्रत्येक गाँव और शहरमें गोशालाओंकी वृद्धिके प्रयत्न होने चाहिये, जिससे दूध, घी, खाद और हृष्ट-पुष्ट बैलोंकी प्राप्ति होती रहे । भारतमें गोपालन, गोरक्षण सनातनधर्म है ।

जीवनका अमृत

जीवनका ज्ञान ही मनुष्यके जीवनको सही कण्टकविहीन मार्गपर चलानेवाला अमृत है। जिस व्यक्तिके पास जीवन-सम्बन्धी ज्ञान, सुख-दुःख, हानि-लाभ, अच्छाई-बुराई, पाप-पुण्य, उतार-चढ़ावका ज्ञान अधिक है, वही दूसरेसे आगे निकलता है और सफल कहा जाता है।

जीवनका ज्ञान दो प्रकारसे प्राप्त होता है। मनुष्य स्वयं जीवन जीता है। तरह-तरहकी गलतियाँ करता है। प्रत्येक गलतीके लिये सजा पाता है, सफलताके लिये प्रशंसाका पात्र बनता है। इस मृदुता और कटुतासे उसका जीवन-सम्बन्धी अनुभव मिलता है। इस अनुभवके आधारपर ही वह जीवनमें आनेवाले संकटों और विषम परिस्थितियोंको पार करता है। बिना अनुभवका कच्चा आदमी पग-पगपर गिरता है और सजा पाता है। यह अनुभव ही मनुष्यके जीवनका निचोड़ है।

लेकिन अनुभवद्वारा शिक्षा-प्राप्तिका यह मार्ग बड़ा लम्बा और जटिल है। कई व्यक्ति बार-बार गलती करते हैं, फिर भी अनुभव नहीं प्राप्त करते, न उससे लाभ उठाते हैं। जो व्यक्ति केवल अनुभवोंके आधारपर आगे बढ़ते हैं, वे लाभ तो उठाते हैं, पर यह अनुभव बड़ी देरमें वृद्ध हो जानेपर प्राप्त होता है। कोई-कोई अनुभव तो महीनों और वर्षोंमें प्राप्त होता है। कभी-कभी ऐसी बड़ी हानि उठानी पड़ती है, जिसका मूल्य जीवनभर चुकाना पड़ता है। एक गलत बातका बड़ा हानिकारक प्रभाव हो सकता है।

दूसरे प्रकारका ज्ञान पुस्तकोंमें संचित, युगयुगोंसे रक्षित, उत्तम मनोमुग्धकारी शैलीमें लिखित अनुभवोंसे प्राप्त होता है, यदि हम जीवनमें प्राप्त अपने निजी अनुभवोंपर ही निर्भर रहें, तो आधा जीवन इन्हीं प्रयोगों तथा उपयोगी नियमोंको समझने और उपयोगमें लानेके तरीकोंमें लग सकता है; क्योंकि जीवनका प्रत्येक सूत्र बड़ी भारी कीमतपर मिलता है।

जीवन एक बड़ी पुस्तक है। इसमें प्रत्येक दिन एक-एक पृष्ठकी तरह है; प्रत्येक पंक्ति-पंक्तिपर नये रहस्य प्राप्त होते रहते हैं। लेकिन जीवन एक-दो दिन या एक-दो वर्षका न होकर वर्षोंका है। पूरे रहस्य हमें तभी प्राप्त होते हैं, जब हमारा पूरा जीवन ही समाप्त हो जाता है; फिर उन अनुभवों, निष्कर्षों, बहुमूल्य सूत्रों और उपयोगी जीवन-नियमोंको काममें लानेके लिये जीवनकी साँसें ही शेष नहीं बचतीं।

इसलिये जितनी जल्दी हमें जीवनके सच्चे अनुभव, लाभदायक नियम और फायदेकी बातें कहींसे प्राप्त हो जायँ तथा जितनी जल्दी हम उन नियमोंका प्रयोग करने लगें, उतनी ही जल्दी हम श्रेष्ठ जीवनका निर्माण कर सकते हैं।

जिस-जिस व्यक्तिने जीवनके सम्बन्धमें जो-जो अनुभवपूर्ण बात लिखी है, वह उन्हें अपने दैनिक जीवनमें धारण करता है। उनके बलपर आगे बढ़ता है। वह उन नियमोंसे लाभ उठाता है, जिनपर चलकर महान् व्यक्तियोंने यश, प्रतिष्ठा और सफलता प्राप्त की थी।

प्रत्येक अच्छी पुस्तक जीवनका निचोड़ होती है

'जिसे आप पुस्तक कहते हैं, वह कागजकी सूखी, निष्प्राण,

निःस्पन्द, मरी हुई चीज नहीं है। पुस्तक तथा मासिकपत्र जीते-जागते जीवनकी हलचल हैं।

'पुस्तकों तथा समाचारपत्रोंके शब्द-शब्दमें अनुभवकी अमरता है; जीवन-पथकी कठिनाइयोंके हल हैं; तरुकी शीतलता है; अमर विश्वास और महकते प्राण हैं; हृदयके सुरभित सुमन खिले हुए हैं और धरतीको स्वर्ग बनानेवाले स्वर्ण-सूत्र हैं। उनमें आशाका शरच्चन्द्र हँस रहा है, तो उल्लासकी रजत रश्मियाँ छिटक रही हैं।

पुस्तकोंकी दुनियामें बड़े-बड़े ऋषि-मुनि हैं, संसारके बड़े-बड़े विचारक, कवि, लेखक, नेता जीवित हैं। वे हमारी सहायताके लिये प्रतिपल तैयार हैं, वे दिनको दिन और रातको रात नहीं समझते। हम जब चाहें, जहाँ चाहें पुस्तकोंमें बैठे हुए अपने उन गुरुओं तथा मित्रोंको साथ ले जा सकते हैं।

पुस्तकोंके पृष्ठोंमें एक सदा सजा रहनेवाला जीवित संसार है। इस मरणशील दुनियामें यह हाड़-मांसका नश्वर शरीर पता नहीं, कब नष्ट हो जाय, पर जो अनुभव पुस्तकोंमें लिखे हैं, दीर्घ कालतक अक्षय रहनेवाले हैं।

पुस्तकोंमें संसारमें दुनियाकी सब समस्याओंको हल करनेके तरीके हैं। मानवजीवन और समाजके निगूढ़तम रहस्योंके निचोड़ भरे हैं।

सच मानिये, जो ज्ञान आप पचास वर्ष जीवित रहकर प्राप्त करते, वह पुस्तकों, समाचारपत्रों इत्यादिके माध्यमसे आसानीसे प्राप्त कर सकते हैं। इनमें जीवनका निगूढ़तम रहस्य भरा पड़ा है और हमारे लिये संचित है।

जो ज्ञान आपको पचास वर्षोंके लम्बे जीवनको जीकर प्राप्त होता, वह अच्छी पुस्तकोंके द्वारा आपको जीवनके आरम्भमें ही, बल्कि आज ही या जब आप चाहें प्राप्त हो सकता है।

जिस घरमें पुस्तकोंका निवास है, उसमें अनेक विद्वानों, विचारों तथा महात्माओंका निवास है। आप अपनी अलमारीमें असंख्य समझदार मनुष्योंको साथ रक्खे हुए हैं।

ऋषि तिरूवल्लुवरके शब्दोंमें, 'विद्वान् पुरुष सुगन्धित पुष्पोंके समान हैं। वे जहाँ जाते हैं, अपने साथ मधुर सुगन्धका आनन्द ले जाते हैं। उनका सभी जगह घर है और सभी जगह स्वदेश है।

'विद्या धन है। अन्य वस्तुएँ तो उसकी समतामें बहुत ही तुच्छ हैं। यह ऐसा धन है, जो अगले जन्मोंतक मनुष्यकी पीढ़ियोंतक परिवारमें संस्कारोंके रूपमें साथ रहता है।'

विद्याद्वारा संस्कारित की हुई बुद्धि आगामी जन्मोंमें क्रमशः उन्नति ही करती जाती है और उसका जीवन उच्चतम बनते हुए पूर्णतातक पहुँच जाता है।

कुएँको जितना खोदा जाय, उसमेंसे उतना ही अधिक जल प्राप्त होता जाता है, इसी प्रकार जितना स्वाध्याय, पठन-पाठन, लेखन इत्यादि किया जाय; मनुष्य उतना ही ज्ञानवान् बनता जाता है।

मनुष्य क्या है? विश्व क्या है? ईश्वर, आत्मा और जीव क्या है? मनुष्य-जीवनके बाद क्या होता है? सर्वोत्तम जीवन कैसे व्यतीत किया जा सकता है? इन्हें वे ही जान सकते हैं, जिन्होंने बड़े-बड़े विचारकोंके ग्रन्थोंका गम्भीरतासे अध्ययन किया है, विद्या पढ़ी है।

आश्चर्य होता है, ऐसी अनुपम सम्पत्तिको उपार्जन करनेमें न जाने क्यों लोग आलस्य करते हैं ?

आयुका कोई प्रश्न नहीं है। अध्ययन कभी भी, किसी भी उम्रमें किया जा सकता है चाहे मनुष्य बुड्ढा हो जाय, मरनेके लिये चारपाईपर पड़ा हो, तो भी विद्या प्राप्त करनेमें उसे उत्साहित होना चाहिये। ज्ञान तो जन्म-जन्मान्तरोंतक साथ रहनेवाली दिव्य सम्पत्ति है। जो पढ़ा-लिखा है, वही नेत्रवान् है। जिसने विद्या नहीं पढ़ी, वह अन्धा है। उसके माथेमें तो दो गड्ढे मात्र हैं, नेत्र नहीं। नेत्र तो ज्ञानके होते हैं।

आपका मित्र सम्भव है, आपका साथ छोड़कर चला जाय किंतु पुस्तकरूपी सत्सङ्ग सदा-सर्वदा आपके लिये खुला हुआ है।

यदि स्वाध्यायद्वारा प्राप्त उपयोगी ज्ञानको जीवनमें उतारा जाय, तो जीवनकी अनेक मूर्खताओंसे सहज ही बचा जा सकता है।

पुस्तकोंमें संचित विचारोंने संसारमें बड़ी-बड़ी क्रान्तियाँ उत्पन्न कर दी हैं। उन्हें निष्प्राण समझना बड़ी भारी भूल है। उनमें महती शक्ति भरी हुई है। वे उतनी ही स्फूर्तिमान् होती हैं जितने उनके लेखक। जिस प्रकार एक शीशीमें कोई अतीव गुणकारी ओषधि जीवनमें उपयोगके लिये सँभालकर रक्खी जाती है, उसी प्रकार एक अच्छी पुस्तकमें एक महान् आत्माके जीवनका सार-तत्त्व भरा होता है। उसीकी जिंदगीके निचोड़से हम अधिक-से-अधिक लाभ उठा सकते हैं।

कवि मिल्टनके शब्द स्मरण रखिये—

'एक श्रेष्ठ पुस्तक एक महान् आत्माकी बहुमूल्य रक्तकी बूँदोंकी तरह है, जो शाश्वत उपयोगकी वस्तु है, पथ-निर्देशक है। उसमें जीवनका सर्वोत्तम रस, अनुभवोंका निचोड़ भावी पीढ़ीके लिये मौजूद रहता है।'

यह मानवजीवन अति दुर्लभ है; बार-बार नहीं मिलता। इस जीवनके अनुभव हम दूसरे नये जीवनमें काममें नहीं ला सकते। पता नहीं अगले जन्ममें हमें यह सुरदुर्लभ जीवन प्राप्त हो या न हो। इसलिये स्वयं अपने अनुभवोंके पकनेकी प्रतीक्षा किये बिना हमें पुस्तकोंके स्वाध्यायद्वारा अधिकतम लाभ उठाना चाहिये।

आप अवकाशके क्षणोंको व्यर्थ ही सिनेमा, क्लबों, व्यर्थकी बातचीत, ताश-चौपड़, गप्पबाजी, चुहल तथा बेमतलबकी बातोंमें नष्ट कर देते हैं। ये मनोरञ्जनके साधन स्वस्थ नहीं हैं। स्वाध्याय-का साधन स्वस्थ और गुणकारी है।

स्वाध्यायसे आप अपनी गुप्त शक्तियोंका विकास करते हैं और समुन्नत आत्माओंके सत्सङ्गमें रहते हैं। वे आपको पवित्र कल्पनाएँ और विचारकी नयी दिशाएँ देते हैं।

स्वाध्याय हमारे दैनिक जीवनका एक अङ्ग होना चाहिये। कहा भी है—

सर्वस्य लोचनं शास्त्रम्। (हितो० प्र० १०)

वास्तवमें सबकी आँख शास्त्र है।

विद्या स्फीयते ज्ञानम्। (महाभारत)

विद्यासे अनुभव बढ़ता है।

संसारका वह अद्भुत ग्रन्थ, जो कभी पुराना नहीं पड़ा !

संसारका सर्वाधिक लोकप्रिय ग्रन्थ है—गीता। इस ग्रन्थरत्न-की लाखों प्रतियाँ बिकी हैं और आज भी उसी तीव्र गतिसे संसारके असंख्य व्यक्ति इस पुस्तकको पढ़ते और सबसे प्रिय ग्रन्थ मानते हैं। कारण यह है कि मानव-ज्ञान, अध्यात्म, नीति, धर्म-कर्त्तव्य, वेद-शास्त्र—सबका सार, संक्षेपमें इस छोटे-से ग्रन्थमें आ गया है। यह महाभारतका सबसे महत्त्वपूर्ण निचोड़ है।

विश्वकी समस्याएँ सदा जटिल रही हैं, किंतु सूत्ररूपमें उन सबका समाधान गीतामें मिल जाता है। केवल उसे ठीक तरह समझनेवाला चाहिये। देशी और विदेशी असंख्य विद्वानोंने गीतापर पचासों भाष्य और व्याख्याएँ लिखीं, सैकड़ों विस्तृत और सूक्ष्म टीकाएँ हुईं, अनेक भाषाओंमें अनुवाद किये गये और सहस्रों संस्करण प्रकाशित किये गये। कदाचित् संसारमें ऐसी कोई भाषा नहीं है, जिसमें गीताका अनुवाद न हो! विदेशियोंने भी गीताको सराहा है और उसे भारतीय दर्शनका सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ कहा है।

अमेरिकाका प्रसिद्ध दार्शनिक इमर्सन अंग्रेजी-विचारक और निबन्धकार कार्लायलसे भेंट करने गया।

'क्या आप मुझे अपने हाथसे कोई ग्रन्थ भेंट करेंगे ? मैं वह उपहार चाहता हूँ, जो आपको सबसे प्रिय है तथा जिससे आपने सबसे अधिक प्रेरणा पायी है ?'—इमर्सनने कहा।

कार्लायल बोले—'आप वह भेंट चाहते हैं, जिससे मैंने जीवनमें सबसे अधिक मार्गदर्शन, प्रकाश और प्रेरणा पायी है।'

वह कुछ देर सोचते रहे। अपनी पुस्तकोंसे भरी खचाखच लाइब्रेरीके सामने टहलते रहे।

फिर एक छोटी-सी पुस्तक भेंट करते हुए बोले—

'यह लीजिये, मेरा प्रिय धर्म ग्रन्थ।'

इमर्सनने उस पुस्तकको ले लिया और उसका नाम देखा—यह था अंग्रेजीमें 'श्रीमद्भगवद्गीता'का अनुवाद।

कार्लायल बोले, 'यह भारतका दुनियाको, और मेरा आपको सबसे प्रिय उपहार है। इस पुस्तकमें सूक्ति-रूपमें संसारका समस्त अध्यात्म, मानव-मात्रका कल्याण, हर परिस्थितिमें मार्ग-दर्शन आ गया है।'

इमर्सनने कहा, 'यह तो बहुत छोटी-सी पुस्तक है।'

कार्लायल—'हाँ, सूक्तियोंका संग्रह है। मानव-ज्ञान-विज्ञान और अध्यात्मका निचोड़ है। बस, इससे अधिक नहीं चाहिये। इस एक ही पुस्तकसे सांसारिक और पारलौकिक कल्याण हो सकता है। इसका संदेश कभी पुराना नहीं पड़ता।'

इमर्सनने गीताको मस्तकसे लगाया! यह भेंट उसके जीवनका

मोड़ बन गयी और उसने इमर्सनको नयी जीवन-दृष्टि दी। इमर्सनने लिखा है, 'मैं नित्य गीताके पवित्र जलमें स्नान करता हूँ। वर्तमान युगके ग्रन्थोंमें गीता सबसे बढ़कर है। जिस युगमें यह लिखी गयी होगी, वह कोई अलौकिक युग होगा।'

जर्मन विद्वान् श्लेगल गीताको पढ़कर भावावेशमें आ गया था। शौपेनहर और मेजनीकी विचारधारापर भी गीताके अध्यात्मका पूरा प्रभाव है।

मुसल्मानोंमें बुखाराका शाहजादा अध्यात्म और उच्च-जीवनका बड़ा प्रेमी था। उसने धर्मकी संकुचितता छोड़कर संस्कृतका भी अध्ययन किया था। मुसल्मानोंमें पहले उसने गीताकी ओर इस्लाम-जगत्का ध्यान आकर्षित किया था।

अलबेरूनीने कहा था,—'गीता दुनियाका बेहतरीन इल्मी तोहफा है। इस एक किताबमें दुनियाके सारे फिरकोंका निचोड़ पेश कर दिया गया है।'

मुगलकालकी बात है—

सम्राट् अकबर विद्याका प्रेमी था। उसे पता चला कि श्रीमद्भगवद्गीता वैदिक धर्मका सार है, तो उसने फैजीको गीताका अनुवाद फारसी भाषामें करनेकी आज्ञा दी। मुसल्मान बादशाहोंमें-से जिस-जिसने इसे पढ़ा, वह मुग्ध हो गया। शिकोहने इसका नाम 'सिर्रे-अकबर' रक्खा। अकबरकी यह प्रिय पुस्तक रही। इस पुस्तककी भूमिकामें फैजीने लिखा था—

'गीता मनुष्यका सच्चा आध्यात्मिक आनन्द देनेवाली है। यह पुस्तक सचाईका मार्ग बतानेवाली, असंख्य उपदेशोंसे भरी हुई, गहरे आध्यात्मिक भेदोंको खोलनेवाली, मानवको सब संसारकी आत्माओंमें एकता दिखानेवाली मनुष्योंमें सर्वश्रेष्ठ ज्ञानी व्यासजीकी रचना है, जिसकी प्रशंसा करना मेरी वाणी और लेखनीके बाहर है।'

वास्तवमें यह अनुभव एकका नहीं, अनेकका है।

सब उपनिषदें गौओंकी तरह हैं, गीता अमृत-रूपी दूध है और दुहनेवाले स्वयं भगवान् श्रीकृष्णजी हैं।

यदि भारतका समस्त साहित्य नष्ट हो गया होता और केवल गीता ही रह गयी होती, तो भी संसारको आर्यजातिके गौरवकी याद दिलानेके लिये यह पर्याप्त थी।

गीता भारतीय संस्कृतिका प्रतीक है। वैदिक धर्मनें जो सर्वश्रेष्ठ विचारधारा, मूल-तत्त्व, दृष्टिकोण, मानव-जीवनके उत्थानके सारभूत मर्म हैं, उन सबका एक ही स्थानपर समावेश इसी ग्रन्थरत्नमें मिलता है।

श्रीमद्भगवद्गीता वैदिक धर्म और संस्कृतिका निचोड़ प्रस्तुत करनेवाला आध्यात्मिक ग्रन्थ है। किंतु देशकी आधुनिक परिस्थितिमें गीता हमारे लिये विशेष उपयोगी है।

आज देशके बीच संकीर्णता, छोटे-छोटे झगड़े, संकुचित दृष्टि, रंग, वर्ण, जाति, धर्मका भेद-भाव और कर्त्तव्यविमुखता फैल गयी है।

मानव-मानवके बीच खाई बढ़ती चली जा रही है। भाग्य-वादिता, निष्क्रियता और अवसादपूर्ण दुर्व्यवस्थासे देश परेशान है। एक प्रकारकी कायरता और हीनताकी भावना देशभरमें व्याप्त हो गयी है।

महाभारतका युद्ध होनेसे पूर्व युद्ध-क्षेत्रमें अर्जुनकी जो स्थिति थी, आज देशके सम्मुख उससे कहीं विषम द्विधामयी स्थिति है। 'हम युद्ध करें या न करें ? युद्धमें हमारा क्या दृष्टिकोण रहे ?'

गीताके जिस महान् कर्तव्य और कर्तव्यमार्गके दर्शनने अर्जुनको युद्धके लिये तैयार किया था और अन्तमें विजयी बनाया था, वही गीताका कर्मयोगात्मक संदेश देशको आगे बढ़ाकर संसारके राष्ट्रोंमें सबसे आगे खड़ा कर सकता है।

गीतामें आशाका, हानि-लाभकी क्षुद्र भावनासे ऊपर उठकर कर्तव्य-पालनका संदेश है।

गीतामें कर्म करनेका संदेश है। कर्मके पीछे सात्त्विकता और निष्कामता भी आवश्यक है। संसारमें 'श्रीकृष्णार्पणमस्तु'की आवश्यकता है।

'श्रीकृष्णार्पणमस्तु'की भावनावाला व्यक्ति यह मानता है कि सब काम मेरे लिये नहीं हैं, भगवान्के लिये हैं, विश्वकी रक्षा और स्थितिके लिये हैं और इसी कारण वे भगवान्को प्रसन्न करनेवाले हैं—गीतामें विश्वास करनेवाले साधककी यह भावना उसके लौकिक कर्मोंको पारमार्थिक बना देती है।

भगवदर्पण—गीताका प्रेरक आदर्श

प्रभुको आत्मार्पण करता हुआ मनुष्य जब अपनी समस्त मानसिक, बौद्धिक तथा आत्मिक शक्तियोंको समेटकर भगवान्के चरणोंमें रख देता है, तब मानवकी पुरानी प्रवृत्तियाँ, जो सांसारिक भोगोंमें लिप्त थीं, वे अब एक नवीन दिशाकी ओर, नीचेसे ऊँचाईकी ओर, सांसारिकतासे देवत्वकी ओर उठने लगती हैं। नये आत्मिक मनोरथोंकी पूर्तिके लिये उसमें दैवीशक्तियोंका सम्पर्क होता है; आत्मार्पण करनेवालेमें नया जीवन आ जाता है।

वृत्तियोंको संयमित कीजिये और फिर अपने सब कार्योंको, अपनी शक्तियों तथा इच्छाओंको भगवान्के समर्पित कर दीजिये। वही व्यक्ति लोक-कल्याणके कार्योंमें पूर्ण सफल रहा है, जिसने अपना सब कुछ भगवान्को सौंप दिया।

अपना सब कुछ ईश्वरको सौंप देना, ईश्वरका दासानुदास या अङ्ग बनकर आत्मिक शक्ति एकत्र करना—आत्मशुद्धिकी यह साधना

हमारे देशमें प्राचीन कालसे चली आयी है। गीतामें भगवान्‌ने आत्मशुद्धिका अनुष्ठान निम्न शब्दोंमें बताया है—

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥
(१८।६२)

'हे भारत! सब प्रकारसे उस परमेश्वरकी ही अनन्य शरणको प्राप्त हो। उस परमात्माकी कृपासे ही परम शान्तिको और सनातन परमधामको प्राप्त होगा।'

चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव॥

'सब कर्मोंको मनसे मुझमें अनन्य भावसे अर्पण करके मेरे परायण हुआ समत्वबुद्धिरूप निष्काम कर्मयोगको अवलम्बन करके निरन्तर मुझमें चित्त स्थिर करनेवाला बन।'

हमारे पास अपना कुछ नहीं है, जो कुछ है ईश्वरका ही है। हम अपने लिये नहीं, वरं सब कुछ ईश्वरकी सेवाके लिये ही करते हैं—इस भावनासे कार्य करनेपर मनुष्य असंख्य शक्तियाँ प्राप्त करता है। इसीसे कविने सत्य कहा है—

मेरा मुझपै कुछ नहीं, जो कुछ है सब तोर।
तेरा तुझको सौंपते, क्या लागे है मोर॥

'हे भगवन्! मेरा कुछ नहीं है। यह शरीर तथा सब कुछ तुम्हारा है। तुम्हारी चीज संसार और समाजकी सेवाके रूपमें तुम्हारी सेवामें लगे और फिर तुम्हारे पास वापस पहुँच जाय, इसमें मेरा क्या लगता है। यह तो तुमको अर्पित ही है।'

झूठी भूख छोड़िये

झूठी भूख वह क्षुधा है, जो कृत्रिमरूपसे हमारे मनमें उत्पन्न होती है। पेटको भूख नहीं है, पर मनको नाना वस्तुओं, वासनाओं और आवश्यकता-पूर्तिकी भूख रहती है। मथुराके चौबे झूठी भूखके लिये प्रसिद्ध हैं। कहते हैं—बिना भूख खाकर वे बीमार पड़ते थे, कड़वी दवाई लेते थे, बड़े-बड़े उपवास करते थे और बड़ी परेशानीके पश्चात् स्वस्थ होते थे। अतः झूठी भूखसे सावधान हो जाना चाहिये।

भौतिकवाद एक प्रकारकी झूठी भूखके समान है। जैसे झूठी भूखमें व्यर्थकी लालसा और मानसिक अतृप्ति होती है, वैसे ही भौतिकवादकी झूठी भूखमें निरन्तर नये-नये आमोद-प्रमोद, वासना-तृप्ति, इच्छाएँ व्यर्थ हैं, सत्य नहीं। मनुष्यको इनकी वस्तुतः आवश्यकता नहीं होती। अपने अज्ञानवश वह बरबस इनकी जरूरत अनुभव करता है। इनकी पूर्तिमें वह ज्यों-ज्यों अधिकाधिक लिप्त होता जाता है, त्यों-त्यों वे अग्निमें पड़े घीकी तरह और उद्दीप्त होती हैं।

मनुष्यको चाहिये कि वह जाग्रत् होकर अपने आत्म-स्वरूपको पहचाने। आत्मज्ञानसे ही आत्मकल्याण प्राप्त होता है—

दर्शनं ह्यात्मनः कृत्वा जानीयाद्धात्मगौरवम्।
ज्ञात्वा तु तत्तदात्मानं पूर्णोन्नतिपथं नयेत्॥

'अर्थात् हम आत्माको देखें, आत्माको जानें, उसके महान् गौरवको पहिचानें और आत्मोन्नतिके मार्गपर चलें।'

हमें अपने कार्य ऐसे ऊँचे रखने चाहिये जो आत्माके महान् गौरवके अनुकूल हों। अतः हममेंसे प्रत्येकका उत्तरदायित्व महान् है। बिना आध्यात्मिक व्यवहारके हमारा जीवन ऐसा ही है, जैसा

बिना अङ्कुशके हाथीका। बिना अङ्कुशका हाथी जिधर चला जाय, उसे कोई रोकनेवाला नहीं है। आध्यात्मिकता हमें दूसरोंके प्रति आत्माके सद्गुणोंसे पूर्ण व्यवहार करना सिखाती है और हमें उच्च जीवनके लिये प्रेरित करती है।

आध्यात्मिक व्यक्ति दूसरोंमें उसी आत्माके दर्शन करता हैं, जो स्वयं उसके हृदयमें विराजमान है। वह अपना प्रेम, करुणा और सहानुभूति दूसरोंपर उँडेलता चलता है। उसके आत्मभावका दायरा अति विस्तृत रहता है, जिसमें न केवल मनुष्य, प्रत्युत अन्य जीव भी सम्मिलित होते हैं।

अध्यात्म हमारी झूठी भूखको दूरकर सच्ची और सात्त्विक भूखको जन्म देता है। हमारी वासनाओंको दग्ध करता है और सात्त्विकताको उत्पन्न करता है। वह हमें पवित्रताकी ओर उन्मुख करता है।

जब हम 'झूठी भूख छोड़िये।' का नारा लगाते हैं, तो हम यह कहना चाहते हैं कि व्यर्थकी कृत्रिम जरूरतों, इच्छाओं, वासनाओंको छोड़िये। अनुचित भोजनकी भूख, बढ़िया वस्त्रोंकी चाह, आलीशान मकानकी भूख, विलासी जीवनकी, निरङ्कुश अधिकारकी तथा मनमाने धनकी भूख—ये सभी प्रकारकी भूख आपके व्यक्तित्वके लिये अनावश्यक हैं। इनमें फँस जाना अनुचित है। आप भौतिकवादके मायाजालसे बचे रहें और सब प्रकार झूठी भूखको मारते रहें। झूठे बनावटी जीवनसे मुक्त रहें और सरल सादा व्यवहार रक्खें।

झूठी भूख अनावश्यक तृष्णा है। अतः इसके माया-जालसे दूर रहना ही सफल रहनेका साधन है। आध्यात्मिकता ही इसे दूर कर सकती है।

स्वर्ग और मुक्तिका सुख यहीं प्राप्त हो सकता है

भारतीय दर्शनके छः विभागोंमें 'योग' हिंदुओंकी और भारतकी विश्वको एक महान् देन है। संसारकी अन्यान्य शुष्क विचारधाराओंसे यह भिन्न है; क्योंकि यह क्रियात्मक या (प्रैक्टीकल) है। योग अपने-आपमें एक विज्ञान है। इसे हम चाहें तो 'पौरस्त्य मनोविज्ञान' भी कह सकते हैं। भारतीय संस्कृतिमें रुचि रखनेवाले योगको बड़े आदरकी दृष्टिसे देखते हैं; क्योंकि यह आध्यात्मिक चमत्कारोंसे परिपूर्ण है। योगका प्रारम्भ महर्षि पतञ्जलिने किया था। उनके अनुसार योग वह विद्या है, जिससे मनुष्य अपने मनको पूर्ण वशमें कर ईश्वरीय आत्मामें अपने-आपको लय कर सकता है।

'योग' शब्दका अर्थ है 'मिलन' या 'जुड़ना'। दो बिछुड़े हुए व्यक्तियोंका मिलन भी कितना सुखद होता है। परस्पर एक दूसरेसे जुड़कर हम दृढ़ और मजबूत बनते हैं। आन्तरिक आह्लादका अनुभव करते हैं। हमारी आत्माको सुख मिलता है। मनुष्यके अन्तस्तलमें जो शुद्ध, बुद्ध, चैतन्य, सत, चित्, आनन्द, शिव-सुन्दर, अजर-अमर है, वह आत्मा ही है। इस आत्माका सर्वाधार नित्य सत्य परमात्मा—विश्वात्मासे घनिष्ठ या अभिन्न सम्बन्ध है। योग-साधनाद्वारा आत्माका जब परमात्मासे मिलन होता है, तो बिछुड़ी हुई माता और छोटी स्तनपान करनेवाली कन्याके मिलनसे मनकी जो दशा होती

है, वही आनन्ददायक अनुभूति हमें प्राप्त होती है। सच तो यह है कि उस आनन्दकी कहीं कोई उपमा ही नहीं है।

आत्मासे परमात्माके मिलनकी जो अनुभूति होती है, वह सर्वाधिक आनन्द और शाश्वत शान्ति देनेवाली है। भक्त ईश्वरकी आराधना और अन्ततः मिलनके द्वारा जो सुख प्राप्त करते हैं, वह अनिर्वचनीय है।

योग वह विद्या है, जिसके द्वारा स्वर्ग और मुक्तिका सुख यहीं प्राप्त हो जाता है। अनेक साधक अपनी भौतिक सम्पदाओंमें लात मारकर आत्मिक साधनाओं (यम-नियम, ध्यान, धारणा आदि) में तल्लीन होते हैं; क्योंकि भौतिक सुखकी अपेक्षा आत्मिक सुखको ही वे प्रधानता देते हैं। योगियोंने विश्वात्मासे मिलनके अपने अनुभव लेखबद्ध किये हैं। अतः योगका चमत्कार जानने और अनुभव करनेके लिये यह आवश्यक है कि जिज्ञासु स्वाध्याय करें तथा आत्मवादियों, योगियों एवं विद्वानोंके सत्सङ्गद्वारा योगविद्याको भली प्रकार समझें। आजकल तो केवल आसन और प्राणायाममात्र ही करना योग मान लिया गया है, पर वे तो शरीरके स्वास्थ्यके लिये गौण यौगिक साधन हैं, प्रधान तो मनोयोग और आत्मयोग है। योगशास्त्रके अध्ययनमें पर्याप्त उत्साह, सद्गुरुकी प्राप्ति और दीर्घकालीन अभ्यास—ये आवश्यकताएँ योगसाधनाके लिये जरूरी हैं।

योगके कई रूप हैं, जैसे कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग और राजयोग। यम-नियम वे आधार हैं, जिनके बिना कोई योग-मार्गपर

प्रवृत्त नहीं हो सकता । योगी श्रीअरविन्दने 'आत्म-समर्पण'पर बहुत बल दिया है ।

योग-साधना क्या है ? मानव-अन्तस्तलमें जो शुद्ध-बुद्ध-चैतन्य अमर सत्ता है, वही परमात्मा है । मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कारके चतुष्टयसे युक्त चेतनको जीव या जीवात्मा कहते हैं । यह परमात्मासे भिन्न भी है और अभिन्न भी है । इसे द्वैत भी कह सकते हैं, अद्वैत भी । अग्निसे ही अग्निकी चिनगारी निकलती है । चिनगारीको अग्निसे अलग कहा जा सकता है । पर अग्नि बिना चिनगारीका कोई अस्तित्व नहीं, अतः वह अग्निका ही अङ्ग है, यह अद्वैत है । परमात्मा अग्नि है और जीव चिनगारी है । दोनों अलग भी हैं और एक भी । उपनिषदोंमें इन्हें एक वृक्षपर बैठे हुए दो पक्षियोंकी उपमा दी गयी है । गीतामें इन दोनोंका अस्तित्व स्वीकार करते हुए एकको 'क्षर' कहा गया है, दूसरेको 'अक्षर' ।

भ्रमसे, अज्ञान या मायासे दोनों (जीव और परमात्मा) की नित्य एकता पृथक्तामें बदल जाती है । वही दुःख और शोकका कारण है ।

जहाँ जीवात्मा और परमात्माका एकीकरण होता है, वहाँ जीवकी इच्छा, रुचि एवं कार्यप्रणाली सब विश्वात्माकी इच्छा, रुचि, प्रणालीके अनुसार हो जाती है, तब वहाँ अपार दिव्य आनन्दका स्रोत उमड़ता रहता है । आत्मिक एकता न होनेसे मनुष्यके मनःक्षेत्रमें घोर अशान्ति मची रहती है । इस अव्यवस्थाके संतापसे उसका अन्तर्लोक दावानलकी तरह धधकता रहता है । मनुष्यके पास भौतिक सुख-

साधन कितने ही क्यों न हों, उसके अन्तःकरणको तनिक भी शान्ति उपलब्ध नहीं होती। अनेक धन-दौलतके स्वामी, सेठ, पूँजीपति, बड़े-बड़े उच्चाधिकारी भाँति-भाँतिकी चिन्ताओं, आवेशों और संतापोंसे घिरे रहते हैं। इससे प्रकट है कि धन-दौलत या अधिकारसे कोई भी व्यक्ति जीवनका सच्चा और स्थायी आनन्द या सुख प्राप्त नहीं कर सकता।

इसी प्रकार अनेक ऐसे भी व्यक्ति हैं, जिनके पास रुपया-पैसा या अन्य भौतिक सम्पदाएँ-सुविधाएँ नहीं हैं, फिर भी वे खूब मस्त रहते हैं। सुखकी नींद सोते हैं और अपने चारों ओर आनन्द देखते हैं। इससे प्रकट है कि धन-दौलतके या अन्यान्य साधनोंके न होनेसे सच्चे सुखमें कोई कमी नहीं आती। अमीरोंका भी दुखी रहना और गरीबोंका भी सुखी होना इस बातका प्रमाण है कि सुखका वास्तविक स्थान बाहर नहीं है, बाहरकी वस्तुओंमें नहीं है।

आत्मिक एकतामें, दोनोंके मिलनमें ही सुख है। इसीको यौगिक शब्दावलीमें जीवात्मा और परमात्माका मिलन कह सकते हैं। इस मिलनका ही दूसरा नाम 'योग' है। जीवात्मा और परमात्माके मिलनसे दोनोंके योगसे एक ऐसे आनन्दका आविर्भाव होता है, जिसकी तुलना संसारके अन्य किसी भी सुखसे नहीं की जा सकती। इसी सुखको परमानन्द, जीवन्मुक्ति, ब्रह्म-निर्वाण, आत्मोपलब्धि, प्रभुदर्शन आदि नामोंसे पुकारा जाता है।

मनुष्यके मनका वस्तुतः कोई अस्तित्व नहीं है। वह आत्माका ही एक उपकरण, औजार या यन्त्र है। आत्माकी कार्य-पद्धति-

को सुसंचालित करके, चरितार्थ करके स्थूल रूप देनेके लिये मनका अस्तित्व है। इसका वास्तविक कार्य है कि वह आत्माकी इच्छा एवं रुचिके अनुसार विचारधारा एवं कार्य-प्रणालीको अपनावे। इस उचित एवं स्वाभाविक मार्गपर यदि मनकी यात्रा चलती रहे, तो मानव-प्राणी जीवनके सच्चे सुखका रसास्वादन करता है। पर दुर्भाग्यकी बात है कि आज हममेंसे अधिकांशको वह स्थिति उपलब्ध नहीं है। आत्मा सत्-प्रधान है। उसकी इच्छा एवं रुचि सात्त्विकताकी दिशामें होती है। जीवनकी हर घड़ी सात्त्विकतासे सराबोर हो, हर विचार और कार्य सात्त्विकतासे परिपूर्ण हो, यह आत्माकी माँग है।

पर माया या अविद्याके कुचक्रमें फँसकर हम दूसरी ओर चल देते हैं। रज और तममें प्रवृत्ति दौड़ती है। इस कार्य-विधिको निरन्तर प्रोत्साहन मिलनेसे वह इतनी प्रबल हो जाती है कि आत्माकी पुकारके स्थानपर मनकी कामना या तृष्णा ही प्रधानता प्राप्त कर लेती है।

इस दुष्प्रवृत्तिसे छुटकारा पाकर आत्मानुगत होनेपर ही आनन्द प्राप्त हो सकता है। इसीकी कार्य-पद्धतिको योग-साधना कहते हैं। यह योग-साधना प्रत्येक उच्च प्रवृत्तियों-वाले साधकके जीवनका नित्यकर्म होना चाहिये। भारतीय संस्कृतिके अनुसार सच्ची सुख-शान्तिका आधार योग-साधना ही है। योगके द्वारा सांसारिक संघर्षोंसे व्यथित मनुष्य अन्तर्मुखी होकर आत्माके निकट बैठता है, तो उसे असीम शान्तिका अनुभव होता है।

उपर्युक्त पंक्तियोंसे भारतीय योगपद्धतिकी महत्तापर कुछ प्रकाश पड़ता है। योग पूर्वीय दृष्टिकोणका मनोविज्ञान है। इसके अनुसार मनुष्यको अपनी सारी वासनाओंको मिटाकर परमात्मामें स्थित हो जाना चाहिये। इसके विपरीत पाश्चात्त्य मनोविज्ञान यह कहता है कि वासनाको खोल देना चाहिये। भारतीय मनोविज्ञान—यह योगपद्धति श्रेष्ठ है; क्योंकि इससे मनुष्यकी रुचि और प्रवृत्ति ऊँची रहती है। सात्त्विकता तथा देवत्वको विकसित होनेका प्रचुर अवसर मिलता है। योगसाधनाका प्रथम लाभ तो यह होता है कि मन शुद्ध हो जाता है। दूसरा लाभ मनकी शान्ति और एकाग्रता है। निरन्तर ध्यान और चिन्तन करनेसे एकाग्रताकी वृद्धि होती है। आध्यात्मिक शक्तियाँ बढ़ती हैं। आजकलकी पाश्चात्त्य मनोविज्ञानकी प्रणालियाँ जैसे साइकोथिरैपी, मेस्मेरिज्म, थाटरीडिंग, क्लेरोवेन्स आदि सभी योगद्वारा सम्भव हैं।

आज योग-विद्याके सही दृष्टिकोणको निखारनेकी अतीव आवश्यकता है। आसन और प्राणायाममात्र ही करना आजकल योग हो गया है। पर वास्तविक महत्त्व आन्तरिक साधनाका ही है। उस समय योगी मृगछाला इसलिये पहनते थे कि वह आसानीसे मरे पड़े हुए मृगोंसे मिल जाती थी। आजकल बन्दूककी गोलीसे मरे हुए जानवरकी खाल होती है, यह निन्दनीय है। अब चिमटेकी आवश्यकता नहीं रह गयी है। योगिराज अरविन्द, महात्मा गांधीजी, स्वामी दयानन्दजी, स्वामी शिवानन्दजी आदिकी तरहका सीधा-सादा जीवन ही उपयुक्त है।

सच्चे सुख-शान्तिका आधार यह है

आध्यात्मिकता आस्तिकोंका मत है, जब कि भौतिकवाद नास्तिकोंका झमेला है। अध्यात्मवाद संकल्पमयी सूक्ष्म दृष्टिसे सम्बन्ध रखता है। यह चर्मचक्षुओंसे नहीं दीखता, पर इसका प्रभाव स्थायी और व्यापक होता है। अध्यात्मवादी ईश्वरपर अखण्ड विश्वास करता है। दूसरी ओर भौतिकवादी उस वस्तुकी ओर भागता है जो प्रत्यक्ष हो, स्थूल नेत्रोंसे दीखती हो, जिससे तुरंत लाभ हो सके। आजका युग 'खूब कमाओ, आवश्यकताएँ बढ़ाओ, मजा उड़ाओ' की भ्रान्त धारणामें लगा है और सुखको दुःखमय स्थानोंमें ढूँढ़ रहा है। उसकी सम्पत्ति बढ़ी है; अमेरिका-जैसे देशोंमें अनन्त सम्पत्ति भरी पड़ी है। धनमें सुख नहीं है, अतृप्ति है; मृगतृष्णा है। संसारमें शक्तिकी कमी नहीं, आराम और

विलासिताकी नाना वस्तुएँ बन चुकी हैं, किंतु इसमें तनिक भी शान्ति या तृप्ति नहीं।

जबतक कोई मनुष्य या राष्ट्र ईश्वरमें विश्वास नहीं रखता, तबतक उसे कोई स्थायी विचारका आधार नहीं मिलता। अध्यात्म हमें एक दृढ़ आधार प्रदान करता है। अध्यात्मवादी जिस कार्यको हाथमें लेता है, वह दैवीशक्तिसे स्वयं ही पूर्ण होता है। भौतिकवादी सांसारिक उद्योगोंसे कार्य पूर्ण करना चाहता है; किंतु ये कार्य पूरे होकर भी शान्ति नहीं देते। भौतिकवादीको तुच्छ लाभ दीखता है; वह उसीमें मर जाता है। उस बेचारेको इतनी दूरदर्शिता नहीं कि यह जान ले कि ये सांसारिक वस्तुएँ एक क्षणमें विलुप्त हो सकती हैं।

आजका युग क्यों असंतुष्ट है? इसका कारण यह है कि उसके सोचने, समझने, रहने और टिके रहनेका आधार अस्थायी और क्षणभंगुर है। यदि वह अध्यात्मवादको अपना ले तो उसे शान्ति और सामर्थ्य मिल सकता है।

जिस व्यक्तिमें दैवी सम्पदाके छब्बीस लक्षण पाये जाते हों, वह आध्यात्मिक व्यक्ति कहला सकता है। वे गुण हैं—अभय, अन्तःकरणकी शुद्धि, सत्-असत्का विवेक [ज्ञान], दान, जितेन्द्रियता, यज्ञ, स्वाध्याय, स्वधर्म-पालन, सरलता, अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शान्ति, अनिन्दा, दया, अलोभ, नम्रता, लज्जा, अचञ्चलता, गम्भीरता [तेज], क्षमा, धैर्य, शौच, अद्रोह और मानकी

इच्छा न होना। इन विभूतियोंसे पूर्ण व्यक्तिको 'मानव' कहते हैं। वह सत्त्वगुणप्रधान होता है।

इसके विपरीत भौतिकवादी व्यक्तियोंके आसुरी गुण होते हैं। इन व्यक्तियोंमें दम्भ होता है। वे कहते कुछ हैं, करते कुछ हैं। उनका पाखण्ड पग-पगपर हमारे सम्मुख आता है। दुःख है कि आज जो व्यक्ति अपनेको अध्यात्मवादी कहते हैं, उनमें अधिकांशमें उपर्युक्त दैवी सम्पदाके गुण नहीं पाये जाते। उनमें दर्प होता है। वे किसीके सामने सिर नहीं नवाते। अहङ्कारसे परिपूर्ण रहते हैं। तीनों गुणों (सत्त्व, रज, तम) के अनुसार अहङ्कारकी भी तीन अवस्थाएँ हो सकती हैं। यह सब अभिमान त्याज्य है। जिन व्यक्तियोंमें क्रोध, कठोरता और अज्ञान है, आजके युगमें इस प्रकारके व्यक्ति प्रायः पाये जाते हैं और वे ही अशान्तिके मूल कारण हैं।

आस्तिकता हमें ईश्वरपर श्रद्धा सिखाती है। हमें चाहिये कि परमेश्वरको चार हाथ-पाँवोंवाला कोई भौतिक प्राणी न समझें। ईश्वर एक परम सत्य तत्त्व है। जैसे वायु एक तत्त्व है। वैज्ञानिकोंने वायुके अनेक उपभाग किये हैं—ऑक्सीजन, नाइट्रोजन इत्यादि और उसके हर एक भागको भी स्थूल रूपसे वायु ही कहेंगे। वैसे ही एक तत्त्व, जो सर्वत्र ओतप्रोत है, जो सबके भीतर है तथा जिसके भीतर सब कुछ है, वह परमेश्वर है। यह

तत्त्व सर्वत्र है, सर्वत्र व्याप्त है। परमेश्वर हमारे ऋषि-मुनियोंकी सबसे बड़ी उपलब्धि है। इस शक्तिके तीन रूप हैं—१—उत्पादन करनेवाला, २—पोषण करनेवाला, ३—नाश करनेवाला। भारतीय संस्कृतिमें ये तीन शक्तियाँ तीन नामोंसे प्रचलित हैं—ब्रह्मा, विष्णु और महेश। ये तीनों प्रत्यक्ष हैं। कोई उन्हें अस्वीकार नहीं कर सकता।

आज हमें अध्यात्मकी अतीव आवश्यकता है। विषयोंकी भोगेच्छा विषयोंके भोगसे कभी शान्त होनेवाली नहीं है, प्रत्युत और भी बढ़ जानेवाली है। त्याग और संयमसे ही मन शुद्ध होता है और बुद्धि ज्ञानसे। जितेन्द्रिय पुरुष ही मोक्ष प्राप्त कर सकता है, विषयोंमें फँसा हुआ मनुष्य दुर्गतिको प्राप्त होता है।

दूसरोंके अनुशासनकी अपेक्षा आत्मानुशासनका विशेष महत्त्व है। हमारी आत्म-ध्वनि हमें सत्यके मार्गकी ओर प्रेरित कर सकती है। सत्य मार्गसे ही पृथ्वी स्थिर है, सत्यसे ही रवि तप रहा है और सत्यसे ही वायु बह रहा है। सत्यसे ही सब स्थिर हैं। सत्यका ग्रहण और पापका परित्याग करनेको हमें सदैव प्रस्तुत रहना चाहिये।

मानव-जीवन सांसारिक क्षणिक भोग-विलासके लिये नहीं बना है। जीवनका एकमात्र कर्तव्य आत्माका साक्षात्कार करना है।

जी, मेरी उम्र अस्सी नहीं, सिर्फ चार साल है !

राजा नौशेरवाँ कहीं जा रहे थे। उन्हें सदा लोगोंसे बातचीत कर नयी-नयी बातें जाननेकी बड़ी इच्छा रहती थी। संयोगसे उन्हें रास्तेमें एक सफेद दाढ़ीवाला वृद्ध मिला। वृद्ध कुछ धार्मिक वृत्तिका आदमी था। दोनोंमें मेल हो गया। अब बातोंका सिलसिला चला।

प्रश्न उपजा कि बातें किस विषयपर चलें? राजनीति, अस्त्र-शस्त्र, धर्म, दर्शन—आखिर किस समस्यापर बातचीत की जाय? पता नहीं, यह वृद्ध किस विषयमें दिलचस्पी लेगा?

सोचते-सोचते नौशेरवाँने बातोंका सिलसिला शुरू करनेके ख्यालसे वृद्धसे पूछा,—'बड़े मियाँ! तुम्हारी उम्र क्या होगी?'

वृद्ध बिल्कुल सफेद बालोंवाला बूढ़ा था। मुँह पोपला, चेहरेपर झुर्रियाँ, आँखें गड्ढोंमें गड़ी हुई। कमर कुछ झुकी-सी, काँपते अवयव और हिलता शरीर! बूढ़ा सवाल सुनकर कुछ देर चुप रहा। फिर उसने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया—

'श्रीमन्! मेरी उम्र सिर्फ चार सालकी है!'

उत्तर अटपटा था। यह मौतके मुँहमें लटका हुआ बूढ़ा और उम्र सिर्फ चार साल! कैसी आश्चर्यमय उक्ति! कैसा सफेद झूठ! कभी न माननेकी बात थी। राजा नाराज हो गये, पर अपने गुस्सेको दबा दिखावटी आदरसहित बोले—

'इस बुढ़ापेमें इतना झूठ! बड़े मियाँ, क्यों फिजूल बनते हो। तुम्हारी यह निढाल हालत, ये हिलते हुए अङ्ग, यह दूध-जैसे सफेद बाल साफ जाहिर करते हैं कि तुम्हारी उम्र अस्सी सालसे किसी हालतमें कम नहीं होनी चाहिये। मुझसे पहेलियाँ

मत बुझाओ । कहिये, मेरा अंदाज कहाँतक सच है ? आदमीकी उम्रका अंदाजा मैं गलत नहीं लगाता हूँ ।'

बूढ़ा कुछ चकित, कुछ भयभीत दिखायी दे रहा था । उसके मुँहसे थोड़ी देरतक कुछ शब्द न निकले । वह उत्तरको स्पष्ट न कर सका ।

राजाने फिर पूछा, 'मुझे अपनी बात फिरसे कहो, मैं समझा नहीं ।'

अब बूढ़ा कुछ गरम पड़ा और अपनी बात स्पष्ट करनेकी नीयतसे बोला—

'श्रीमन् ! मैं सच अर्ज करता हूँ । दरअसल मैं चार साल-का ही हूँ ।'

राजा अब गम्भीर हो गया । सोचने लगा, 'बातमें कुछ गहराई प्रतीत होती है ।'

बोले, 'बड़े मियाँ, अपनी बातको साफ करो ।'

बूढ़ा बोला, 'श्रीमान्‌का अनुमान गलत नहीं है; बात यों है कि इन अस्सी सालोंमेंसे ७६ साल तो मैंने यों ही खराब कर दिये हैं ।'

'खराब कर दिये हैं ।' सो कैसे हो सकता है ? क्या तुमने इन वर्षोंमें अपना और अपने परिवारका पालन-पोषण नहीं किया है ?

'श्रीमन् ! ये ७६ साल मैंने इसी काममें बरबाद कर दिये हैं । इनमें मैंने बच्चोंको जन्म दिया । फिर मैं उन्हें पालने-पोसने और उन्हें कामपर लगाने, उनकी शादियाँ करनेमें लगा रहा । ७६ सालकी उम्रतक अपना और अपने बाल-बच्चोंका पेट पालना ही अपना मुख्य काम समझता रहा । बाकी कुछ नहीं ।'

राजा बोला, 'फिर ये साल खराब हुए कैसे कहते हो ?'

'खराब ही समझिये। इस लंबे अर्सेमें मैंने न कोई नेकी कमायी, न किसी निर्धनकी सहायता की, न कोई परोपकारका काम ही किया। जानवरकी जिंदगी जीता रहा। मेरा कीमती जीवन खाने-पीनेमें ही बीत गया।

'पिछले चार सालोंसे यह बात समझमें आयी है कि इस लंबी-चौड़ी दुनियामें, जहाँ असंख्य दुखी आदमी और निम्न कोटिके जीव रहते हैं, हमलोग सिर्फ अपने ही लिये पैदा नहीं हुए हैं, परंतु दूसरोंका भी हमपर कोई हक है। उनका भी हमें कुछ भला, कुछ सेवा, कुछ परोपकार करना है। उन्हें अपने ज्ञान या पूँजीसे, अपनी शक्ति या बुद्धिसे, अपने मनसे और तनसे कुछ आगे बढ़ाना है। आदमीकी श्रेष्ठता तो इसमें है कि मनुष्य अपने परिवारको सीमित रक्खे और थोड़ेसे साधनोंसे संतुष्ट रहे। इस समाजमें जो दूसरे लोग भयानक कष्टों, अभाव, पीड़ा और निराशासे ग्रसित हैं, उनकी कुछ सहायता करते हुए आत्म-संतोष और आत्म-सुखका लाभ ले। दूसरोंकी खुशीमें अपनी खुशी प्रकट करना और उन्हें हार्दिक शुभकामनाएँ भेंट करना सामाजिक सत्प्रवृत्तियोंका एक महत्त्वपूर्ण अङ्ग है। सभ्यता और साहित्य भी इस बातका तकाजा करते हैं कि आदमीका जन्म दूसरोंका उपकार करनेके लिये है। उसे अपनेसे नीच, दीन, हीन, दुर्बल, रोगी, अभावग्रस्त, निराश व्यक्तियोंकी जितनी बन पड़े, सेवा-सहायता करनी चाहिये। यह अक्ल मुझे पिछले चार सालसे ही आयी है। इसलिये अपनी असली उम्र मैं चार साल ही मानता हूँ। बाकी सब फजूल है।'

वृद्धका यह उत्तर सुन नौशेरवाँ विचारमें पड़ गया। उसे

अनुभव हुआ कि इस दृष्टिसे तो वह भी कसूरवार था और उसने भी सही अर्थोंमें अभी जीना शुरू नहीं किया था ।

अपने निजी जीवनमें कोई आदमी कितना भी धनी, स्वस्थ, विद्वान्, सम्पन्न और संतुष्ट क्यों न हो, उसे इससे केवल भौतिक सुख-सुविधाएँ ही मिल सकती हैं। वह अपना और अपने परिवारका ही हित देख सकता है, किंतु यह दायरा अति सीमित है। सभी पशु अपने शरीर और अपने परिवारका हित चाहते हैं; पर यह एक मनुष्यका—मनुष्यका जीवन नहीं है। अधिक बच्चोंको जन्म देना और सारी उम्र उन्हें पालने-पोसनेमें ही समाप्त कर देना जानवरके जीवनसे बेहतर नहीं है।

यह समझदारीका चिह्न नहीं कि सारी क्षमता और प्रतिभा केवल उपार्जन और उपयोगमें ही खर्च होती रहे।

अपनेको अधिकाधिक पवित्र बनाते हुए विश्वमानवकी, जनता जनार्दनकी सेवा और नैतिक उत्थानके लिये हम अपना उत्सर्ग करते रहें, तो इसी धरतीपर हम स्वर्ग उतार सकते हैं—

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति ।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ॥

(यजुर्वेद ४० । ६)

अर्थात् जो सम्पूर्ण प्राणियोंके दुःख-सुख और हानि-लाभको ऐसे देखता है, जैसे अपने दुःख-सुखको देखता है, उसकी सभी दुविधाएँ मिट जाती हैं। वह सभी जीवोंमें एक परमात्माकी ही मूर्ति देखकर सबकी सेवा करता है। जो समाजको भगवान्का रूप देखकर उनके उत्थानके लिये काम करता है, उसीका जीवन धन्य है।

श्रीहरिः

हमारे यहाँसे प्रकाशित

डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्रद्वारा लिखित पुस्तकें

१—आशाकी नयी किरणें (शक्ति, सामर्थ्य और सफलता)—इसमें शिथिल और निर्बल जीवनमें शक्ति, साहस और नव प्रेरणा देनेवाले जीवनपूर्ण निबन्ध हैं, पृष्ठ-संख्या ३१२, मूल्य १.५०

२—जीवनमें नया प्रकाश—यह घोर अन्धकारके बाद जीवनमें नया प्रकाश उत्पन्न करनेवाले तथा मुर्दा दिलोंमें नयी प्रेरणा भरनेवाले आशावादी विचारोंसे परिपूर्ण है, पृष्ठ-संख्या ३२०, मूल्य १.५०

३—अमृतके घूँट—इसमें निराश जीवनमें आशा, उल्लास, शान्ति और सरलता उत्पन्न करनेवाले विचार प्रकट किये गये हैं, पृष्ठ-संख्या २८४, मूल्य १.२५

४—आनन्दमय जीवन—सुख, साहस, उत्साह और प्रफुल्लता-प्रेरक शुभ विचारोंसे परिपूर्ण, पृष्ठ-संख्या २१६, मूल्य १.००

५—स्वर्ण-पथ—यह आध्यात्मिक जीवनके विकासका पथ-प्रदर्शक है, पृष्ठ-संख्या २१६, मूल्य .... .९०

६—महकते जीवन-फूल—(यह आपके हाथमें है)

मिलनेका पता

गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)